समभाव-समदृष्टि के सबक

28 सितम्बर 2014 - 29 मार्च 2015

एकता का प्रतीक

प्रकाशक
सतयुग दर्शन ट्रस्ट (रजि.)
"वसुन्धरा" ग्राम भूपानी–लालपुर रोड फरीदाबाद–121002 (हरियाणा)
ई–मेलः info@satyugdarshantrust.org
website: www.satyugdarshantrust.org
© सर्वाधिकार सुरक्षित सतयुग दर्शन ट्रस्ट (रजि.)
ISBN : 978-93-85423-00-0

प्रथम संस्करण
मई, 2015

समभाव-समदृष्टि के
सबक
28 सितम्बर 2014 - 29 मार्च 2015

l roLr| d: d|njrh xUFk d: vu|lkj

★ महामन्त्र★

साडा है सजन राम,
राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है।
उसी को जानो,
मानो और वैसे ही
गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु,
शरीर नहीं है।

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं,
ज्ञान को अपनाओ ।
निमित्त में नहीं,
नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

अनुक्रमणिका

क्रमांक	विवरण	पृष्ठ संख्या
1.	दिनाँक 28 सितम्बर 2014 का सबक	01
2.	दिनाँक 05 अक्टूबर 2014 का सबक	07
3.	दिनाँक 12 अक्टूबर 2014 का सबक	17
4.	दिनाँक 19 अक्टूबर 2014 का सबक	26
5.	दिनाँक 26 अक्टूबर 2014 का सबक	32
6.	दिनाँक 02 नवम्बर 2014 का सबक	42
7.	दिनाँक 09 नवम्बर 2014 का सबक	49
8.	दिनाँक 16 नवम्बर 2014 का सबक	57
9.	दिनाँक 23 नवम्बर 2014 का सबक	72
10.	दिनाँक 30 नवम्बर 2014 का सबक	79
11.	दिनाँक 07 दिसम्बर 2014 का सबक	85
12.	दिनाँक 14 दिसम्बर 2014 का सबक	96
13.	दिनाँक 21 दिसम्बर 2014 का सबक	102
14.	दिनाँक 28 दिसम्बर 2014 का सबक	111
15.	दिनाँक 04 जनवरी 2015 का सबक	119
16.	दिनाँक 11 जनवरी 2015 का सबक	128
17.	दिनाँक 18 जनवरी 2015 का सबक	138
18.	दिनाँक 25 जनवरी 2015 का सबक	146
19.	दिनाँक 26 जनवरी 2015 का सबक	160
20.	दिनाँक 01 फरवरी 2015 का सबक	169
21.	दिनाँक 08 फरवरी 2015 का सबक	177
22.	दिनाँक 15 फरवरी 2015 का सबक	185
23.	दिनाँक 22 फरवरी 2015 का सबक	196
24.	दिनाँक 01 मार्च 2015 का सबक	203
25.	दिनाँक 08 मार्च 2015 का सबक	218
26.	दिनाँक 15 मार्च 2015 का सबक	227
27.	दिनाँक 22 मार्च 2015 का सबक	238
28.	दिनाँक 29 मार्च 2015 का सबक	248
29.	आत्म निरीक्षण हेतु प्रश्न	268
30.	शब्द-कोश	277

दिनाँक 28 सितम्बर 2014 का सबक

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इन्सान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

आज से गृहस्थाश्रम सुचारु रूप से चलाने की युक्ति बताने की क्रिया का शुभारम्भ होने जा रहा है। अतः सभी सजनों ने विशेषतः युवाओं व नवविवाहित दम्पतियों ने अत्यन्त सतर्क हो कर बैठना है व जहाँ कहीं भी अस्पष्टता हो वहीं पूछ लेना है ताकि जो भी आप समझो उसे अमल में ला जीवन में उसका कुशलता से वर्त्ताव करते हुए घर सतयुग बना सको।

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार गृहस्थाश्रम सुचारु रूप से चलाने की युक्ति

धर्म ग्रन्थों के अनुसार जीवन की अवस्थाओं को चार आश्रमों में विभक्त किया गया है यथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व सन्यास। इन चारों आश्रमों को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए प्रत्येक आश्रम के विशिष्ट कर्त्तव्य निर्धारित किए गए हैं। आइए इस सन्दर्भ में सर्वप्रथम ब्रह्मचर्य व गृहस्थ आश्रम को समझते हैंः-

ब्रह्मचर्य मनुष्य जीवन के चार आश्रमों में से पहला है। ब्रह्मचर्य आश्रम के अन्तर्गत धार्मिक शिष्यवृत्ति, वेदाध्ययन यानि आत्मिक ज्ञान प्राप्ति, सात्विक आहार के सेवन, आत्मसंयम व कौमार्य-सतीत्व रक्षण (वीर्य को रक्षित रखने व मैथुन से बचने) के प्रण को महत्त्व दिया गया है। इस आश्रम के अन्तर्गत माँस-मदिरा सेवन, स्त्री प्रसंग व सब प्रकार के व्यसन निषिद्ध हैं। इस आश्रम के नियमों का यथा पालन करने से मन और बुद्धि की शक्ति बहुत बढ़ती है और चित्त की चंचलता नष्ट होती है। चित्त की चंचलता नष्ट होने से जीवन भर का सुख प्राप्त हो जाता है। याद रखो इस आश्रम के नियमों का तब तक पालन करना आवश्यक माना गया है जब तक कि मनुष्य एक ब्रह्मचारी के कर्त्तव्य पालन में प्रवीण हो गृहस्थ-आश्रम में प्रविष्ट नहीं हो जाता। गृहस्थ-आश्रम में प्रवेश से पूर्व इन नियमों की जानकारी प्राप्त करने पर ही युवा अपनी भावी गृहस्थी का भली-भांति संचालन कर वैवाहिक जीवन सुखमय व्यतीत कर सकते हैं।

यहाँ ब्रह्मचर्य का अर्थ स्पष्ट करते हुए यह भी बता दें कि ब्रह्मचर्य शब्द दो शब्दों के संयोग से बना है यथा 'ब्रह्म + चर्य'। 'ब्रह्म' यानि वह सबसे बड़ी परम तथा नित्य चेतन सत्ता जो जगत का मूल कारण है और सत्-चित्त-आनन्द स्वरूप मानी जाती है तथा 'चर्य' का अर्थ है आचरण करना। इस प्रकार 'ब्रह्मचर्य' का अर्थ है ब्रह्म की नित्यता, नियमता और अनुकूलता को आजीवन कायम रखना व वैसा ही आचरण करना। ऐसा आचरण करने वाला ब्रह्मचारी व्यक्ति ही मानव-धर्म को सुदृढ़ता से धारण कर नित्य आनन्द व शान्ति को प्राप्त करता है।

तात्पर्य यह है कि ब्रह्मचारी व्यक्ति प्रतिदिन की धार्मिक क्रियाएँ व कर्त्तव्यों का पालन जिसके अंतर्गत उसका आचार-व्यवहार, काम-धन्धे द्वारा जीविका कमाने के योग्य बनना, भजन करना, सेवा

करना, स्वाभाविक चलन आदि सम्मिलित होता है, कुदरत के निर्धारित नियमों के अनुसार ही करता है। इस प्रकार वह परिश्रम द्वारा निष्कामता व निर्लिप्तता से जीविका कमाने की भी क्षमता रखता है।

याद रखो ब्रह्मचर्य की ताकत महान है। इसी ताकत से ही हनुमान जी सबसे श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व सारी दुनियाँ में ज्ञानवान भक्त शिरोमणि कहलाए। ब्रह्मचर्य की ताकत ने ही महापराक्रमी भीष्म को शरशय्या पर जीवित रहने का सामर्थ्य प्रदान किया। ब्रह्मचारी ही ईश्वर कृपा से ज्ञान, वैराग्य, भक्ति सद्गुण सदाचार की प्राप्ति कर परमशान्ति और परमानन्द को प्राप्त हो सकता है और इस तरह उसका जीवन सफल हो जाता है।

याद रखो गृहस्थ आश्रम मनुष्य जीवन के चार आश्रमों में से दूसरा है। ब्रह्मचर्य के उपरान्त विवाह करके पारिवारिक जनों के साथ रहने वाले दम्पति गृहस्थी कहलाते हैं। इस गृहस्थी में परिवार के मुख्य व्यक्ति को गृहस्वामी कहते हैं व जिसकी सुशीलता, बुद्धिमता और कार्यकुशलता के कारण घर में सुख-समृद्धि हो उसे गृहस्वामिनी अर्थात् गृहलक्ष्मी कहा जाता है। ज्ञात हो कि गृहस्थी में गृहस्वामी एवं गृहलक्ष्मी के परस्पर कर्त्तव्यों की नीतिसंगत पालना करने में दक्षता प्राप्त करने पर ही घर सतयुग बन सकता है।

धर्म शास्त्र के अनुसार गृहस्थ के लिए करने योग्य गृह्यकर्मों के विधि-विधान बताने वाले वैदिक कर्त्तव्यों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर उनका पूर्णतया पालन करना इस आश्रम का प्रमुख दायित्व है। एक विवाहित जीवन बिताने वाला गृहस्थी काम-धन्धे द्वारा जीविका कमाकर यानि सत्यता से धन-उपार्जन कर अपने घर-परिवार की जीवन उपयोगी समस्त आवश्यक सामग्रियों का प्रबन्ध करने हेतु आय-व्यय का संचालन समुचित तरीके से करने के साथ-साथ उनके भरण-पोषण यानि पालन-पोषण का दायित्व निभाता है। इसके अतिरिक्त सृष्टि-रचना के विकास हेतु सद्गुण सम्पन्न सन्तान

उत्पन्न करना गृहस्थ जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य होता है। इसके लिए पति एवं पत्नी दोनों को उत्तम आचार-विचार से युक्त होकर निष्काम भाव से अपना योगदान देना होता है। इस हेतु परस्पर संसर्ग के समय अफुर अवस्था का अति महत्त्व होता है। तभी जाकर वे कुदरत प्रदत्त इस अनमोल प्रजनन क्षमता यानि अपने जैसे जीव उत्पन्न करने की क्षमता का प्रयोग अत्यन्त सजगता व बुद्धिमत्ता से कर पाते हैं। इस विषय में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें समझा रहा है कि :-

स्त्री दी खाद, पति दा बीज बोया

इस सन्दर्भ में जिस प्रकार बीज और खाद रूपी आहार की किस्म के अनुसार वृक्ष फलता-फूलता है, ठीक उसी प्रकार पति के बीज और स्त्री की खाद की गुणवत्ता के अनुरूप ही सुन्दर, स्वस्थ, पराक्रमी व सच्चरित्र सन्तान की उत्पत्ति होती है। यहाँ स्पष्ट कर दें कि गर्भधारण, गर्भावस्था व जन्म के उपरान्त किए पालन-पोषण के दौरान माता-पिता द्वारा आहार-विहार, आचार तथा चेष्टा में अपनाई शुद्धता के अनुरूप ही सन्तान का सदाचारी होना निर्भर करता है। यह दुर्लभ उपलब्धि होती है जिसके पश्चात गृहस्थाश्रम स्वतः ठीक हो जाता है जबकि इसके प्रतिकूल आचार-विचार व व्यवहार अपनाने पर गृहस्थाश्रम कभी सँवर नहीं पाता और दुराचारी सन्तान के दुःख से सन्तप्त माता-पिता आजीवन रोते व झुखते रहते हैं। इस तथ्य को जानने के पश्चात् हर युवक व युवती के लिए आवश्यक हो जाता है कि वह सुखी एवं शान्तमय विवाहित जीवन के लिए, ब्रह्मचर्य आश्रम के नीति-नियमों का पूर्णतया पालन करने के साथ-साथ गृहस्थ आश्रम के कर्त्तव्यों का समुचित ज्ञान लेकर ही गृहस्थ-आश्रम में प्रवेश करें। यहाँ विडम्बना की बात यह है कि इतना श्रेष्ठ व उत्तम ज्ञान उपलब्ध होने के बावजूद भी वर्तमान युग में बच्चों को ब्रह्मचर्य आश्रम के कर्त्तव्यों के प्रति अनभिज्ञ रख आत्मिक ज्ञान प्राप्ति से वंचित रखा जाता है और इस ज्ञान प्राप्ति के अभाव में जिनका विवाह होता है वे सुचारु रूप से अपने गृहस्थ

जीवन के कर्त्तव्यों के प्रति बेपरवाह हो गृहस्थाश्रम का नीतिसंगत संचालन करने में असक्षम हो अपनी सन्तानों को कुरस्ते पर अग्रसर कर देते हैं। अब जानो कि आत्मिक ज्ञान प्राप्ति किए बिना ही गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने से क्या होता है?

वैवाहिक जीवन के प्रति लेश मात्र भी अज्ञान विवाह उपरान्त अलगाववाद के कारण उत्पन्न होने वाले घरेलू झंझटों, उलझनों, कलह-क्लेश यानि परस्पर लड़ाई-झगड़े, अंतःकलह, वाद-विवाद, तेरी-मेरी, ईर्ष्या-द्वेष, आपसी फूट आदि को बढ़ावा देता है। परिणामस्वरूप परस्पर सम्बन्धों के संगठन के साथ-साथ, परिवार की आन्तरिक आर्थिक व्यवस्था चरमरा जाती है और आपसी एकता न रहने के कारण घर की सुख, शान्ति नष्ट हो जाती है। इससे पारिवारिक सुख-समृद्धि में विघ्न पैदा कर दुई-भाव व वैर-भाव उत्पन्न करने वाले कई अनचाहे कारक उत्पन्न हो जाते हैं जो कई दफ़ा पति-पत्नी के घरेलू कलह को मानसिक असंतुलन, चिंता, तनाव, अवसाद, तलाक, गृह-त्याग व आत्महत्या का रूप दे विकट अंजाम देने की कगार तक पहुँचा देते हैं। याद रखो ये परिणाम न केवल परिवार के प्रति अपितु सन्तान व कुल समाज के लिए भी घातक सिद्ध होते हैं। अतः इन जीवनघाती परिणामों से परिचित होने के पश्चात् सबको सुझाव है आत्मिक ज्ञान व गृहस्थ-आश्रम के लिए आवश्यक ज्ञान प्राप्ति के प्रति लापरवाह होने की भूल कदापि न करना। इस संदर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ सबको प्रेरित कर रहा है कि जीवन के हर क्रियाकलाप में सात्विकता अपनाकर कुलदीपक बनो, कुलनाशक व कुलवैरी नहीं।

ऐसा सुनिश्चित करने हेतु जिससे जग रहे हो उस नित्य ब्रह्म सत्ता का अनुभव करना सीखो। यह अति महत्त्वपूर्ण है। तभी आत्मिक जाग्रति हर क्षण बनी रहेगी और आत्मिक ज्ञान व आत्मिक बल दोनों ही पूर्णतः प्राप्त कर एक पूर्ण व पराक्रमी इन्सान की तरह अपने शारीरिक अवयवों का प्रयोग पूरी क्षमता व सार्थकता से करते हुए व अपना गृहस्थ-आश्रम ठीक से निभाते हुए, परमार्थ के रास्ते पर

आजीवन बने रह परमपद प्राप्त कर पाओगे। इस संदर्भ में जो भी उस नित्य ब्रह्म सत्ता का अनुभव करना चाहता है वे हमें इस आत्मिक ज्ञान व गृहस्थ-आश्रम के लिए आवश्यक ज्ञान प्राप्ति के प्रति अपनी दिलचस्पी यानि रुचि दिखाए तो अवश्य ही हम उस पराक्रमी को नित्य ब्रह्म सत्ता जिससे सब जग रहे हो उसको अनुभव करने की युक्ति समझा देंगे। हम तो यही चाहेंगे कि सब इस योग्य बनें और आनंदविभोर हो हर्षा उठें। अतः अपने, अपने परिवार व कुल समाज की भलाई के लिए सब ऐसी हिम्मत दिखाना और फिर देखना कि किस तरह इस प्रयत्न से आपका व आपके परिवार का जीवन बदल कर सुखमय हो जाएगा।

अगली कक्षा में गृहस्थ जीवन के आदर्शतम स्वरूप को प्रतिपादित करने हेतु सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें क्या निर्देश दे रहा है उसे जानें और वैसा करने के लिए तत्पर हो जाएं:-

'एहो फुलवाड़ी लाई होई महाराज दी,
एन्हु फल-फुल लगे बहुतेरे।
एहो हरी-भरी राहवे,
फुलां दी आंदी राहवे सुगंधि चार चुफ़ेरे ।।
गृहस्थ-धर्म विच रह के,
अपने आप नूं पकड़ो फिर फ़र्ज़ अदा तुसां हँस के करो।
हँस के करो, उस ईश्वर दे घर है सब कुछ,
उस ईश्वर दा द्वारा आके फड़ो।।

अन्ततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनाँक 5 अक्टूबर 2014 का सबक

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इन्सान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

यह जो प्रार्थना हम प्रति रविवार करते हैं यह किसी उद्देश्य पूर्त्ति हेतु करते हैं और उसी उद्देश्य पूर्त्ति के लिए ही ईश्वर से बल, बुद्धि व ज्ञान रूपी शक्ति प्रदान करने की याचना करते हैं। यह उद्देश्य पूर्त्ति यथा समय हो जाए, इस हेतु हर मानव के लिए आवश्यक है कि वह जन्म उपरान्त ही जीवन लक्ष्य की सिद्धि के प्रति यत्नशील हो जाए। यहाँ जन्म उपरान्त यत्नशील होने से तात्पर्य नवजात शिशु व माता-पिता का मिल कर इस लक्ष्य पूर्त्ति के प्रति सतत् रूप से जाग्रत रहने से है।

भावार्थ यह है कि माता-पिता व बच्चों के मध्य ऐसे ज्ञान का आदान-प्रदान होना चाहिए जिससे न केवल माता-पिता रूपी शिक्षक जो ज्ञान देने वाले हैं वे अपने यथार्थ सत्य में स्थित रह कर सत्य का यथा बखान कर सकें अपितु जो बालक शिष्य रूप में विकसित होने जा रहा है वह भी अपने यथार्थ तत्व से जुड़ता जाए। यह जुड़ना ही

उस नवजात के समबुद्धि होने का हेतु होता है क्योंकि इस क्रिया द्वारा माता-पिता उसके अन्दर ब्रह्म भाव भरने का यत्न कर रहे होते हैं यानि उस ज्ञान की यथार्थता जना निज स्वरूप के प्रति उसको शिक्षित कर रहे होते हैं। इस प्रकार ब्रह्म भाव के वर्णन द्वारा जब वह बालक जाग्रति में आ जाता है तो उसका आत्मबल और बुद्धिबल दोनों ही सुदृढ़ हो जाते हैं। जब ये दोनों ही बल सुदृढ़ हो जाते हैं तो वह निर्भय होकर अपने जीवन का उद्देश्य सहजता से पूरा कर पाता है। अतः हमें इस प्रकार अपने जीवन की उद्देश्य पूर्त्ति हेतु सपरिवार जाग्रत रहना है। आओ अब पिछले सबक की दोहराई करते हुए आगे बढ़ें -

प्रश्न - मनुष्य जीवन के चार आश्रमों में से प्रथम आश्रम कौन सा है?

उत्तर - ब्रह्मचर्य

प्रश्न - ब्रह्मचर्य का क्या अर्थ है?

उत्तर - ब्रह्म भाव अनुरूप ईश्वरीय आचरण करना।

यह एक व्यक्ति के लिए निज यथार्थ का बोध करने व वैसे ही आचरण में ढलने की बात होती है। यह उसके निजी व्यक्तित्व को निखारने की बात होती है। इस यत्न द्वारा वह अंतर्निहित गुणों को पहचानने वाला हो जाता है। जब वह उन गुणों को पहचान लेता है तो उसके लिए अपने जीवनकाल में यथार्थता अनुरूप आचार-व्यवहार द्वारा उन गुणों का धर्मसंगत उपयोग करना सहज हो जाता है। ऐसा मनुष्य ही अपने व सबके साथ न्यायसंगत विचर पाता है। तभी तो उसके मन में द्वि-द्वेष का भाव नहीं उत्पन्न होता। वास्तव में यही समभाव यानि एक भाव में बने रह स्वयं का, सम्पूर्ण परिवार का, समाज का व सम्पूर्ण विश्व का एकता, एक अवस्था में बने रहना कहलाता है। ऐसा मानव ही समदृष्टि जैसे महान गुण को प्राप्त होता है और आजीवन आत्मभाव में बना रह सभी के साथ आत्मीयता अनुरूप आचार-व्यवहार करने में सक्षम होता है।

स्पष्ट है कि ब्रह्मचर्य आश्रम के दौरान ही जब एक बालक ब्रह्म अर्थात् निज चेतन सत्ता, जो जगत का मूल कारण है, उसको जान जाता है तो वह अपने आत्मिक बल को पहचान लेता है। आत्मिक बल का बोध कर वह अपने बुद्धिबल का ठीक तरह से इस्तेमाल कर पाने के योग्य हो जाता है। यही उसके शिष्य धर्म को ठीक तरह से निभाने में समर्थ होने का सूचक होता है।

याद रखो जो माता-पिता या शिक्षक बचपन से ही बच्चों को शिष्य धर्म के प्रति जाग्रत रख उन्हें उस धर्म पर सुदृढ़ बने रहने की हिदायत देने के साथ-साथ उसका उच्चतम आदर्श अपने आचार-व्यवहार द्वारा उनके सम्मुख रखने में कामयाब हो जाते हैं, वे बच्चे निश्चित रूप से आज्ञाकारी बन, नित्यता के भाव से जीवन जी पाते हैं। ऐसे माता-पिता व शिक्षक ही सत्यनिष्ठा से अपने कर्त्तव्य को निभाने वाले माने जाते हैं। इसी प्रयत्न से उन बच्चों के अन्दर निज असलियत स्वरूप की अजरता-अमरता व हमेश होने का शाश्वत भाव घर कर पाता है। स्पष्ट है कि ऐसे उच्च भाव को धारण कर फिर बच्चा किसी से नहीं डरता क्योंकि उसको समझ आ जाती है कि मैं वह सत्ता हूँ जिसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। उसे अपने उस महान आत्मबल व बुद्धिबल का बोध हो जाता है जिसके बलबूते पर वह निश्चित रूप से किसी भी प्रकार का पराक्रम दिखाने से नहीं सकुचाता। तभी तो वह हर परिस्थिति में अपने मन-चित्त को स्थिर रख पाता है। स्थिर रहने का अर्थ है कि फिर उसे जगत के विषय, पदार्थ व संबंध अपनी ओर आसक्त नहीं कर पाते अर्थात् आकर्षित नहीं कर पाते। इस प्रकार आत्मिक व बौद्धिक बल पर स्थिर रहने के कारण आसक्ति या किसी अन्य व्यक्ति के भाव का प्रभाव उसे छू भी नहीं पाता। यही एक नित्य भाव में जीने वाले इन्सान की पहचान होती है। यही उसके बलवान, स्थिर व अचल भाव में सुदृढ़ होने का सूचक होता है। अतः सजनों अब जहाँ भी लगे कि विषयों, पदार्थों या संबंधों की ओर आपका ख्याल आकर्षित होने लगा है और उनमें आसक्ति होने लगी है तो समझ लेना कि मेरे

आत्मिक व बौद्धिक दोनों ही बल क्षीण होने आरम्भ हो गए हैं। मुझे इनमें कदापि नहीं फँसना क्योंकि यह मेरे कमज़ोर होने का परिचायक है। ठीक है।

हाँ जी।

अब आगे जानो कि जिसका मन-मस्तिष्क स्थिर होता है वही अपने पर शासन कर सकता है। वही स्वयं का, अपने शरीर का व परिवार का संचालन ठीक से कर पाता है। वह जानता है कि जहाँ नश्वर शरीर व जगत के साथ उसके ख्याल का जुड़ना कुसंग कहलाता है वहाँ नित्य के साथ ख्याल का जुड़ना सत्य का संग कहलाता है। इस प्रकार संगत की रंगत के प्रभाव को समझते हुए वह शरीर व इस जगत के विषयों के साथ नहीं जुड़ता क्योंकि वह मानता है कि यह उसके नित्यता के भाव से अस्थिर होने की बात है। इस सत्य का बोध होने के कारण ही वह सत्य का संग कर अपने सत्-चित्-आनन्द स्वरूप में सदा मग्न बना रह पाता है। तभी तो उसका चित्त सदा प्रसन्न रहता है और वह तद्नुकूल ब्रह्म आचरण कर पाता है। इस तरह वह ब्रह्म की नित्यता, नियमता व अनुकूलता को आजीवन कायम रखता है और इसी को अपना धर्म मान तद्नुकूल आचरण करता है। इस से ज्ञात होता है कि वह एक आदर्श शिष्य की भांति ब्रह्म शब्द रूपी शिक्षक के हुक्म का पालन करता है। हुक्म का यानि आज्ञापालन करने का अर्थ होता है उस शब्द ब्रह्म के अर्थ को जीवन में उतारना और उसे ही अपना धर्म मान धर्मसंगत आचरण करना। यह धार्मिक शिष्य वृत्ति कहलाती है जिसे वह धर्म संगत निभाता है। धार्मिक शिष्य वृत्ति का पालन करना परमार्थ की राह पर चलना कहलाता है।

इस प्रकार एक ब्रह्मचारी धार्मिक शिष्य वृत्ति अपनाकर आत्मिक ज्ञान की प्राप्ति द्वारा, सात्विक आहार के सेवन व आत्मसंयम अपनाने को महत्व देता है और इस प्रकार हर प्रकार की आसक्ति से बचा रह पाता है। तभी तो वह अपने परिश्रम द्वारा निष्कामता व

निर्लिप्तता से हर कार्य सिद्धि कर पाता है और सब करते हुए भी किसी के साथ नहीं जुड़ता। यह उसकी महान क्षमता होती है जिससे उसको ज्ञान, वैराग्य, भक्ति व सद्‌गुणों की प्राप्ति होती है और वह सदाचारी बन परमशांति व परमानन्द को प्राप्त होता है।

यह सब जानते समझते हुए सजनों जन्म से ही हमने अपने बच्चों की पालना के समय उनकी स्मृति में मज़बूती से धार्मिक शिष्य वृत्ति भरनी है। यह कार्य घर पर माता-पिता या सगे-संबंधियों ने व स्कूल, कालेजों में आचार्यों ने बच्चो के आदर्श शिक्षक बन कर करना है। इस संदर्भ में आओ जाने कि शिक्षक कौन होता है और शिष्य कौन होता है?

शिक्षक वह होता है जो बच्चों को शिक्षा देता है तथा अध्यापक से शिष्ट आचरण और व्यवहार करने की शिक्षा प्राप्त करने वाला व्यक्ति शिष्य कहलाता है। इस परिभाषा के अनुसार माता-पिता व अध्यापकों का कर्त्तव्य बनता है कि वे बच्चों को न केवल शिष्ट आचरण और व्यवहार करने की शिक्षा दें अपितु स्वयं भी वैसा ही आचरण व व्यवहार अमल में लाकर उन्हें तद्‌नुसार ढलने के लिए प्रेरित भी करें। इस क्रिया द्वारा बच्चों के अन्दर ऐसी शिष्य वृत्ति भरें जिससे कि वे उनकी आज्ञा का पालन करें और जो शिक्षा वे उन्हें आचार-व्यवहार की धर्मानुसार दे रहे हैं, वे उसकी धारणा करें। इस धारणा द्वारा वे सजन पुरुष व शास्त्रज्ञ बन जाएंगे तथा बुद्धिमानों का अनुकरण कर उन्हीं नियमों के अनुसार अपने आचरण व व्यवहार को साधे रख सदाचारियों की ही संगति करना पसंद करेंगे।

इस संदर्भ में जानो कि बुद्धिमान वही होता है जो सजन पुरुष होता है और शास्त्रों का यानि आत्मिक ज्ञान रखता है। इस प्रकार सजनों हमने स्वयं गृहस्थ-धर्म व सजन-भाव के नियमों के अनुसार आचरण व व्यवहार दर्शाकर अपने बच्चों को भी तद्‌नुकूल आचरण अपनाने के लिए प्रेरित करना है। यह माता-पिता का सबसे महान कर्त्तव्य है। इस हेतु हमें स्वयं व अपने बच्चों के प्रति जाग्रत बने रहना है कि

बातचीत के दौरान हम परस्पर शिष्ट भाषा व शब्दों का ही प्रयोग करें। याद रखो जहाँ कहीं भी इसके विपरीत आचरण व व्यवहार होगा वहीं हम अपने फ़र्ज़ अदा से डावांडोल हो जाएंगे व अपने बच्चों को इन्सान बनाने की बजाय हैवान बना देंगे जो अवश्य ही कभी न कभी हमें जीवन में कष्ट पहुँचाने का कारण बनेगा। अतः हमें सम्भलना है और परस्पर बातचीत के दौरान शिष्ट भाषा का ही प्रयोग करना है। इतनी शिष्टता हो हमारी वाणी में कि हम कटु सत्य को भी कटुता से न बोलें अपितु शिष्ट शब्दों में उसे कहने की क्षमता रखें।

अब दिल और दिमाग़ से ज़रा सोच कर बताओ कि कौन ऐसा करने की क्षमता रखता है?

(सबके हाथ खड़े हुए)

जिनकी शादी अभी नहीं हुई उन्होंने ने भी ब्रह्मचर्य आश्रम के अंतर्गत भविष्य को ध्यान में रखते हुए अपना निश्चय लेना है।

(सबके हाथ खड़े हुए)

ठीक है। अब सब अविवाहितों ने व नवदंपत्तियों ने ऐसा सुदृढ़ता से करने का निश्चय लेना है और आने वाली संतानों की पालना अपने माता-पिता की तरह न करते हुए सजन भाव के अनुसार करनी है। आई बात समझ में ?

हाँ जी।

याद रखो इसी प्रयत्न द्वारा ही आप व आपका परिवार सुख और समृद्धि से भरपूर हो सकेगा जिसका लाभ न केवल आपके परिवार को अपितु कुल समाज को भी मिलेगा क्योंकि इसी शिष्य वृत्ति में बच्चों को बचपन से ढालने पर ही बच्चा अच्छे स्वभाव और आचरण वाले व्यक्ति का रूप ले समाज के लिए परोपकारी सिद्ध हो सकेगा।

अतः सजनों अब से सबने इस शिष्य वृत्ति में ढलना आरम्भ कर देना है और जो भी शास्त्र की बात हो उसके आगे हाँ जी करनी है। कोई मनमत नहीं लगानी, न ही कोई तर्क करना है। याद रखो यदि आप ऐसा करते हो तो यह शिक्षा न प्राप्त करने वाली बात होगी। यह शिक्षा की अलोचना होगी जो वादी और विवादी करते हैं। ऐसे सजन इस स्कूल में शिक्षा प्राप्त करने नहीं आ सकेंगे। अतः सजनों सबने ऐसे सजनों के संग-साथ के प्रति सतर्क रहना है और उनका संग नहीं करना। आपने तो शास्त्र के हुक्म की पालना कर सजनतापूर्ण ऐसा व्यवहार करना है कि सारा परिवार खुश हो जाए और वातावरण हर्षोल्लास यानि प्रसन्नता से भरपूर हो जाए।

अब आगे जानो कि शिष्य होने की अवस्था या भाव में मज़बूत बने रहने पर ही एक बच्चा अच्छा स्वभाव और आचरण दर्शाने में सक्षम हो पाता है। ऐसा बच्चा ही सबके साथ सजनता और सुशीलता पूर्ण व्यवहार करता है। उस बच्चे के अन्दर विनम्रता होती है और वह आज्ञाकारी होता है। यह उसके शिष्य वृत्ति में ढलने का मापदण्ड होता है और इसी से उसकी शिष्य वृत्ति की मजबूती की परख होती है। ऐसे बच्चों का अपने माता-पिता पर विश्वास सुदृढ़ हो जाता है कि उनके माता-पिता उनको गुमराह नहीं कर सकते। तभी तो वे उनकी हर आज्ञा का खुशी से पालन करते हैं। यही शिष्य वृत्ति फिर उनका स्वभाविक गुण यानि धर्म बन जाती है। आप भी अपने बच्चों में यही शिष्य वृत्ति भर सको उसके लिए आपको कैसे माता-पिता बनना होगा, यह ध्यान से सुनोः-

हर बच्चे में शिष्य वृत्ति जाग्रत हो इसके लिए हर माता-पिता या बड़े संबंधी सजनों के लिए विरक्त चित्त वाला और सम्यक् दृष्टि यानि एक सा, स्पष्ट व शुद्ध चरित्र वाला होना आवश्यक होता है ताकि वे अपने गुरु पद को ठीक से निभा सकें और बच्चे उनकी आज्ञा का पालन करने वाले बनें।

ऐसा बनने की कौन हिम्मत दिखा सकता है?

हम सब।

सारे हिम्मत दिखाओगे।

हाँ जी। तो फिर मोह बन्धन में आसक्त मत होना। यह न हो कि आप किसी का दुःख देखकर खुद भी दुःखी हो जाओ। याद रखो आपको दुःख निवारक बनना है इसलिए विरक्त चित्त होना अनिवार्य है।

आपके लिए ऐसे आदर्श माता-पिता बनना इसलिए भी अनिवार्य है ताकि आप अपने गुरु पद की गरिमा को बनाए रख सको। उस गुरु पद पर कोई नालायक, लालची, मतलबी आदि कह कर चोट न मार सके। यहाँ यह भी जान लो कि गुरुपद की गरिमा से यानि प्रभाव से ही बच्चे में शिष्य वृत्ति भली-भांति पनपती है। उस गरिमा की सुदृढ़ता से ही शिष्य वृत्ति मज़बूत होती है और बच्चा आज्ञाकारी बनता है। अन्यथा ऐसा संभव नहीं हो पाता। यह वह मूल नब्ज़ है जिसको ठीक पकड़ने से धड़कन अपने आप ठीक हो जाती है। फिर दिल भी ठीक रहता है, दिमाग़ भी, धारणा भी ठीक होती है और बच्चा भी सुन्दर बनता है व सबको प्रिय लगता है। क्या सारे ऐसे बच्चे बनना चाहते हैं?

हाँ जी।

तो अपने माता-पिता से प्रार्थना करो कि हे माताओं-पिताओं ! जैसा अभी बताया गया है वैसा धारण करके व अमल में लाकर हम पर अपनी कृपा बनाए रखना।

(सब बच्चे बोल रहे हैं)

हे माताओं-पिताओं ! जैसा अभी बताया गया है वैसा धारण करके व अमल में लाकर हम पर अपनी कृपा बनाए रखना।

हाँ जी।

ठीक है जी। मंजूर है जी।

हाँ जी।

जान लो कि यदि ऐसा न किया यानि इसके विपरीत चलन अपनाया तो क्या होगा?

इसके विपरीत चलन अपनाने वाले माता-पिता गुरु घंटाल या माता-पिता होने का ढोंग या आडम्बर करने वालों की गणना में आते हैं यानि गुरुत्व के भाव से गिरे हुए माने जाते हैं। हकीकत में वो माता-पिता बच्चे के माँ बाप नहीं होते वरन् कामना पूर्त्ति उन्हें माता-पिता बना देती है। काम वासना की पूर्त्ति के गुलाम हो वे माता-पिता बन जाते हैं पर हकीकत में वे सही पालन पोषण करने वाले माता-पिता नहीं होते। आसक्ति के कारण ही वे फिर गुरु घन्टाल कहलाते हैं अर्थात् माता पिता होने का ढोंग व आडम्बर रचते हैं।

इस संदर्भ में जानो कि जिस प्रकार बाल-अवस्था का भक्ति भाव हकीकत में भक्ति भाव नहीं होता अपितु भक्ति भाव का ढोंग व आडम्बर होता है उसी तरह ऐसे माता-पिता भी सही मायने में माता-पिता नहीं होते अपितु माँ-बाप होने का ढोंग रचते हैं। तभी तो फ़र्ज़ अदा की तरफ़ से हार खा, समाज में आडम्बर फैलाने का स्वांग रचते हैं। परिणामस्वरूप सब तरफ़ से वे धिक्कारे जाते हैं। हकीकत में ऐसे माता-पिता ही कलियुग लाने वाले माता-पिता होते हैं। यह गुरु पद से गिरने की बात है और गिरा हुआ इन्सान कैसे किसी बच्चे को उठा सकता है? ऐसे माता-पिता बच्चों की सही प्रकार से पालना करने में सक्षम नहीं होते।

आज के लिए यही शिष्य-वृत्ति का सबक काफी है। अगली बार आत्मिक ज्ञान के विषय में बताया जाएगा। एक हफ्ता सबने अपने-अपने गुरु पद की गरिमा व शिष्य-वृत्ति पर ध्यान देना है। संक्षेपतः याद रखो कि हमने आडम्बरी नहीं बनना। न तो आडम्बर युक्त आँखे बन्द करके राम-राम जपने वाला भक्ति भाव अपनाना है न ही आसक्ति से युक्त होकर कामना वश कामुक संतान उत्पन्न कर ढोंगी

माता-पिता बनना है। इस सबके बाद जब आपको आत्मज्ञान के विषय में समझाएंगे तो वह जल्दी से आपको समझ में आ जाएगा। फिर आपको लगेगा की यह तो आजीवन करने वाली पढ़ाई नहीं है। यह तो सूक्ष्म पढ़ाई है जो चन्द शब्दों में ही समझाई जा सकती है। इस पढ़ाई की गुढ़ाई यानि व्यवहार अवश्य समय माँगती है ताकि हम सुदृढ़ हो सकें। अतः अगली बार यह सबक सबने दोहरा कर आना है ताकि आपको ब्रह्मचर्य जीवन में आत्मिक ज्ञान की पढ़ाई का मकसद समझ में आ सके।

अन्ततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनाँक 12 अक्टूबर 2014 का सबक

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इन्सान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

गत रविवार समझाया गया था कि शास्त्रों के अनुसार आत्मिक ज्ञान को धर्मशीलता व न्यायप्रियता से प्रयोग में लाने वाली वृत्ति को धार्मिक शिष्य वृत्ति कहते हैं। इस वृत्ति के अंतर्गत शिक्षक (माता-पिता, सगे-संबंधी, स्कूल-कालेजों के शिक्षक) एवं शिष्य (बच्चे) के मध्य आत्मिक ज्ञान यानि अध्यात्मिक विद्या का आदान-प्रदान होता है। याद रखो इस वृत्ति में आप ढलना है व बच्चों को भी ढालना है। तभी आत्मिक ज्ञान को भली-भांति आत्मसात् कर उसे व्यवहार में ला सकेंगे। आओ अब इसी संदर्भ में आगे आत्मज्ञान के विषय में समझते हैं।

आत्मज्ञान हकीकत में आत्मा का स्वरूप-ज्ञान है। यही तो ब्रह्म का ज्ञान कहलाता है और यह ही जीवात्मा और परमात्मा के विषय में होने वाला ज्ञान यानि अपने स्वरूप का ज्ञान कहलाता है। यह निज के यथार्थ यानि तेज-प्रताप, पराक्रम, कुदरती अंतर्निहित क्षमताओं

व योग्यताओं से परिचित होने की स्थिति है। इसी से सर्वांगीण स्वस्थता है।

यह जान लो कि व्यक्ति के अंतर्निहित ब्रह्मभाव यानि समभाव उस व्यक्ति के व्यक्तित्व के बदलते रहने पर भी एक निश्चित प्रकार का बना रहता है यानि डोलता नहीं। परिणामस्वरूप शरीर, प्राण, बुद्धि, वृत्ति इत्यादि सब सम बने रहते हैं और समदृष्टि हो जाती है। इसी सम अवस्था की सुदृढ़ता के आधार पर वह आत्मज्ञानी स्वयं को अद्वितीय समझता है। तभी तो ख़्याल ध्यान वल व ध्यान प्रकाश वल रख वह अपने असलियत स्वरूप की सर्वव्यापकता का बोध करते हुए स्वयं को सब कुछ करने में समर्थ पाता है। इस तरह उसे सर्व एकात्मा का दर्शन हो जाता है। सर्व एक आत्मा के प्रकाशित हो जाने से फिर वह जिस किसी के भी हृदय की तरफ देखता है उसे आत्मस्वरूप ही नज़र आता है यानि जो मन मंदिर वही जग अन्दर निगाह आता है। इससे क्या होता है? एक दूसरे के प्रति सजन भाव मज़बूत होता है। अन्य शब्दों में वैर-विरोध, लड़ाई-झगड़ा, ईर्ष्या-द्वेष इत्यादि के स्थान पर परस्पर सजन-भाव का वर्त्त-वर्त्ताव आरम्भ हो जाता है। इस प्रकार आत्मज्ञान ही वह स्रोत होता है जिसके द्वारा व्यक्ति परम संतोष व आत्मतुष्टि प्राप्त करता है। फिर यही संतोष ही व्यक्ति के धैर्यवान व पराक्रमी बने रह सदाचार यानि सच्चाई-धर्म की राह पर अग्रसर होने का हेतु होता है। इसी आत्मतुष्टि के कारण वह निर्विकारी इन्सान परोपकार के लिए अपने हित का विचार छोड़ देता है और निस्वार्थ होकर जीवन जीता है। इस तरह निस्वार्थता से निष्कामता आ जाती है और वह आत्मविश्वासी अपने गुण-दोषों को परखने में समर्थ हो जाता है। यहाँ यह भी जान लो कि स्वार्थ भाव से युक्त व्यक्ति अपने गुण-दोषों को परखने में असमर्थ होता है क्योंकि कामना पूर्त्ति उसे बन्धनमान बनाती है व 'हौं-मैं' उसे निरंतर सताती रहती है। इसी अवरोध के कारण वह अंतर्निहित दोषों को सहजता से नहीं स्वीकारता व अपने दोष ही उस स्वार्थी को गुण लगने लगते हैं।

इसके विपरीत निर्बाध होने के कारण निष्कामी का आत्मिक बल इतना महान हो जाता है कि वह किसी के द्वारा स्वयं को मानसिक या शारीरिक कष्ट देने पर भी हर प्राणी के प्रति परमात्म दृष्टि रखते हुए तृप्त रहता है। ऐसा महान, नेक व सजनता से परिपूर्ण व्यक्ति ही भ्रम या अज्ञान के कारण अनात्मा को आत्मा नहीं समझता और मन में गंभीर चिंतन द्वारा आत्मभाव में स्थित रहता है।

इसी संदर्भ में आओ अब आत्मिक ज्ञान यानि आध्यात्मिकता को भी समझते हैं।

आध्यात्मिकता क्या है ?

यह कुदरती ज्ञान भी है और विज्ञान भी। यह जीवनयापन की बेहतरीन कला है अर्थात् इससे पृथक उत्तम तरीके से जीवनयापन करने का तरीका किसी प्रकार के अन्य ज्ञान से प्राप्त नहीं हो सकता। जान लो कि आध्यात्मिकता यानि आत्मिक विज्ञान न केवल भौतिक शरीर को संवेदनशील यानि बोध युक्त जीव से पृथक करता है वरन् इन्द्रियों से परे जो आत्मा है उसकी श्रेष्ठता व प्रधानता को भी निरूपित यानि निश्चित करता है। आध्यात्मिकता ख़्याल ध्यान वल व ध्यान प्रकाश वल की युक्ति द्वारा तल्लीनता से गहराई में ले जाती है एवं आंतरिक व्यक्तित्व की वास्तविक पहचान को अंकित करती है कि 'दिव्य प्रकाश का अति सूक्ष्म संवेदनशील बिन्दु दोनों भौंओं के मध्यांतर एवं पीछे स्थित है।' इस प्रकार यह उस रहस्य के बारे में सूचित करती है कि समस्त मनुष्य मौलिक रूप से मानवीय अनुभूतियों से परिपूर्ण आध्यात्मिक जीव है। याद रखो जब इस रहस्य का भेद स्पष्ट हो जाता है तो मस्तक की ताकी खुल जाती है और मानव दिव्यता से परिपूर्ण अपने समस्त मानवीय गुणों का बोध कर मानवता का प्रतीक बन जाता है। वे सद्गुण फिर उसकी सम्पत्ति बन जाते हैं और वह उनका दक्षता से प्रयोग करने में प्रवीण हो जाता है।

आओ अब समझें कि आध्यात्मिक ज्ञान को अमल में लाना क्यों आवश्यक है?

इस हेतु जानो कि इस लौकिक शरीर, प्रकृति, संप्रदाय एवं समाज में क्रमिक यानि तरतीब से जन्म लेने के उपरांत शरीरात्मा की आरक्षित (Stored) अंतर्निहित स्थिर ऊर्जा यानि शक्ति व्यय होती है और क्रमशः क्षीण होती जाती है। इस प्रकार उसकी मूल प्रकृति विशुद्धता से अशुद्धता में और सकारात्मकता से नकारात्मकता में परिवर्तित होती जाती है। मानवता के इस बिगड़ाव यानि पतन को और रोकने के लिए आध्यात्मिकता को अमल में लाना अति आवश्यक है। निश्चित रूप से ऐसा सकारात्मक परिवर्त्तन लाने के लिए अपने आप को क्रियात्मक रूप से (Practicaly) प्रशिक्षित करना होगा तथा अनुचर यानि पीछे चलने वाले सेवक या दास बनने या बनाने के स्थान पर स्वतन्त्र रूप से जीना सीखना होगा। जान लो कि आध्यात्मिक तरक्की एवं संशोधन यानि आत्मसुधार ही एकमात्र ऐसा शक्तिशाली साधन है जोकि सामाजिक नैतिक एवं आचार संबंधी भ्रष्टता को रोक सकता है। याद रखो जिन्होंने आध्यात्मिकता को अपने जीवन का चलन बनाया है वह सन्तोषी ही अपने पर अधिकार रख इस जगत में निर्लिप्त विचरने में सामर्थ्यवान हो पाए हैं।

याद रहे आध्यात्मिकता हमें शान्ति, प्रेम एवं आनन्द की तलाश में निरंतर सचेतन बनाती है। यह ही सकारात्मक ऊर्जा की गुणवत्ता एवं परिमाण (Quality & Quantity) को बढ़ाती है और इस प्रकार व्यक्तिगत समरसता एवं सामंजस्यता को अनुभव करने की सक्षमता बढ़ाती है जिससे भौतिकता एवं नैतिकता के मध्य संतुलन स्थापित होता है और जीवन परमानंद को प्राप्त होता है।

इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि आत्मिक ज्ञान प्राप्त कर हम समरसता से जीवनयापन कर सकते हैं। तभी हम एकता, एक

अवस्था में बने रह परस्पर सजन-भाव यानि मैत्री-भाव से विचर सकते हैं। इसी द्वारा हम भौतिकता एवं नैतिकता के मध्य संतुलन कायम करके नीति अनुसार इस नश्वर जगत में विचरने में सक्षम हो पाते हैं। स्पष्ट है कि फिर मानव कदापि भौतिक जगत के कारणों से प्रभावित हो अनैतिकता नहीं अपनाता और इसलिए सदा निर्लिप्त व तृप्त बना रह अकर्त्ता भाव से इस संसार में विचरता है।

याद रखो जब हम या हमारे बच्चे इस तरह से आत्मिक ज्ञान के अनुरूप ढल जाते हैं तो हम नेक व चरित्रवान सदाचारी इंसान कहलाते हैं। ऐसे सदाचारी इंसान का व्यक्तित्व आत्मिक ज्ञान प्राप्ति द्वारा किस प्रकार मानवीय गुणों से ओत-प्रोत हो सम्पूर्ण इंसानियत का रूप ले लेते हैं आओ अब उसे जानते हैं:-

1. याद रखो कि आत्मज्ञान सबसे उत्तम विद्या होती है जो सहजता से एक व्यक्ति को श्रेष्ठ बना देती है। तभी तो ऐसा व्यक्ति सांसारिक जीवन में उपयोगी सभी विद्याओं का ज्ञान अर्जन कर भूल कर भी उसका दुरूपयोग नहीं करता और अपने जीवन में जो भी करता है वह जनहित को ध्यान में रखते हुए करता है। स्पष्ट है कि आत्मिक ज्ञान की पढ़ाई के अंतर्गत भौतिक पढ़ाई करना वर्जित नहीं है अपितु इसके ज्ञान के द्वारा भौतिकता व अध्यात्मिकता के मध्य संतुलन कायम रखा जाता है ताकि हम अपनी नैतिक अवस्था से गिर कर अनैतिकता व चारित्रिक पतन के गर्त में न चले जाए।

2. आत्मज्ञान द्वारा एक व्यक्ति आत्म यानि ब्रह्म साक्षात्कार करते हुए अपने अस्तित्व और अपनी गतिविधियों के प्रति बहुत अधिक जागरूक रहने की प्रवृत्ति में ढलता है। इस तरह उसे 'मैं' क्या ठीक कर रहा हूँ व क्या गलत कर रहा हूँ उसकी परख हो जाती है और वह मानव इसी प्रवृत्ति में ढल नित्य-प्रतिदिन अपने आप की परख करता हुआ आत्मनियंत्रण द्वारा आत्मसुधार करता जाता है। इस तरह वह जागरूक व्यक्ति विद्वान बन जाता है। जान लो कि एक विद्वान ही इस मिथ्या जगत की असलियत जान सकता है और इस

तरह अविद्या धारणा व अविद्या प्रदान करने की क्रिया से बचे रह अपने यथार्थ में बना रह सकता है। तभी तो धार्मिक शिष्य वृत्ति व शिक्षक का कर्त्तव्य ठीक तरह से निभा पाता है।

ऐसा विद्वान अपने आचरण को सूक्ष्म से सूक्ष्म दोष से मुक्त रखने हेतु, आत्मनिरीक्षण द्वारा, अपने अंतःकरण की विशुद्धता बनाए रखते हुए, स्वयं ही अपना मार्गदर्शन यानि अपने हित या भविष्य के विषय में निश्चित करता है। इस प्रकार वह आत्मविश्वासी अपने आध्यात्मिक लक्ष्य को पाने के लिए अपनी इच्छाओं और सांसारिक स्वार्थों के त्याग हेतु सदा आत्मविद्या की साधना में लीन रहता है। तात्पर्य यह है कि वह अपने आप को हर क्षण तोलता रहता है कि 'मेरा' मन-वचन-कर्म आत्मज्ञान के अनुसार ढल रहा है या नहीं अथवा 'मैं' जो भी सोचता हूँ, बोलता हूँ, व कर्म करता हूँ वह आत्मज्ञान अनुरूप हो रहा है या नहीं। इस तरह इस साधना द्वारा वह अवगुणों के रूप में अपने अन्दर जमी हुई खोट यानि मैल व दोषों को निकाल खरा यानि खालिस व पवित्र होता जाता है और सद्‌गुण सम्पन्न हो हर प्राणी के प्रति परमात्म-दृष्टि रखने में समर्थ हो जाता है। इस तरह श्रेष्ठ मानव के रूप मे ढल जाता है।

3. जानो परमात्मा ही गुणों का घर है। परमात्मा का बोध होने पर मस्तक की वह ताकी खुल जाती है जहाँ से आत्मज्ञान प्राप्त होता है। आत्मज्ञान द्वारा मानव ज्यों-ज्यों गुणों को धारण करता जाता है त्यों-त्यों उसको अपने परमात्मा स्वरूप की पहचान होती जाती है। तात्पर्य यह है कि निज परमात्म स्वरूप की पहचान करते हुए उसे ऐसे लगने लगता है कि जो परमात्मा के गुण हैं वो गुण तो मुझ में भी हैं। इस तरह धीरे-धीरे उसे उस परमात्मा में व्यापत सम्पूर्ण गुण अपने लगने लगते हैं। तभी तो आत्म-परमात्मा का भेद मिट पाता है और वह अभेद हो जाता है। इस प्रकार उन गुणों के आधार पर एक गुणी व्यक्ति उस गुणेश्वर परमात्मा का सर्व-सर्व बोध कर पाता है व एक अच्छा इंसान बन हर प्रकार का पराक्रम दिखाने के योग्य बन जाता है। यही उसके जीवन में विजयी होने का प्रतीक होता है।

याद रखो गुणों को जानना या जनाना आत्मदर्शन करने व कराने जैसा उत्तम कृत्य कहलाता है। तभी तो सद्‌गुणों से युक्त ऐसा व्यक्ति गुणवान कहलाता है और भरपूर हो सम्पूर्णता को प्राप्त हो पाता है। फिर वह निजी आत्मीय गुणों के अनुसार इस जगत में विचरता तो है पर वहाँ से कुछ धारण नहीं करता क्योंकि उसे प्रतीति हो जाती है कि इस नश्वर जगत में कुछ भी धारने योग्य नहीं है। अपनी धारणा में वह उस गुणेश्वर को ही अंकित कर लेता है और फिर उसे ही जानता है और उसे ही जनाता है। यही उत्तम क्रिया मानी जाती है। ऐसे माता-पिता की संतान ही सद्‌गुण सम्पन्न होती है।

अतः याद रखो कि हमें संसार में विचरते हुए सांसारिकता निभानी है पर कुछ धारण नहीं करना। स्मरण रखना है कि हम भरपूर हैं, सम्पूर्ण हैं। इस तरह निजी गुणों के आधार पर हमने शरीर क्या है, सम्बन्ध क्या है और यह मिथ्या जगत क्या है इसकी क्षणभंगुरता की परख अवश्य करनी है पर इस शरीर में, संबंधियों में व जगत में लिप्त नहीं होना। याद रखो यदि यह भूल हो गई और मिथ्यात्व हमने धारण कर लिया तो वह हमारी सम्पत्ति नहीं बन सकेगा यानि हमेशा हमारे पास नहीं रह सकेगा। कभी न कभी अवश्य समाप्त हो जाएगा। मिट जाएगा या कोई उसे हमसे छीन लेगा या वह रूप बदल लेगा। इस तरह हम उसकी पहचान ही खो बैठेंगे और परिणाम के रूप में रोना-झुखना प्राप्त होगा। अतः यह भूल मत करना और आत्मिक ज्ञान प्राप्त कर गुणवान बनने का यत्न करना।

4. आत्मिक ज्ञान एक व्यक्ति को निज शक्ति का ज्ञान ही नहीं कराता वरन् उसको धर्मानुसार प्रयोग करने की क्षमता भी प्रदान करता है ताकि वह आत्मबल का सदुपयोग करते हुए अपनी विकारों से रक्षा कर पाए। याद रखो आत्मिक बल का कमज़ोर होना निज श्रेष्ठता को खोना है और मन का अशांत होना है। याद रखो एक व्यक्ति का बल ही उसके साँस लेने, बोलने, कुछ करने, देखने, पालन-पोषण करने, कुछ भी संग्रह करने व किसी को क्षति पहुँचाने का सामर्थ्य होता है। जिस व्यक्ति के पास भरपूर आत्मिक बल होता है वह यह

सब युक्तिसंगत-धर्मानुसार करने की सामर्थ्य रखता है और अपने बल का प्रयोग नकारात्मक कार्यों में या किसी को क्षति पहुँचाने में नहीं करता।

5. आत्मिक ज्ञान अपने आप में वह सर्वश्रेष्ठ परमार्थिक धन है जिससे व्यक्ति एक तो सर्वोच्च सत्य यानि ब्रह्म और जीव के ज्ञान का बोध कर सकता है, दूसरा परमतत्व की साधना और ब्रह्म की प्राप्ति को ही सबसे श्रेष्ठ कर्त्तव्य मानते हुए परोपकार कमाना अति आवश्यक मानता है। यहाँ तक कि स्वार्थी धन भी नेक नीयती से कमाता व व्यय करता है। इस प्रकार उसके मन में स्वार्थ पनपने की कोई गुंजाइश ही शेष नहीं रहती और वह परमार्थिक कार्यों में ही जुटा रहता है।

6. आत्मज्ञान ही अपने आप में विवेकशक्ति है जो व्यक्ति को निज का, जगत का, व ब्रह्म का ज्ञान-विज्ञान विचार द्वारा धारण कर, अपना जीवन युक्तिसंगत व्यतीत करने के उपाय प्रदान करता है। तभी तो ऐसा व्यक्ति हर कार्य आत्मीयता से सिद्ध करते हुए सदा शांतमय व आनन्दमय बना रहता है और निर्लिप्तता से जीवनयापन कर पाता है। जानो कि एक बुद्धिमान व्यक्ति ही सदाचार का रास्ता अपना सकता है।

7. आत्मज्ञान प्राप्त करना आत्मसाक्षात्कार करने के लिए तपस्या है यानि सत्य की जानकारी प्राप्त करने हेतु अति आवश्यक है। यहाँ याद रखने की बात है कि परमात्मा ज्ञान से पूर्ण है इसलिए निज ब्रह्म स्वरूप न तो कर्म द्वारा और न ही ज्ञान-कर्म के मिश्रण से जाना जा सकता है। उसको जानने के लिए तो केवल अंतर्दृष्टि द्वारा प्राप्त ज्ञान ही एकमात्र साधन है। तात्पर्य यह है कि ख़्याल ध्यान वल, ध्यान प्रकाश वल की युक्ति द्वारा ही हम अफुर अवस्था को धारण कर अपने प्रकाशित शाश्वत सत्य यानि यथार्थ स्वरूप का अपने अन्दर व सर्व जग अन्दर बोध कर सकते हैं। इसी से ही आत्मीयता

का रिश्ता कायम हो सकता है और 'हम सब एक हैं', इस सत्य का व एकता व एक अवस्था का भान हो सकता है। इस प्रकार अपना सत्य जानने के लिए हमें यह तपस्या करनी है। तभी आत्मज्ञान प्राप्त होगा। फिर हम अर्जित भौतिक ज्ञान का भी दुरुपयोग नहीं कर सकेंगे और न ही अनैतिक बनेंगे।

अन्ततः हम कह सकते हैं कि एक आत्मज्ञानी ही परिपूर्ण इंसान के रूप में विकसित होकर अपने निज धर्म को पहचान उसे सुदढ़ता से वर्त्त-वर्त्ताव में ला सकता है। ऐसा मानव ही सत्यनिष्ठ व धर्मपरायण कहलाने के योग्य होता है। वह ही बहादुर, समझदार व बुद्धिमान कहलाता है क्योंकि वह विकारों से अपनी रक्षा खुद करने में सक्षम हो जाता है। इस तरह मिथ्या जगत के स्थान पर सत्य धारणा कर व वैसा ही वर्त्त-वर्त्ताव दिखा अंत में वह आत्मज्ञानी विजयी हो जाता है।

अन्ततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इन्सान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

आत्मिक ज्ञान प्राप्ति से लाभ

1. आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने वाला व्यक्ति शब्द है गुरू, शरीर नहीं इस युक्ति को अपनाकर 'ईश्वर है अपना आप प्रकाश, ईश्वर है जे अजपा जाप' इस सर्वोच्च सत्य का बोध कर लेता है। तभी तो वह निज असलियत स्वरूप व उसकी सर्वव्यापकता को जान, कुदरती अंतर्निहित क्षमताओं व योग्यताओं से परिचित हो उनका सदुपयोग करने में सक्षम हो जाता है। यह अत्यन्त महान प्राप्ति है।

2. आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने वाले व्यक्ति को चेतनात्मक स्तर पर व्यक्ति-व्यक्ति में तथा आत्मा-परमात्मा में कोई भेद नहीं लगता और वह एकात्मा व आत्मीयता के भाव से इस जगत में विचरता है। तभी तो उसके लिए कोई बड़ा-छोटा या मध्यम नहीं होता अपितु चेतना के आधार पर सभी को एक ही परमतत्व से उत्पन्न मानते हुए वह समस्त प्राणियों को एक समान समझता है।

इस संदर्भ में याद रखो यह सतयुगवासियों का चलन होता है। सतयुगवासी जो भी ज्ञान रूपी धारणा करते हैं वह अपनी चेतन शाक्ति द्वारा प्राप्त करते हैं। इसलिए तो वे पूर्ण चैतन्य होते हैं और उस युग में कोई बाह्य ज्ञान प्राप्ति के स्रोत यानि धार्मिक ग्रन्थ या पुस्तकें इत्यादि नहीं होती। यहाँ विचारने की बात यह है कि अगर सतयुगवासी ऐसा कर सकते हैं तो हम क्यों नहीं? क्या हम कमज़ोर हैं?

नहीं जी।

हमें स्मरण रखना है कि हम शक्तिशाली पिता सजन श्री शहनशाह महाबीर जी की सन्तान हैं इसलिए हम कमज़ोर नहीं हो सकते। हमें भी अपनी चेतन शक्ति द्वारा ज्ञान रूपी धारणा करने के योग्य बनना है। तभी सत्य ज्ञान प्राप्त हो सकता है और हम सम अवस्था में बने रह सकते हैं। फिर हमारा समता का भाव कदापि भंग नहीं हो सकता। याद रखो समता का भाव वहीं भंग होता है जहाँ असत्य होता है। जहाँ भ्रम होता है वहीं संकल्प-विकल्प होते हैं जो द्वि-भाव के परिचायक होते हैं। अतः हमें किसी के वश में आकर भ्रम ग्रसित नहीं होना अपितु समस्त प्राणियों को चेतनात्मक स्तर पर समान समझना है और इसी भाव में ढलना व बने रहना है।

3. आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने वाला व्यक्ति आत्मा की अजरता-अमरता को जान जाता है। इसी कारण उसके लिए सुख-दुःख यानि जन्म-मरण, रोग-सोग, खुशी-ग़मी, मान-अपमान, अमीरी-गरीबी, हार-जीत व यश-अपयश एक समान हो जाते हैं और मौत का भय समाप्त हो जाता है ।

4. आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने वाला व्यक्ति समभाव की चाल अपनाता है यानि सम मानता है, सम जानता है और सम की पहचान कर समदृष्टि हो जाता है। याद रखो यह प्राप्ति सुगम भी है और दुर्लभ भी। अतः समदृष्टि होने के लिए सब अपने अन्दर प्रबल इच्छा पैदा करो। इस हेतु केवल इच्छा ही व्यक्त न करो अपितु अपने हाव-भाव से, बातचीत से उस यथार्थता की प्रतीति भी कराओ।

5. आत्मिक ज्ञान सकारात्मक ऊर्जा की गुणवत्ता एवं परिमाण (Quality and Quantity) को बढ़ाता है जिससे व्यक्ति भौतिक जगत के कारणों से प्रभावित हो कदाचित् अनैतिकता नहीं अपनाता। इस तरह भौतिकता एवं नैतिकता के मध्य संतुलन कायम होता है और व्यक्ति समरसता से जीवनयापन करते हुए सदा प्रसन्नचित्त बना रहता है। फिर कभी भी तनाव नहीं होता।

6. आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने वाला केवल पारमार्थिक पदार्थों को ही ग्रहण करता है। सांसारिक विषय उसके मन-मस्तिष्क को प्रभावित नहीं कर पाते। अगर कभी ऐसा होता भी है तो वह समबुद्धि सहजता से उनका परित्याग करने में सक्षम होता है। तभी तो मन व इन्द्रियों पर विजय पाने वाला वह जितेन्द्रिय अपने मन-वचन-कर्म पर अधिकार रखने वाला होता है।

इस संदर्भ में याद रखो परित्याग शब्द अति महत्वपूर्ण है। परित्याग द्वारा ही हम पारमार्थिक पदार्थों को ग्रहण करने के उद्देश्य में सफलता प्राप्ति कर सकते हैं। यह अत्यन्त पराक्रम दिखाने का विषय है क्योंकि बचपन से ही हमें लेने की/माँगने की आदत पड़ी हुई है। ऐसे में छोड़ना यानि कुछ त्यागना कठिन लगता है। याद रखो परित्याग द्वारा हमारे अन्दर के विकारों की/दोषों की स्वतः सफ़ाई हो जाती है और विशुद्धता ग्रहण होती जाती है। इस तरह पारमार्थिक पदार्थो को ग्रहण करना हकीकत में विशुद्धता को ग्रहण करना है और विकारों का परित्याग करना दोषों का शमन करना है। इस क्रिया द्वारा हमारे अन्दर यानि अंतःकरण पर स्वच्छता/निर्मलता छा जाती है जिससे सत्य स्वरूप प्रदर्शित हो जाता है। फिर परमात्मा कहीं छुपा नहीं रह पाता। मनः दर्पण के स्वच्छ होते ही परमात्म स्वरूप प्रगट हो जाता है और चित्त प्रसन्न हो जाता है। हकीकत में सत्य तो यह है, पर ज्ञानियों ने इस सत्य को खोज का विषय बना कर आम प्राणी को भ्रमित कर दिया है। परन्तु आप सबने निज यथार्थ का सत्य बोध करने हेतु आत्मिक ज्ञान प्राप्त कर इस कठिनाई को सुगम कर देना है और अज्ञान के स्थान पर सज्ञान को धारण करना है।

7. आत्मज्ञान प्राप्त करने वाले व्यक्ति का अंतःकरण सदा विशुद्ध बना रहता है। इसी विशुद्धता के कारण उसका आहार, ज्ञान व धारणा सात्विक, भाव शुद्ध, संकल्प स्वच्छ, दृष्टि कंचन, जिह्वा स्वतन्त्र, विचारशक्ति प्रबल, दृष्टिकोण सकारात्मक व व्यापक, वृत्ति-स्मृति निर्मल, सुरत कंचन, बुद्धि विवेकशील, नीयत नेक, मन उपशम व शान्त, ख़्याल अफुर, प्राण सम व चित्त सदा आनन्दमय बना रहता है। स्पष्ट है कि अतःकरण को जब हम विशुद्धता से सींचते हैं तो सम्पूर्ण प्रक्रिया भली-भांति संचालित होती है और हम स्वयं को सँवार कर गुणी व सशक्त हो जाते हैं।

8. आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने वाले व्यक्ति का ख़्याल ध्यान वल व ध्यान प्रकाश वल सदा जुड़ा रहता है यानि जगत के सब कार्यव्यवहार करते हुए भी वह अपने असलियत स्वरूप में स्थित व स्थिर रहने की क्षमता धार लेता है। इस प्रकार वह संसारी कार्यों और सुख भोगों में लिप्त नहीं होता।

संक्षेपतः अभी हमने जाना कि आत्मज्ञान द्वारा निज की पहचान हो जाती है। जब पूर्णताः हमें अपने असलियत स्वरूप का बोध हो जाता है तो हम नित्य भाव जो यथार्थता का भाव है, समभाव है, ब्रह्मभाव है, उसमें स्थिर व स्थित हो जाते हैं। फिर हमारे लिए ब्रह्मस्वरूप होकर इस जगत में विचरना कोई कठिन कार्य नहीं रहता। इस प्रकार हम सदा तृप्त व निर्लिप्त रहते हैं। इस तरह हमारा ख्याल ध्यान वल व ध्यान प्रकाश वल एकरस जुड़ा रहता है और हम समस्त कार्यव्यवहार करते हुए अपने असलियत स्वरूप में ठहरे रहते हैं।

अतः सजनों हमें भी आत्मिक ज्ञान को प्राप्त करने के लिए अपने अन्दर प्रबल इच्छा पैदा करनी है और उसको आत्मसात् करने के लिए सही ढंग से यत्नशील होना है। इस हेतु अपने गुण-दोषों का सूक्ष्मता आत्म विश्लेषण कर जिन विकारों को परित्यागना आवश्यक है वे अवगुण त्यागने हैं और आत्मसंयम द्वारा आत्मसुधार

करना है। इस तरह मन और इन्द्रियों के उकसाने पर भी अपने आचार-विचार पर अपना अधिकार बनाए रखना है ताकि जो भी हम जीवन में सिद्ध करना चाहते हैं वह ब्रह्म भाव में बने रह सहजता से सिद्ध कर पाएँ। अब इस सन्दर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ का पैगाम ध्यान से सुनोः–

श्री साजन जी कह रहे हैं

शाखः-

हम श्री राम नाम दे व्यापारी,
हम श्री राम नाम दे व्यापारी।
राम नाम कुल नगरी ओ सारी,
हम श्री राम नाम दे व्यापारी ।।
जगमग जगमग जगमग जगमग,
ओ - ओ - ओ - ओ - ओ।
हम श्री राम नाम दे व्यापारी,
हम श्री राम नाम दे व्यापारी।।
श्री राम रटन तुसां कर लवो,
राम नाम दा खज़ाना भर लवो ओ ओ ओ ओ ओ ओ।
राम नाम जगत हितकारी,
हम श्री राम नाम दे व्यापारी।।
श्री राम नाम दा घाटा न पाईं,
श्री राम नाम दा नफ़ा कमाईं ओ ओ ओ ओ ओ ओ।
श्री राम जगत भण्डारी,
हम श्री राम नाम दे व्यापारी।।
श्री राम नाम नूं इक रस हो ध्याइयो,
श्री राम नाम नाल मेल तुसां खाइयो।
एहो पदवी तुसां पाइयो एहो पदवी
तुसां पाइयो ओ ओ ओ ओ ओ ओ।
हम श्री राम नाम दे व्यापारी,
हम श्री राम नाम दे व्यापारी।।

अतः अब सबने राम नाम का व्यापार करना है अर्थात् आत्मिक ज्ञान प्राप्त करना है और आगे प्रदान करना है। इस तरह निष्कामता से आत्मिक ज्ञान का आदान-प्रदान करना है। यही सतयुग का चलन है। सतयुगी माता-पिता आत्मिक ज्ञान प्राप्त करते हैं और वही आगे अपनी संतानों को प्रदान करते हैं ताकि वे खुद व उनकी संतानें ब्रह्म भाव में स्थित व स्थिर रह सकें और किसी कारण भी उससे डोलायमान न हों।

यही आज का निश्चय है। अब से जो भी परस्पर बातचीत हो या एक दूसरे के प्रति हमारे दिल-दिमाग़ में आए वह विशुद्ध और स्पष्ट हो। यदि कोई संशय उत्पन्न भी हो तो उसका तुरन्त निराकरण कर लेना है ताकि विकृति उत्पन्न ही न हो और प्रसन्नचित्तत्ता बनी रहे व सब सजन-भाव में मजबूत रहें। जानते हो इससे क्या लाभ होगा?

हम एक भाव से विचर सकेंगे और हमारे दिल और दिमाग़ की हर पल सम अवस्था बनी रहेगी। यह होगा एकता, एक अवस्था में विचरना जो सतयुग का चलन है। तभी सतवस्तु अर्थात् सत्य स्वरूप प्रकट हो सकेगा और हमारा सम्पूर्ण व्यक्तित्व निखर कर सामने आएगा। फिर किसी से कुछ समझने की आवश्यकता नहीं रहेगी और हम एक अच्छे व नेक इंसान की तरह जीवन जीते हुए अपने मानव होने का सत्य सिद्ध कर पाएंगे।

अन्ततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शांति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

अभी हमने ईश्वर से क्या प्रदान करने के लिए प्रार्थना की?

बल, बुद्धि और सुमति।

ईश्वर बल, बुद्धि और सुमति कब प्रदान करते हैं?

जब हम हाँ जी का चलन अपनाते हैं।

बिल्कुल ठीक। जब हम मननकारी का चलन अपनाते हैं तो ईश्वर को यानि देने वाले को प्रसन्नता होती है और वह दिल खोल कर देता है। ईश्वर प्रसन्न होते हैं तो मन-चित्त भी अपने आप प्रसन्न हो जाता है। मन-चित्त के प्रसन्न होने से आत्मभाव जाग्रत हो जाता है और धीरे-धीरे इन्सान इसी भाव में मज़बूत होता जाता है। जब आत्मभाव मज़बूती का रूप ले दृष्टि और वृत्ति में उतरता है तो अन्दरूनी वृत्ति में ख्याल और बैहरूनी वृत्ति में स्वभाव यानि आचार, विचार व

व्यवहार तीनों ही आत्मभाव पर सुदृढ़ हो जाते हैं। इस प्रकार वृत्तियाँ समरस हो जाती हैं और उन्हें फिर समरसता से कोई हिला नहीं सकता। चाहे प्रलय भी आ जाए तब भी उस वृत्ति को कोई नहीं डगमगा सकता। वास्तविकता तो यह है कि प्रलय है ही नहीं। वह कहीं भी नहीं है, कहीं नहीं आती। वह तो वहीं आती है जहाँ कुछ बनत होती है। जब हम बन ही नहीं रहे तो कौन सी प्रलय किसको सिमेटेगी। जब कुछ बनत बनती है और हम उससे जुड़ते हैं तो ही प्रलय आती है। अतः इस बात को याद रखते हुए हमने हाँ जी का चलन अपनाना है और आत्मभाव को सुदृढ़ता से पकड़ना है। आओ अब आगे बढ़ते हैं और आत्मिक ज्ञान प्राप्ति से लाभ को आगे समझते हैं:-

आत्मिक ज्ञान प्राप्ति से लाभ

अभी तक हमने जाना कि आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने वाला व्यक्ति चेतनात्मक स्तर पर निज असलियत स्वरूप व उसकी सर्वव्यापकता को जान आत्मीयता के भाव से इस जगत में विचरता है अर्थात् उसके ख्याल, दृष्टि व वृत्ति में आत्मीयता होती है और उसका आचार, विचार व व्यवहार समरस होता है। तभी तो आत्मा की अजरता-अमरता का बोध कर वह समभाव की चाल अपनाता है और सकारात्मकता द्वारा भौतिकता एवं नैतिकता के मध्य संतुलन कायम कर समरसता से जीवनयापन करते हुए सदा प्रसन्नचित्त बना रहता है। इस प्रकार पारमार्थिक पदार्थों को यानि विशुद्धता को ग्रहण कर वह समबुद्धि जितेन्द्रिय बड़े से बड़ा परित्याग दिखाने की क्षमता रखता है। तात्पर्य यह है कि वह समबुद्धि इन्सान इतना पराक्रमी होता है कि सर्वहित की खातिर अपना सर्वस्व त्यागने की क्षमता भी रखता है। क्या हम यह त्याग दिखाने की क्षमता रखते हैं? क्या हम निज धर्म की रक्षा हेतु अपना तन-मन-धन त्याग सकते हैं?

(मौन)

शरीर त्यागने को आप क्या समझते हो जीवन का मिलना या मृत्यु को प्राप्त होना? याद रखो यह मृत्यु नहीं जीवन है क्योंकि सत्य घटित हो रहा होता है। सत्य ही जीवन है, जीवन ही सत्य है। मृत्यु तो कहीं है ही नहीं? जब मृत्यु है ही नहीं तो भय किसका? क्यों हम भयभीत होकर जिएँ? क्यों त्याग रूपी पराक्रम दिखाने से घबराएं? अब फिर पूछते हैं कि क्या यह सुनकर हमारे अन्दर राजपाट, वैभव त्यागने की हिम्मत पैदा हुई है? अगर कहा जाए तो हम प्राप्त सुख-सुविधाओं का व मोह-माया का परित्याग दिखा सकते हैं?

(मौन)

नहीं त्याग सकते न। यह कमजोरी है। याद रखो यह त्यागने से अमीरों के अमीर बन सकते हो। अपने शहनशाही घर में शांतमय बने रह सकते हो और अपनी शहनशाही मान सकते हो। यही आनन्द व विश्राम अवस्था है। इसी परित्याग द्वारा अंतःकरण सदा विशुद्ध बना रह सकता है और ध्यान दृष्टि मिथ्यात्व को एक तरफ़ कर सत्य का अवलोकन करने की क्षमता धार सकती है। एक बार यह क्षमता विकसित हो गई तो फिर वह ध्यान दृष्टि अनावश्यक को धारण नहीं करती। फलतः मन शान्त रहता है और जगत के सब कार्यव्यवहार करते हुए भी ख़्याल ध्यान वल व ध्यान प्रकाश वल सदा जुड़ा रहता है। यहाँ तक कि संसारी कार्यों और सुख भोगों से निर्लिप्त व तृप्त उस व्यक्ति का यथार्थ परमात्म यानि सत्य स्वरूप उसके आचार-विचार द्वारा प्रगट हो जाता है और वह परस्पर सजन-भाव का व्यवहार करते हुए इस जगत में आनन्दमय जीवन व्यतीत करता है। आओ इस संदर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रंथ क्या कह रहा है, वह संदेश सुनते हुए आगे जानते हैं-

श्री साजन जी के मुख के शब्द

ख़्याल जदों अपने घर विच राहवे,
तदों जीव विश्राम नूं पावे।

जेहड़े इन्सान यत्न करन, यत्न करन।।
ख़्याल जदों अपने घर विच राहवे,
इन्सान ध्यान इस्थर हो जावे।
संग लक्ष्मी चतुर्भुजधारी दा दर्शन पावे,
कोई विरले दर्शन करन दर्शन करन।
केहड़े रस्ते जाना सी सजनों,
केहड़े रस्ते जाय चढ़े।
घर दा रस्ता भुल के ते,
दूसरे शहर विच जाय वड़े जाय वड़े।।

स्पष्ट है कि ख़्याल जब अपने घर में रहता है तो जीव विश्राम को पा जाता है और ध्यान स्थिर हो जाता है। ध्यान को स्थिर रखने के लिए ख्याल को अपने घर में रखना अति आवश्यक है। ध्यान स्थिर होने पर ही सत्य का अवलोकन हो सकता है अन्यथा यदि ख़्याल इधर-उधर भटकेगा तो ध्यान अस्थिर हो जाएगा। परिणामस्वरूप यथार्थ स्पष्ट नहीं होगा। याद रखो जीवन का उद्देश्य पूरा करने के लिए यह हमारी प्राथमिक आवश्यकता है। यही हमारे लिए हितकारी है। ख़्याल घर में स्थिर है, यह कैसे पता चलेगा?

(मौन)

इस हेतु हमें अक्षर चला कर अफुर होने का प्रयत्न करना होगा। अक्षर चलाते समय या उसे छोड़ते समय यदि हमारी अफुर अवस्था बनी रहती है तो समझो हमारा ख़्याल अपने घर में स्थित है और हम अपनी अवलोकन शक्ति द्वारा सत्य धारणा करने में सक्षम हैं। तब हमारी धारणा कमज़ोर पड़ ही नहीं सकती और हम अपने घर में स्वतः ही उस असलियत स्वरूप का दर्शन करने के योग्य हो जाते हैं जिसका कोई विरला ही अवलोकन कर पाता है। यह सर्वोत्तम प्राप्ति है। याद रखो जो यह क्रिया ठीक से नहीं कर पाता यानि ख़्याल को अपने असली घर में स्थिर नहीं रख पाता वह घर का रास्ता भूल कर इधर-उधर भटकता रहता है क्योंकि फिर अंतः प्रकाश होते हुए भी उसे अंधकार ही नजर आता है।

उदाहरणतः जिस प्रकार लाइट के चले जाने पर रात्रि में चँहु ओर अंधकार ही अंधकार भासित होता है और सामने पड़ी हुई वस्तु भी निगाह नहीं आती उसी प्रकार अंतःप्रकाश के आगे अज्ञान का अंधकार छा जाने पर हृदय प्रकाशित वेद-शास्त्रों की लिखित यानि आत्मज्ञान को हम नहीं पढ़ पाते और आत्मस्वरूप हमारी स्मृति से विस्मृत हो जाता है। फिर न हम खुद को खुद देख पाते हैं और न ही समझ पाते हैं। आत्मबोध के अभाव में, किसी आत्मज्ञानी के समझाने पर भी, हम उसे झूठा करार करने का यत्न करते हैं। इस तरह न तो खुद आत्मज्ञान को पढ़ने में सक्षम रहते हैं न ही किसी के समझाने पर उसकी प्रतीति कर पाते हैं। मिथ्यात्व हमारे और आत्मिक ज्ञान के मध्य छा जाता है। इस प्रकार हम सत्य का बोध नहीं कर पाते। यह खुद को खुद छलना होता है जिसके वशीभूत हो हम अपनी इज्ज़त खुद खो बैठते हैं। इस संदर्भ में ध्यान दो कि अपने घर में ही व्यक्ति की इज्ज़त होती है। अपने घर में ही आदमी स्वतन्त्र होता है। घर से ही उसे सब कुछ प्राप्त होता है। उसी घर में बने रहने में ही उसकी शोभा होती है। घर के बाहर तो दुत्कार मिलती है क्योंकि बाहर वाले किसी की परवाह नहीं करते। वहाँ तो परस्पर द्वि-द्वेष, तेरी-मेरी का वातावरण बनता व बिगड़ता रहता है। अतः हमारे साथ ऐसा न हो इस हेतु सबको यह सुझाव है कि अपने ख़्याल को घर में ही रखो। इसी में भलाई है। इसी को अब अन्य शब्दों में ऐसे समझोः-

अपने घर में रहो
अपना घर, घर ही है
अपने घर से जो निकला
वही लुट गया।
फिर वह झुखने लगा
और रोने लगा
अरे यह मेरे संग
क्या हो गया।।

जो मिला था प्रभु से
वह सब खो गया
अब न राह है कोई
और न मंजिल कोई।
भँवर में फँसी ज़िन्दगी
है गोते खाने लगी
बचा लो, बचा लो, बचा लो कोई,
मेरा बन मुझे अब सम्भालो कोई।।
मेरे ख्याल को देखो
यह क्या हो गया
संकल्प-विकल्प के जाल में
यूँ खो गया।
न इधर का रहा
न उधर का रहा
न जगत का हुआ
न प्रभु का हुआ।।
इसलिए तो कहते हैं कि
अपने घर में रहो
अपना घर, घर ही है।।

अन्त नतीजा हमने देखा कि घर से बिछुड़ा जीव न जगत का हो पाता है न प्रभु का। याद रखो इस जगत का तो कोई भी कभी नहीं हो सकता। यदि होता तो उसका कोई न कोई उदाहरण अवश्य होता। पर प्रभु के तो सब हो सकते हैं। इस सन्दर्भ में तो असंख्य मिसालें हमारे सामने हैं कि जो भी प्रभु का हुआ उसने स्वार्थ व परमार्थ दोनों तरफ से सब कुछ पाया और वह सदा के लिए सुखी व आनन्दमय हो गया। अतः अक्ल अपनी टिकाणे ले आओ और ख़्याल को अपने घर में रखो ताकि ध्यान स्थिर हो जाए। बस थोड़ा सा यत्न करो बाकी सब सजन श्री शहनशाह हनुमान जी, जो दयालुता के राजे हैं और सब अवगुण क्षमा कर उद्धार कर देते हैं,

सम्भाल लेंगे। आओ अब आगे बढ़ते हैं और आत्मिक ज्ञान प्राप्ति से लाभ के विषय में और अधिक जानते हैंः-

9. आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने वाला व्यक्ति नौजवान युवावस्था को धारण कर उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल हो जाता है व उसकी भक्ति प्रबल और शक्ति ताकतवर हो जाती है अर्थात् बाल अवस्था की भक्ति छूट जाती है और युवावस्था की भक्ति की तरफ़ रुचि हो जाती है।

10. आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने वाला व्यक्ति गुरुमत पर चलता है इसलिए वह ईश्वरीय हुक्म को मानने वाला अपना मार्गदर्शन आप करता है और इस प्रकार अनुशासित, शिष्ट, आज्ञाकारी व सदाचारी सुपुत्र कहलाता है।

11. आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने वाला व्यक्ति यह जानता है कि कर्त्तापन से किए कार्य या कर्म का फल भुगतना पड़ता है, अतः वह प्रत्येक कार्य हौं-मैं यानि अहं भाव से रहित होकर अकर्ताभाव से तथा पूर्ण निष्ठा से करता है। तभी तो उस द्वारा किया प्रत्येक कर्म जनहित के लिए होता है और वह परोपकारी प्रत्येक कार्य को ईमानदारी, गंभीरता, दक्षता व निपुणता से संपन्न कर उसमें सफलता प्राप्त कर लेता है। इस तरह उसके मन की चंचलता समाप्त हो जाती है और उसके व्यक्तित्व में सम्पूर्ण इंसानियत निखर कर सामने आती है। तभी तो वह इन्सान कहलाने के योग्य हो जाता है।

12. आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने वाला व्यक्ति जाँचो, तोलो, तुल खड़ोवो की युक्ति द्वारा अपने गुण-दोषों को परख कर उनको सुधारने और सँवारने की क्रिया के प्रति आजीवन सजग यानि पूर्णतः सचेतन रहता है। इस सन्दर्भ में वह अपने दोषों को बिना मान-अपमान के हँस कर स्वीकारता है और उनका निवारण करने के लिए प्रतिपल अपने मन-वचन-कर्म पर एक चौकीदार की तरह

जाग्रत रहते हुए पहरा देता है। चाहे उसका शरीर सो भी जाए पर उसकी ध्यान-दृष्टि सदा ख्याल पर सतर्क बनी रहती है। तभी तो वह अपने आप को विचार शब्द द्वारा पकड़ निर्विकार यानि ख़ालिस सोना हो जाता है।

13. आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने वाला व्यक्ति निज अत्यन्त सुन्दर आत्मस्वरूप का दर्शन कर नश्वर जगत के मायावी आकर्षण से विमुक्त हो जाता है इसलिए तो विकारी भावों से उसे मुक्ति मिल जाती है और काम, क्रोध, लोभ, मोह व अहंकार उस को प्रभावित नहीं कर सकते और वह अपने स्थान पर बना रह उनसे निर्लिप्त बना रहता है।

14. आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने वाले व्यक्ति की शारीरिक-मानसिक व आत्मिक स्वस्थता पूर्ण रूपेण बनी रहती है। अन्य शब्दों में प्रत्येक परिस्थिति में उसका हृदय, दिमाग़ और शरीर तीनों ठीक रहते हैं और इस तरह वह वज्र अवस्था को धारण कर अफुर हो जाता है।

15. आत्मिक ज्ञान प्राप्ति कर वह सजनता का प्रतीक सबको अपना सजन मानता है। इस तरह सबको सजन सदता है, सजन सदवाता है और सजन ही पहरेवा पा कर मन-वचन-कर्म द्वारा हर एक प्राणी के साथ सजनता का ही वर्त्त-वर्त्ताव करता है। यही कारण है कि उसका आचार-विचार व व्यवहार सत्ययुक्त व न्यायसंगत हो जाता है और सब उसके व वह सबका प्रिय बन जाता है।

यहाँ विचार करो कि परिस्थितियों के वशीभूत हो हमारे मन-वचन-कर्म द्वारा कहीं सजनता खंडित तो नहीं हो जाती यानि हम किसी के विषय में बुरा सोचने, बोलने या करने तो नहीं लग जाते? देखो खुद को खुद देखो कि मैं कहाँ कमज़ोर पड़ता हूँ मन से, वचन से या कर्म से? जहाँ भी जो दोष नज़र आए उसको वहीं खत्म कर दो और मुक्ति प्राप्त कर लो। जानते हो इससे क्या होगा? इससे हमारा आचार, विचार, व्यवहार भिन्न-भेद विमुक्त हो एकरस सत्य युक्त हो

जाएगा। अतः ऐसा ही लाभदायक व्यवहार अपने व सबके प्रति करना है। तभी अपने जीवन का फ़र्ज़ अदा निष्काम भाव से हँस कर कर पाओगे।

16. आत्मिक ज्ञान को प्राप्त करने वाला न केवल घर-परिवार के प्रत्येक सदस्य के प्रति अपना फ़र्ज़ अदा हँस कर निष्काम भाव से निभाता है अपितु वह तो सार्वजनिक हित को ध्यान में रखते हुए सबकी उन्नति के लिए तन-मन-धन द्वारा पुरुषार्थ करने को भी अपना परम कर्त्तव्य समझता है। इसलिए तो वह कर्त्तव्यपरायण कुलदीपक व कुलचानणा कहलाता है। इस सन्दर्भ में यदि हम कुल के अर्थ को व्यापक रूप से देखें तो कुल का अर्थ सारी विश्व से है। पूरी विश्व ही हमारा कुल है। इसीलिए व्यक्तिगत स्तर पर खुद को ठीक रखना है, घर-परिवार को ठीक रखना है और संसार को ठीक रखना है। जानते हो यह सब ठीक होने पर क्या होगा? अगर ऐसी क्षमता हर मानव में आ जाएगी तो सर्व एकता और शांति का वातावरण पनप जाएगा और हर इन्सान अपनी व सब प्राणियों की रक्षा हेतु सदा तत्पर हो जाएगा।

17. आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने वाला आत्मभाव से शासित होकर सार्वभौमिक एकता व शांति के लिये काम करता है। इस हेतु शारीरिक व मानसिक कष्ट सहकर भी वह बड़े से बड़ा आत्मत्याग दिखाने से नहीं सकुचाता। तभी तो वह विश्व के सभी प्राणियों की रक्षा का दायित्व निर्भयता से निभा पाता है और परोपकारी कहलाता है।

इस विषय में सब जानते हैं कि परोपकार सजन श्री शहनशाह महाबीर जी का विशेष गुण है। अतः हमें उन्हीं का कहना मानना है व तद्नुरूप ही चलन अपनाना है। यहाँ पर आत्मिक ज्ञान प्राप्ति से प्राप्त होने वाले लाभ का दूसरा चरण समाप्त होता है। इससे आगे अगले सप्ताह पढ़ेंगे। आओ मिल कर बोलें:-

न बुरा सोचूँगा न बुरा बोलूँगा और न ही किसी का बुरा करूँगा।

अन्ततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इन्सान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

आज सजनों को सर्वप्रथम एक छोटे से नन्हे-मुन्ने की निर्मल, भोली हँसी दिखाकर उसकी तरह हँसने का अभ्यास करवाया गया और कहा गया कि हँसना पूरे शरीर में ऊर्जा का संचरण करता है। इससे शरीर का अंग-प्रत्यंग हरकत में आ जाता है और जहाँ भी दबाव या रुकावट होती है वह दूर हो जाती है। सजनों को फिर से कहा गया कि इस बच्चे की तरह हँसो और इस क्रिया में इस तरह से निपुणता लाओ कि हर परिस्थिति में हँसते रहना आपका स्वाभाविक गुण बन जाए।

फिर सजनों से पूछा गया कि यह बच्चा क्या दर्शा रहा है?

(मौन)

यह बच्चा दर्शा रहा है एक व्यक्ति की प्रसन्नचित्तता। यह प्रसन्नचित्तता एक बच्चे के भाव से इसलिए स्पष्टतः प्रगट हो रही है

क्योंकि अभी इसके ख़्याल का संबंध आत्मस्वरूप परमात्मा से छूटा नहीं। इसका ख़्याल ध्यान वल व ध्यान आत्मप्रकाश में जुड़ा हुआ है। स्पष्ट है कि इसकी प्रसन्नचित्तता का बल आत्मिक ज्ञान है। यह आत्मबोध की स्थिति है। आत्मबोध के कारण ही यह प्रसन्नचित्त है। जैसे-जैसे यह बड़ा होगा और सांसारिकता से प्रभावित हो उलझता जाएगा वैसे-वैसे इसकी प्रसन्नचित्तता का भाव भी क्षीण होता जाएगा। **अब आप अपने अनुभव से बताओ कि क्या तब यह हँस सकेगा?**

नहीं जी।

अतः आज आवश्यकता है ब्रह्मचर्य आश्रम के दौरान ही आत्मिक ज्ञान प्राप्त कर आगे प्रदान करने की। यह हर मातापिता का सर्वप्रथम कर्त्तव्य है कि वे बच्चे के जन्म से लेकर सोलह साल तक के समयकाल के मध्य ही उनको यह ज्ञान मनुष्यता अनुसार जीवन जीने योग्य बनाने हेतु प्रदान करना सुनिश्चित करें। इस कार्य सिद्धि हेतु इसके प्रति आदर्श स्थापित करने के लिए कुछ भी त्यागने से न सकुचाए ताकि उनकी धारणा स्वच्छता से भरपूर हो। इस तरह उनकी प्रसन्नचित्तता बढ़ेगी। याद रखो एक प्रसन्नचित्त व्यक्ति के प्रसन्न होने से वातावरण भी खुशहाल बनता है क्योंकि एक व्यक्ति को देखकर दूसरा व्यक्ति स्वयंमेव प्रसन्न हो जाता है। इस तरह घर-परिवार व समाज में प्रसन्नता का वातावरण पनपता है। ऐसे वातावरण के घेरे में जो भी आता है वह ही आनन्दविभोर हो जाता है। अतः प्रसन्नता का वातावरण कुल दुनियाँ में बनाने हेतु आत्मिक ज्ञान का प्रसार करने की अत्याधिक आवश्यकता है। इसके बगैर यह कार्य सिद्ध करना संभव नहीं हो सकता। इसके बिना सब उलझन है। याद रखो उलझना में ख़्याल अन्धकार में चला जाता है। जैसे दीपक प्रज्ज्वलित करने पर चहुं ओर तो प्रकाश फैल जाता है परन्तु उस दीपक तले अंधेरा होता है ठीक उसी प्रकार जब तक ख़्याल ध्यान वल, ध्यान प्रकाश वल जुड़ा रहता है तब तक

आत्मबोध बना रहता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि प्रकाशित दृष्टि क्रियाशील होती है। जब तक दृष्टि प्रकाशित होती है तब तक वह जो कुछ भी सामने आता है उसकी पहचान करती रहती है। परन्तु यदि ख़्याल इससे विपरीत अवस्था में दीपक तले जो अंधकार है वहाँ चला जाए या मन का दीपक ही बुझ जाए तो अज्ञानांधकार छा जाता है और आत्मविस्मृति होने के कारण ख़्याल अन्धकूप/खाई में चला जाता है। इन दोनों परिस्थितियों के विषय में विस्तार से फिर इस अध्याय के पूरा होने के पश्चात् बताएंगे। अभी तो बस यह जानो कि ख़्याल को प्रतिपल स्वच्छ रखना है क्योंकि ख़्याल ही आपका वर्त्तमान है। ख़्याल की सकारात्मकता या नकारात्मकता भविष्य की जननी है। ख़्याल तो सदैव वर्त्तमान में रहता है।

परन्तु सकारात्मक या नकारात्मक विचार आते जाते रहते हैं। वर्त्तमान से ही भविष्य बनता है। पर भविष्य तो सब जानते ही हैं कि कभी भविष्य रहता नहीं, एक दिन पुनः हमारे वर्त्तमान का रूप ले लेता है। इस तरह भविष्य से प्रभावित होकर वर्त्तमान सकारात्मकता या नकारात्मकता का रूप ले लेता है और वर्त्तमान के अनुसार भविष्य व भविष्य के अनुसार वर्त्तमान बनता व बिगड़ता रहता है। अन्य शब्दों में यह क्रिया एक चक्रव्यूह की तरह चलती रहती है और इसमें नासमझी के कारण हमारा ख़्याल व बुद्धि फँस कर भटक जाती है।

अतः याद रखो कि उज्ज्वल भविष्य हेतु ख़्याल की स्वच्छता अति आवश्यक है। इस आवश्यकता की पूर्त्ति किसी अन्य बाह्य संसारी ज्ञान से नहीं अपितु व्यक्तिगत स्तर पर अपने ऊपर हम अंकुश कितनी मज़बूती से रख आत्मज्ञान आत्मसात् कर सकते हैं, उस पर निर्भर करती है। इस प्रकार यह खुद पर निर्भर करता है कि हम अपने जीवन को उन्नत करें या बर्बाद करें। इसके विषय में विस्तार से हम आपको बाद में बताएंगे। अब जो विषय चल रहा है आत्मिक ज्ञान प्राप्ति से लाभ उस विषय में आगे बढ़ते हैं।

आत्मिक ज्ञान प्राप्ति से लाभ

अभी तक हमने जाना कि आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने वाला व्यक्ति चेतनात्मक स्तर पर निज असलियत स्वरूप व उसकी सर्वव्यापकता को जान आत्मीयता के भाव से इस जगत में विचरता है। तभी तो आत्मा की अजरता-अमरता का बोध कर वह समभाव की चाल अपनाता है और सकारात्मकता द्वारा भौतिकता एवं नैतिकता के मध्य संतुलन कायम कर समरसता से जीवनयापन करते हुए सदा प्रसन्नचित्त बना रहता है। इस प्रकार पारमार्थिक पदार्थों को यानि विशुद्धता को ग्रहण कर वह समबुद्धि जितेन्द्रिय बड़े से बड़ा परित्याग दिखाने की क्षमता रखता है। फलतः मन शान्त रहता है और जगत के सब कार्यव्यवहार करते हुए भी ख़्याल ध्यान वल व ध्यान प्रकाश वल सदा जुड़ा रहता है। यहाँ तक कि संसारी कार्यों और सुख भोगों से निर्लिप्त व तृप्त उस व्यक्ति का यथार्थ परमात्म यानि सत्य स्वरूप उसके आचार-विचार द्वारा प्रगट हो जाता है और वह परस्पर सजन-भाव का व्यवहार करते हुए इस जगत में आनन्दमय जीवन व्यतीत करता है।

इस संदर्भ में हमने यह भी जाना कि आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने वाला व्यक्ति युवावस्था की भक्ति अर्थात् नौजवान युवावस्था को धारण कर उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल हो जाता है व उसकी भक्ति प्रबल और शक्ति ताकतवर हो जाती है। तभी वह गुरुमत पर चलने वाला ईश्वरीय हुक्म को मानते हुए अपना मार्गदर्शन आप करता है और प्रत्येक कर्म अहं भाव से रहित होकर अकर्ताभाव से तथा पूर्ण निष्ठा से करता है। इस तरह वह अपने गुण-दोषों को परख कर उनको सुधारने और सँवारने की क्रिया के प्रति आजीवन पूर्णतः सचेतन रह निर्विकार हो जाता है। यही नहीं आत्मस्वरूप का दर्शन कर उसका ख़्याल नश्वर जगत के मायावी आकर्षण से विमुक्त हो विकारी भावों के चंगुल से स्वतंत्र यानि अफुर हो जाता है। फलस्वरूप उसकी शारीरिक-मानसिक व आत्मिक स्वस्थता पूर्ण रूपेण बनी रहती है

और वह सजनता का प्रतीक बन इस जगत में विचरता है। हम कह सकते हैं कि आत्मिक ज्ञान को प्राप्त करने वाला सार्वजनिक हित को ध्यान में रखते हुए न केवल निष्काम भाव से अपना फ़र्ज़ अदा हँस कर निभाता है अपितु वह परोपकारी तो आत्मभाव से शासित होकर सार्वभौमिक एकता व शांति के लिये काम भी करता है। आओ अब आगे जानते हैं। **आगे बढ़ने से पहले हम आपसे यह पूछना चाहते हैं कि इस निष्काम भाव से उसे क्या प्राप्ति होती है?**

मौन।

निष्काम भाव अपनाने से उसे सन्तोष प्राप्त होता है। इसी सन्तोष के कारण परहित की खातिर स्वार्थ त्यागकर वह परोपकार करने का सामर्थ्य जुटा पाता है। इस सन्दर्भ में याद रखो कामना दुःखदाई है। स्वार्थ भाव चोट पहुँचाता है और उससें बौखलाहट होती है क्योंकि इससे अहंता का भाव अन्दर पनपता है और अपने मन-मस्तिष्क के साथ-साथ दूसरों को भी इसकी मार सहनी पड़ती है। इसके विपरीत सन्तोषी प्रारब्ध अनुसार जो ईश्वर देता है उसमें प्रसन्न रहता है जिसके फलस्वरूप अंतर्निहित धैर्य, क्षमा, शील, सच्चाई, धर्म, सज्जनता जैसे अनमोल दिव्य गुण उसके व्यक्तित्व में सम्पूर्णता निखर कर सामने आते हैं और वह मानव-धर्म अनुसार इस जगत में विचरने की सक्षमता प्राप्त कर लेता है।

18. आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने वाले का आत्मविश्वास व आत्मिक बल महान होता है। इसलिए वह निर्भयता से कठिन से कठिन कार्य करने में भी स्वयं को समर्थ पाता है।

19. आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने वाला सन्तोष-धैर्य जैसे दिव्य ईश्वरीय गुणों का श्रृंगार पहन शील, दया, क्षमा, निष्पक्षता, न्यायप्रियता, सम्मान, शिष्टता आदि अद्वितीय गुणों से सुसज्जित हो जाता हैं और बैख़ौफ़ा-बेख़तरा सच्चाई-धर्म की राह पर विचरता है। इस सन्दर्भ में याद रखो कि निष्पक्षता रूपी गुण का इस्तेमाल करने

में कमज़ोर पड़ने के कारण ही भय हमें सताता है। इस भय के कारण ही विसूचिका जो रोगों का सरदार है वह हावी हो जाती है और आधि-व्याधि के रोग हमें सताने लगते हैं। अतः इस कमज़ोरी को समझो और बिना किसी भेद-भाव के निष्पक्षता से इस संसार में विचरना आरम्भ कर दो।

20. आत्मिक ज्ञान को प्राप्त करने वाला व्यक्ति अन्दरूनी व बैहरूनी वृत्ति की स्वच्छता के प्रति जागरूक रहता है। इस प्रकार बाहर की सफ़ाई के साथ-साथ शारीरिक स्वभावों की सफ़ाई रखने के कारण उसकी अन्दरूनी व बैहरूनी दोनों वृत्तियाँ एकरस हो जाती हैं।

21. विचार, सतज़बान, एक दृष्टि, एकता, एक अवस्था को पकड़ने से उस आत्मज्ञानी के अन्दर कोई संकल्प बाकी नहीं रहता। इस तरह वह संकल्प पर फ़तह पा रोने-झुखने से निजात पा जाता है।

22. आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने वाले मानव का हृदय सचखंड हो जाता है। तभी तो उसके पावन हृदय में शंख, चक्र, गदा, पद्मधार, सतवस्तु प्रकट हो जाती है यानि उसमें निरंकार का वास हो जाता है और उसकी यश-कीर्ति की सुगन्धि देवलोक को मात कर देती है।

23. आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने वाले व्यक्ति की एक निगाह एक दृष्टि, एक दृष्टि एक दर्शन यानि दिव्य-दृष्टि हो जाती है व इस तरह वह एकता एक अवस्था का प्रतीक बन जाता है।

24. आत्मिक ज्ञान प्राप्त कर वह त्रिकालदर्शी जो गुज़र गई, जो इस वक्त और जो आने वाली उस का ज्ञान प्राप्त कर महानदर्शी (जो नज़दीक की बात को समझ ले) और सुजानदर्शी (सबके दिलों की जानने वाला) भी हो जाता है।

25. आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने वाला व्यक्ति जीव, जगत व ब्रह्म के यथार्थ से परिचित हो निर्लिप्तता से सर्गुण-निर्गुण की खेडां खेडता है व निर्वाण-परमधाम की मौजां माणदा है।

26. आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने वाले का व्यक्तित्व प्रभावशाली होता है। तभी तो सब उसके आचार-विचार व व्यवहार का अनुगमन करने में अपनी शान समझते हैं। इस सन्दर्भ में युग पुरुषों का उदाहरण हमारे समक्ष ही है।

27. आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने वाला फुरने की सृष्टि से आज़ाद हो मृतलोक पर विजय प्राप्त कर लेता है यानि आत्मपद का अधिकारी हो जाता है।

अन्ततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनाँक 09 नवम्बर 2014 का सबक

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इन्सान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

न बुरा सोचूँगा, न बुरा बोलूँगा और न ही किसी का बुरा करूँगा।

जान लो कि यही एक अच्छा इन्सान बनने की निशानी है। यही सर्व एकात्मा के दर्शन का बोध है। यह बोध हो जाने पर व्यक्ति न किसी का बुरा सोचता है, न बोलता है और न ही बुरा करता है क्योंकि उसके लिए कोई दूसरा होता ही नहीं। इस प्रकार दुई भाव उसके हृदय में जाग्रत ही नहीं होता और वह हर अनुकूल व प्रतिकूल परस्थिति में समभाव में स्थिर और स्थित रहता है। न वह उत्तेजित होता है और न ही कोई विपरीत कर्म करता है। तभी तो सच्चेपातशाह जी कहते है -

सर्व राम रूप दिस्सां, सर्व है स्थान मेरा
सर्व जोत मेरी जगे, जगमगे जहान जेहड़ा।

अब आत्मिक ज्ञान प्राप्ति से लाभ के विषय में ध्यान से पढ़ो -

आत्मिक ज्ञान प्राप्ति से लाभ

अभी तक हमने जाना कि आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने वाला व्यक्ति चेतनात्मक स्तर पर निज असलियत स्वरूप व उसकी सर्वव्यापकता को जान आत्मीयता के भाव से इस जगत में विचरता है। तभी तो आत्मा की अजरता-अमरता का बोध कर वह समभाव की चाल अपनाता है और सकारात्मकता द्वारा भौतिकता एवं नैतिकता के मध्य संतुलन कायम कर समरसता से जीवनयापन करते हुए सदा प्रसन्नचित्त बना रहता है। इस प्रकार परमार्थिक पदार्थों को यानि विशुद्धता को ग्रहण कर वह समबुद्धि जितेन्द्रिय बड़े से बड़ा परित्याग दिखाने की क्षमता रखता है। फलतः मन शान्त रहता है और जगत के सब कार्यव्यवहार करते हुए भी ख़्याल ध्यान वल व ध्यान प्रकाश वल सदा जुड़ा रहता है। यहाँ तक कि संसारी कार्यों और सुख भोगों से निर्लिप्त व तृप्त उस व्यक्ति का यथार्थ परमात्म यानि सत्य स्वरूप उसके आचार-विचार द्वारा प्रगट हो जाता है और वह परस्पर सजन-भाव का व्यवहार करते हुए इस जगत में आन्नदमय जीवन व्यतीत करता है। जानते हो जब सजन भाव मज़बूत हो जाता है तो क्या होता है? तब इंसान यही बोलता है।

न बुरा सोचूँगा, न बुरा बोलूँगा और न ही किसी का बुरा करूँगा। अब यह बोलते हुए सब इस विषय में अपनी परख करते रहना कि हमारे अन्दर सजन भाव कितना मज़बूत है? इस की सत्यता हमें समझ में आ जानी चाहिए। याद रखो यदि सजन भाव आपसी व्यवहार में मज़बूती से उतर गया तो अन्दरूनी व पारिवारिक वातावरण तथा जीवन आनन्दमय हो जाएगा।

आत्मिक ज्ञान प्राप्ति से लाभ के संदर्भ में हमने यह भी जाना कि आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने वाला व्यक्ति युवावस्था की भक्ति अर्थात् नौजवान युवावस्था को धारण कर उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल हो जाता है व उसकी भक्ति प्रबल और शक्ति ताकतवर हो जाती है। तभी वह गुरुमत पर चलने वाला ईश्वरीय हुक्म को मानते हुए अपना

मार्गदर्शन आप करता है और प्रत्येक कर्म अहं भाव से रहित होकर अकर्ताभाव से तथा पूर्ण निष्ठा से करता है। इस तरह वह अपने गुण-दोषों को परख कर उनको सुधारने और सँवारने की क्रिया के प्रति आजीवन पूर्णतः सचेतन रह निर्विकार हो जाता है। यही नहीं आत्मस्वरूप का दर्शन कर उसका ख़्याल नश्वर जगत के मायावी आकर्षण से विमुक्त हो विकारी भावों के चंगुल से स्वतंत्र यानि अफुर हो जाता है। फलस्वरूप उसकी शारीरिक-मानसिक व आत्मिक स्वस्थता पूर्ण रूपेण बनी रहती है और वह सजन भाव को आत्मसात कर, सजनता का प्रतीक बन इस जगत में विचरता है। हम कह सकते हैं कि आत्मिक ज्ञान को प्राप्त करने वाला सार्वजनिक हित को ध्यान में रखते हुए न केवल निष्काम भाव से अपना फ़र्ज़ अदा हँस कर निभाता है अपितु वह परोपकारी तो आत्मभाव से शासित होकर सार्वभौमिक एकता व शांति के लिये काम भी करता है। हम सबको भी इसी तरह कार्य करने के योग्य बनना है।

इसके अतिरिक्त आत्मिक ज्ञान प्राप्ति से लाभ के संबंध में हमने यह भी समझा कि आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने वाले का आत्मविश्वास व आत्मिक बल महान होता है। याद रखो जिसका आत्मविश्वास व आत्मिक बल दोनों महान होते हैं वह पूर्ण इन्सान कहलाता है। तभी तो संतोष-धैर्य जैसे दिव्य ईश्वरीय गुणों का श्रृंगार पहन वह बैख़ौफ़ा-बेख़तरा सच्चाई-धर्म की राह पर विचरता है। यही नहीं उसकी अन्दरूनी व बैहरूनी दोनों वृत्तियाँ एकरस होती हैं और विचार, सतज़बान, एक दृष्टि, एकता, एक अवस्था को पकड़ वह संकल्प पर फ़तह पा रोने-झुखने से निजात पा जाता है। ऐसे मानव का हृदय सचखण्ड होता है और उसके पावन हृदय में शंख, चक्र, गदा, पद्मधार, सतवस्तु प्रकट हो जाती है। फिर एक निगाह एक दृष्टि, एक दृष्टि एक दर्शन कर वह आत्मज्ञानी त्रिकालदर्शी, महानदर्शी व सुजानदर्शी हो जाता है। इस तरह जीव, जगत व ब्रह्म

के यथार्थ से परिचित हो वह प्रभावशाली व्यक्तित्व वाला मानव निर्लिप्तता से सर्गुण-निर्गुण की खेडां खेडते हुए व निर्वाण-परमधाम की मौजां माणदे हुए मृतलोक पर विजय प्राप्त कर लेता है। इसका सीधा सा अर्थ होता है समभाव-समदृष्टि की युक्ति द्वारा उसने जो करना था वह उद्देश्य सिद्ध कर वह आत्मज्ञानी हो गया और अपना शहनशाह यानि अपना मालिक आप हो गया। फिर वह जगत में विचरते हुए भी उसमें लिप्त नहीं होता यानि मृतलोक पर राज करता है। आओ अब आगे जानें:-

28. युवावस्था की भक्ति यानि समभाव-समदृष्टि की युक्ति द्वारा आत्मिक ज्ञान प्राप्त कर वह आत्मज्ञानी सजन-भाव के आचार-व्यवहार द्वारा सबसे श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान हो जाता है व जन्म की बाज़ी जीत लेता है। इस प्रकार सजन श्री शहनशाह महाबीर जी यानि परम पिता के गुणों को धार कर उनकी चाल पकड़ने वाला वह आत्मज्ञानी प्रभु से मेल खा उनके द्वारे की शान बढ़ाता है। तभी तो वह उनका सपुत्र कहलाता है।

29. आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने वाला रूप-रंग-रेखा से बाहर हो अन्ततः ज्योति स्वरूप नाम कहा रोशन हो जाता है और इस तरह विश्राम पा जाता है। तभी तो वह कर्त्ता होते हुए भी अकर्त्ता भाव से इस जगत में नीति अनुसार विचरता भी है और नहीं भी विचरता।

इस संदर्भ में याद रखो जो जन्म-मरण के चक्रव्यूह में फँसा रहता है वह रूप-रंग-रेखा में बँधा रहता है पर जो आज़ाद हो जाता है वह रूप-रंग-रेखा रहित हो अपने असलियत ज्योति स्वरूप में स्थित हो जाता है। अब एक बार इन पंक्तियों को भावपूर्वक पढ़ते हुए, तीन बार उच्चारण करते हुए दोहराओ कि यही मेरी असलियत है, यही मेरी असलियत है, यही मेरी असलियत है। इस प्रकार इस सत्य को

पकड़ने का यत्न करो। याद रखो कि रूप, रंग, रेखा का त्याग ही निज असलियत स्वरूप की प्राप्ति का सूचक है। अतः कहीं इस त्याग से किसी को भय तो नहीं लगता।

नहीं जी।

शाबाश, अब चाहे कोई भी रूप त्यागे या नया रूप धारण करे तो हमें उस परिस्थिति में विचलित नहीं होना अपितु यह याद रखना है कि ये सब तो दृश्य है। दृश्य तो आएगा और चला जाएगा। अतः हमेश जो है, रूप-रंग-रेखा से रहित, अपना असलियत स्वरूप, उसी में ही स्थित रहना है।

30. आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने वाले का तीनों तापों अर्थात् अध्यात्मिक, अधिभौतिक व अधिदैविक का घटता-बढ़ता टेम्प्रैचर समाप्त हो जाता है क्योंकि रूप-रंग-रेखा मिट जाती है और निज ज्योति स्वरूप प्रकाश का बोध कर व उसी चमत्कार के साथ निगाह जोड़ वह स्वार्थी व परमार्थी दोनों राज्य प्राप्त कर लेता है । इस प्रकार वह सब कुछ पा जाता है यानि स्वार्थ की तरफ से सुखी हो जाता है और परमार्थ की तरफ से प्रभु से मेल खा जाता है। तब उसका जीवन अपने व सबके लिए सुखदाई हो जाता है और वह अपने ईश्वरीय स्वरूप का बोधकर अपने घर परमधाम में स्थित हो जाता है।

31. अन्ततः हम कह सकते है कि एक आत्मज्ञानी मानसिक शान्ति प्राप्त करने के लिए न केवल विभिन्न आडम्बर युक्त कर्म-काण्डों जैसे मन्दिर-मस्जिद, समाज-गुरुद्वारों, जंगलों-पहाड़ों व तीर्थ स्थानों आदि में जाने के भटकाव से बच जाता है अपितु पाठ-पूजा, व्रत-नेम जप-तप-भजन-बन्दगी-सिमरण, सेवक-स्वामी, भक्त-भगवान, गुरु-चेले आदि विभिन्न प्रकार के बाल अवस्था के भक्ति भावों से भी छुटकारा प्राप्त कर लेता है। यही नहीं एक आत्मज्ञानी अविद्या के कारण उत्पन्न अज्ञानता, जड़ता व अचेतनता से निजात पा ईर्ष्या-

द्वेष, वैर-विरोध, निन्दा-चुगली, लड़ाई-झगड़ा, भिन्न-भेद, ऊँच-नीच, हौं-मैं, दुराचार, व्यभिचार, भ्रष्टाचार द्वारा भौतिक ज्ञान का दुरुपयोग करने जैसे नाना प्रकार के कुकर्म-अधर्म करने से मुक्ति पा जाता है। इस तरह आधि-व्याधि के कष्टों, तनाव व अशान्ति से छुटकारा पा सदा के लिए प्रसन्नचित्त व शान्त हो जाता है। फिर वह जो भी करता है वह अपनी चेतनाशक्ति द्वारा ही करता है यानि उस समबुद्धि-समदृष्टा को किसी अन्य बाह्य स्रोत से ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं रहती। यही सचेतनता फिर व्यक्तिगत समरसता और सामंजस्यता को अनुभव करने की सक्षमता को बढ़ा उसे पूर्ण चैतन्य स्वरूप में स्वतन्त्रता से स्थित कर देती है।

इस सन्दर्भ में याद रखो यही सतवस्तु का चलन है। सतवस्तु में कोई ग्रन्थ नहीं होता। सब अपनी चेतनाशक्ति द्वारा ही ज्ञान प्राप्त करते हैं व आत्मज्ञानी कहलाते हैं। इस प्रकार सारे पूर्ण चैतन्य हो अपने स्वरूप को न केवल जानने वाले होते हैं अपितु उसके प्रति जाग्रत भी रहते हैं। उनकी दृष्टि जो हृदय स्थित है, चार वेद, और रोम-रोम में निहित है, छः शास्त्र, उनको पढ़-समझ कर धारण करने योग्य होती है। तभी तो वह सूक्ष्मता से हर पदार्थ का यथार्थ जान पाते हैं। यही होता है निज के रूप-रंग-रेखा से रहित होने के सत्य का बोध होना। अतः हम मानेंगे कि आत्मज्ञान की युक्तिसंगत धारणा ही जीवनदायक है। इस सत्य बोध का सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में इस प्रकार वर्णन है:-

अमर है मेरी आत्मा
न जन्म में है
न मरन में है
न रोग में है
न सोग में है
न खुशी में है
न ग़मी में है

न मान में है
न अपमान में है
न अमीरी में है
न ग़रीबी में है
वह अमीरों का भी अमीर है।

यहाँ विचारने की बात है कि जब मैं मान-अपमान ख़ुशी-ग़मी में नहीं तो मैं क्यों किसी के कुछ अच्छा या बुरा कहने पर मान-अपमान में चला जाता हूँ? क्यों भावुक हो जाता हूँ और ख़ुशी में बह जाता हूँ और ग़मी में उदास हो जाता हूँ? इस सन्दर्भ में याद रखो हम नित्य हैं और नित्यता के भाव में ही हमें स्थित रहना है। तभी तो मान-अपमान हमारा कुछ नहीं बिगाड़ पाएगा।

नित्यता के भाव में सुदृढ़ रह ही आत्मज्ञानी यथार्थता से जीवन जीने के योग्य हो जाता है और ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट कृति होने के सत्य को सिद्ध कर लेता है। आओ संकल्प लें कि हमें भी ऐसा ही इन्सान बनना है और नित्य भाव में स्थित रह अपने जीवन के उद्देश्य को सिद्ध करने के साथ-साथ गृहस्थ आश्रम का फ़र्ज़ अदा भी हँस कर निभाना है।

इसी सन्दर्भ में समरसता हेतु जो आवाहन है उसे ध्यान से सुनो -

समरसता हेतु आवाहन

कोई बोले न बोले पर तुम बोलो
मुझको तुमसे प्यार है
क्योंकि सब में ही जो बसत है
वही मेरा सच्चा यार है।।

जब भी तुमको मैं देखूँ
नज़र आ जाता है वह
हर बात दिल के आपकी
मुझसे कह जाता है वह।।

जिह्वा चाहे मौन है
पर बातें करते प्राण हैं
मान लो यह सत्य कि
हम सब एक जान हैं।।

हूँ मैं भी वही
हो तुम भी वही
जगत में आत्मभाव से
विचरने में ही अपनी शान है।।

इससे यह सत्य सिद्ध होता है कि हम सब भिन्न नहीं एक हैं और उस आद् पुरुष परमेश्वर की सन्तान हैं। अतः मैं-तूं अज्ञान रूपी झमेले में उलझे रहने के स्थान पर, एकता में बने रह, सजन-भाव का वर्त्त-वर्त्ताव सत्यनिष्ठा व धर्मपरायणता से करने पर ही हम मनुष्य ईश्वर की विशेष कृति होने का यथार्थ बोध सबको करा सकते हैं। याद रखो यही नेकी व यश-कीर्ति का चलन यानि सदाचार कहलाता है।

अन्ततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनाँक 16 नवम्बर 2014 का सबक

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इन्सान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

हमारी यह प्रार्थना स्वीकार हो इस हेतु आवश्यक है कि हर पल हमारा ख़्याल ध्यान वल व ध्यान प्रकाश के साथ स्थिरता से जुड़ा रहे तभी अंतर्निहित असलियत स्वरूप को हमारा ख़्याल पकड़ पाएगा और सत्य स्वरूप दृष्टिगोचर होगा। याद रहे ध्यान दृष्टि के प्रकाश के साथ जुड़े रहने पर ही असलियत स्वरूप ख़्याल में प्रतिबिम्बित होता है और हम उसका दर्शन कर पाते हैं। इस संदर्भ में जिस प्रकार बैहरूनी दृष्टि जब सूरज के प्रकाश को ग्रहण कर इस जगत को देखती है तो उसको उस प्रकाश में विद्यमान जगत की हर वस्तु दृष्टिगोचर हो जाती है, ठीक उसी प्रकार अन्दरूनी ध्यान दृष्टि जब सूरजों के सूरज परमेश्वर के प्रकाश को ग्रहण कर देखती है तो ख़्याल को उस प्रकाश में विद्यमान अपने असलियत स्वरूप का बोध हो जाता है। यह बोध निरंतर बना रहे उसके लिए मनुष्य को ख़्याल को ध्यान वल और ध्यान को प्रकाश वल रखते हुए प्रकाशित वस्तु की सत्य धारणा हेतु इस क्रिया को साधना के रूप में

अचूकता व दक्षता से करने का तप इस तरह से करना होता है कि यह क्रिया उसके स्वभाव के अंतर्गत सम्मिलित हो जाए और वह यथार्थ में सत्य का पारखी हो जाए। ऐसा ही हो इस हेतु इस क्रिया के दौरान मनुष्य को सावधान रहना होता है ताकि कोई विघ्न या बाधा उसके ध्यान की स्थिरता को भंग न कर पाए और उसका ध्यान हमेशा प्रकाश की तरफ जुड़ा रहे। तभी ही उसकी धारणा व वर्त्त-वर्त्ताव सत्य अनुरूप हो सकता है।

इस विषय में यह भी जानो कि दृष्टि दृश्य को मात्र देखती है। वह दृश्य को कभी भी धारण नहीं करती क्योंकि दृश्य तो हर पल बदलता रहता है। उस दृश्य को लेता अन्दर ख़्याल है और उसकी धारणा हृदय में होती है। फिर ख़्याल परस्पर आचार-विचार व व्यवहार के दौरान इस धारणा का इस्तेमाल करता है यानि वह जो भी सोचता है, बोलता है, करता है वह उसी धारणा के अनुरूप ही करता है। यहाँ विशेषतः समझने की बात यह है कि जितनी एकाग्रता से दृष्टि दृश्य को देखती है, उतनी स्पष्टता से ख़्याल उस दृश्य को अन्दर ले जाता है और उसकी धारणा होती है, फिर उतनी ही स्पष्टता से वैसी ही आगे आचार-विचार व व्यवहार की समुचित क्रिया चलती है।

इस क्रिया को युक्तिसंगत करने का तरीका भी समझाया जाएगा। यहाँ हम बताना चाहते हैं कि कलियुगी भाव-स्वभावों के प्रभाव के कारण चाहे इस क्रिया को सफलता से करने में कुछ विरले सजन ही सफल हो पाएंगे परन्तु फिर भी हमारी इच्छा यही है कि सब अपने परिवारों सहित इस क्रिया को सफलतापूर्वक करने के योग्य पात्र बनने हेतु तत्पर रहें। इस हेतु जो तरीका अभी बताया है सब उसे सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में से भी समझने का यत्न करो। याद रखों खुद समझने से विकास जल्दी होता है। अतः सारे जाग्रति में आकर यह यत्न अवश्य करना।

इसी सन्दर्भ में अब ध्यान से सुनो -

चिराग तले अंधेरा,

चिराग तले अंधेरा होता, चिराग तले अंधेरा
उधर रात है...इधर सवेरा,
चिराग तले अंधेरा होता, चिराग तले अंधेरा।

मन का चिराग सदा रखो रोशन
ख़्याल ध्यान-स्थिर रख प्रकाश में
ज्योति स्वरूप है अपना आप
खुद देखो निज आप में।

आत्मा जो प्रकाशमय है
है नयनों की शक्ति महान जी
नयनों को प्रकाश वल कर
करती आत्मिक ज्ञान प्रदान जी।

तभी तो हृदय वेद-शास्त्र विदित
ब्रह्म, जीव, जगत के बारे में
सुरत कर सकती है
स्पष्टता से सत्यज्ञान का भान जी।

सत्यज्ञान ही वह सतवस्तु है
जिससे स्वतः प्रगट हो जाते हैं
सर्व एक ही प्रकाश युक्त
ज्योति स्वरूप अनादि भगवान जी।

इस कविता द्वारा यह स्पष्ट होता है कि जिस प्रकार प्रकाश का स्रोत होते हुए भी चिराग तले अंधेरा होता है उसी तरह हृदय में जगमगा रहे परमात्मा रूपी चिराग के होते हुए भी कलियुग में अज्ञानतावश इंसान का ख़्याल पतनोन्मुख हो अंधकार में चला जाता है। आज अधिकतर हम सब इसी परिस्थिति का शिकार है। इस अंधकारमय अवस्था से ख़्याल को पुनः प्रकाशित अवस्था में लाने के लिए

आवश्यक है कि हम अपना ध्यान हृदय में जगमगा रहे आत्मस्वरूप के प्रकाश में स्थित रखें। ध्यान प्रकाश में स्थित रखने पर मन मंदिर प्रकाशित दर्शन दृष्टिगोचर होगा और मन-वचन-कर्म में उसका यथार्थ उतरेगा। इस प्रकार बौद्धिक उन्नति द्वारा हमारी व हमारे परिवार की यश-कीर्ति की सुगंधि फैलेगी। इसके विपरीत ख़्याल के अंधकार में जाने का अर्थ होगा नीचे को गिरना यानि अपनी सुध-बुध खो ख़्वाबों-ख़्यालों में विचरना और कुछ भी निगाह न आ पाने के कारण जीव, जगत व ब्रह्म की स्पष्टता खो बैठना। याद रखो इस अवस्था में इंसान यथार्थ से अनभिज्ञ हो मिथ्या धारणा के प्रभाव से मिथ्याचारी बन दुदर्शा को प्राप्त होता है। इसके विषय में विस्तार से अभी आगे बताया जाएगा। सब ध्यान से सुनना।

यह जान लो कि जिसके हृदय में सवेरा होता है ज्योतिस्वरूप अनादि भगवान का दर्शन उसके लिए कोई दुर्लभ नहीं होता। इसीलिए सतवस्तु के कुदरती ग्रंथ में ख़्याल ध्यान वल, ध्यान प्रकाश वल रखने का अति उत्तम सुझाव दिया गया है। यह होता है ख़्याल को ध्यान से आत्मप्रकाश में साधे रखना यानि दृष्टि को आत्मस्वरूप में टिकाए रखना ताकि निज परमतत्व यानि आत्मा में परमात्मा सदैव दृष्टिगोचर रहे और जीव उस प्रकाश के आत्मस्रोत सूरजों के सूरज परमात्मा को ही यथार्थ रूप से निज ज्ञान व बुद्धिबल समझ वहीं से ही सब कुछ प्राप्त कर निज व्यक्तित्व यानि मनुष्यता अनुसार बना रहे। यह होता है मन का प्रभु मे लीन रहना या हम कह सकते हैं कि सुरत का शब्द के संग निरंतर बने रहना। इस संदर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें संदेश दे रहा है कि-

विचारवान महाराज जी दा सपुत्र
हाँ-हाँ-हाँ-हाँ धर्म सच्चाई दे रस्ते चलदा है।
दीपक हुआ कुल दुनियां अन्दर, अक्लमंद सपुत्र
कुल दुनियां ते रौशन नाम ओ कहांवदा है।।

इस तरह हमें भी सपुत्र बन एक अच्छे व नेक यानि सत्यनिष्ठ व

धर्मपरायण इंसान की तरह जीवन व्यतीत करने का चलन अपनाना सुनिश्चित करना है। यही है जगत में सब कुछ निष्काम भाव से करते हुए मन का परमात्मा में लीन रहना। यहाँ याद रखो जिसका भी मन समस्त कार्यव्यवहार करते हुए परमात्मा में लीन रहता है उसके अन्दर कोई भी विकार-वृत्ति घर नहीं कर पाती क्योंकि वह अपना हर कर्म निःस्वार्थ व अकर्त्ता भाव से करने में सक्षम होता है। अतः हम सबको भी इसी प्रकार से प्रत्येक कर्म करने की सक्षमता ग्रहण करनी है क्योंकि तभी ही हम संतोषी कहला सकते हैं। संतोष ही आत्मतुष्टि का प्रतीक होता है और आत्मतुष्टि ही एक मानव के चरित्रवान बनने के पीछे मुख्य ताकत होती है।

इस प्रकार जान लो कि यदि संतोष है तो सब कुछ है यानि निर्विकारता है। निर्विकारता ही विचार ईश्वर अपने आप का बोध है। इस बोध के उपरांत इंसान को किसी प्रकार का जप-तप-संयम करने की आवश्यकता नहीं रहती और वह सरलता से अपना जीवन लक्ष्य प्राप्त कर सकता है। कहने का अर्थ यह है कि मात्र ध्यान को प्रकाश की तरफ व ख़्याल को ध्यान की तरफ रखने की इस सूक्ष्म क्रिया द्वारा हृदय आकाश में अंधकारमय वातावरण नहीं पनपता और मनुष्य का ख़्याल कभी भी भ्रमित नहीं होता। यही जीव का प्रकाशित व चैतन्य अवस्था में बने रहना कहलाता है और इसकी विपरीतता अंधकारमय अवस्था में ख़्याल का भटकना कहलाती है। स्पष्ट है कि सजन श्री शहनशाह हनुमान जी ने आजीवन आनन्दमय बने रहने के लिए कितनी सूक्ष्म, सुन्दर और आसान युक्ति हम सबको बख़्शी है और हम उसकी अनदेखी कर नाना प्रकार के दुःख भोग रहे हैं। बार-बार कहने पर भी जाग्रति में नहीं आ रहे और यत्नशील नहीं हो पा रहे। यह क्या दर्शाता है अपने आप से प्रेम भाव या फिर वैर भाव?

वैर भाव।

तो क्या यह उचित है?

नहीं जी।

अगर उचित नहीं है तो ख़्याल ध्यान वल व ध्यान प्रकाश वल रखना सीखो। घबराओ नहीं यदि हृदय में अंधकार छा भी गया है तो भी भयभीत मत होवो क्योंकि यही युक्ति ही एक मनुष्य के ख़्याल की अफुरता व स्वच्छता का हेतु है।

इस संदर्भ में क्या हम प्रकाश के गुण से परिचित है?

नहीं जी।

प्रकाश द्वारा कोई भी वस्तु जानी व जनाई जा सकती है। जैसे कि जगत है जो सूरज के प्रकाश द्वारा प्रकाशमय हो जाता है और जाना व जनाया जा सकता है। स्पष्ट है कि प्रकाश द्वारा वस्तु विशेष की स्पष्टता समझ में आ सकती है और वह ख़्याल द्वारा धारणा मे जा सकती है। परन्तु यदि हमारी ध्यान दृष्टि अंधकारमय वातावरण में है तो प्रकाश के अभाव के कारण हम किसी भी वस्तु विशेष का यथार्थ बोध न ही जान सकते है और न ही किसी को जना सकते हैं। इस प्रकार सत्य हमारी दृष्टि द्वारा हृदय में धारणा के रूप में नहीं उतर पाता। ऐसी अवस्था में मनुष्य का ख़्याल मिथ्या जगत के साथ जा जुड़ता है और आरम्भ होता है असत्य धारणा का सिलसिता और उसी अनुसार वर्त्त-वर्त्ताव।

ऐसा न हो इस हेतु आओ विस्तार से जानते हैं कि प्रकाशमय अवस्था क्या होती है -

अन्दरूनी व बैहरूनी दोनों वृत्तियों के अनुसार प्रकाश ऊर्जा का एक प्रकार है जो सूरज, चाँद, अग्नि व परमात्मा आदि से प्राकृतिक रूप में प्राप्त होता है। प्रकाश ही अंधकार को दूर करता है तथा इसके होने पर ही वस्तुएँ दृष्टिगोचर होती हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि

प्रकाश नेत्रों की वह शक्ति है जिससे देखना संभव होता है इसलिए इसे नेत्र-ज्योति या आँख की रोशनी भी कहते हैं। यहाँ नेत्रों से तात्पर्य बैहरूनी वृत्ति में आँखो से है व अन्दरूनी वृत्ति में ध्यान दृष्टि से है। इस प्रकार यह सर्वविदित है कि प्रकाशित दृष्टि ही किसी वस्तु/बात के प्रत्यक्ष होने की स्थिति कहलाती है या हम कह सकते हैं कि यही व्यक्ति को सत्यज्ञान/जानकारी/स्पष्टता प्राप्त करने की सक्षमता प्रदान करती है।

अन्यथा अंधकारमय वातावरण के दुष्प्रभाव से हमारी दृष्टि की कंचनता, ख़्याल की स्वच्छता व जिह्वा की स्वतंत्रता भंग हो जाती है जो मनुष्य के मन-मस्तिष्क की सम्पूर्ण भ्रमित अवस्था कहलाती है। फलतः मानव के उच्च बुद्धि व उच्च ख़्याल बने रहने का सवाल ही नहीं पैदा होता। हम कह सकते हैं कि प्रकाशित दृष्टि द्वारा ही हर वस्तु का सत्य हृदय में प्रगट होता है और हमारा मन मस्तिष्क द्वारा कर्मन्द्रियों को वैसे ही कर्म करने की प्रेरणा देता है। इस प्रकार फिर कही भी कोई भ्रम व भेद उत्पन्न नहीं होता इसलिए बुद्धि के भ्रमित होने व ख़्याल के भटकाव का सवाल ही पैदा नहीं होता। ऐसा इंसान समबुद्धि हो जाता है क्योंकि परस्पर व व्यक्तिगत द्वि-द्वैत व भिन्न-भेद समाप्त हो जाते हैं। इस विशेषता द्वारा मनुष्य को कुछ भी सत्यता से व्यक्त/व्याख्या करने की सामर्थ्य प्राप्त होती है। ऐसा इंसान फिर कभी भी झूठ नहीं बोलता। याद रखो किसी बात को सत्यता से प्रगट करने में अक्षम होने के कारण ही मनुष्य झूठ बोलता है। यह अक्षमता ही उससे झूठ बुलवाती है।

इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि प्रकाशित दृष्टि वाला इंसान उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल होने के कारण न केवल सत्यता से सब कुछ बखान कर सकता है अपितु वह तो कही हुइ बात की व्याख्या द्वारा प्रत्येक शब्द के अर्थ को भी हृदय में उतारने का अद्वितीय कौशल रखता है। तात्पर्य यह है कि इस प्रकाशमय अवस्था में ध्यान की स्थिरता व ख़्याल की अफुरता द्वारा, सूरजों के सूरज के रूप में

प्रकाशित उसकी बुद्धि आत्मस्रोत से आत्मिक ज्ञान ले उस ज्ञान का व्यवहारिक रूप सबको प्रदान करने की सक्षमता धार लेती है। इस प्रकार ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ही स्पष्टता से धारणा में आता है, वही वृति-स्मृति में ठहरता है और उसका ही सत्य बखान व्यवहारिक रूप में यानि मन-वचन-कर्म द्वारा होता है। जानना चाहते हो हकीकत में इस क्रिया द्वारा क्या हो रहा होता है। इस क्रिया द्वारा परमेश्वर की बात ही आगे जा रही होती है। तभी तो ईश्वरीय हुक्म पर चलते हुए सत्यता अनुरूप आचरण करना व जीवन का अर्थ सिद्ध करना सरल हो जाता है। इस तरह प्रकाशित बुद्धि इंसान यश-कीर्ति को प्राप्त होता है। हम कह सकते है कि अंधकार में भटके हुए जीवों को प्रकाश ही सही रास्ता दिखाता है।

तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है-

अपनी अक्ल दे नाल कुल दुनियां नूं जगाओ,
कुल दुनियां नूं जगाओ
अपनी अक्ल दे नाल दुनियां ते बुझिया दीपक जगाओ,
दुनियां तें बुझिया दीपक जगाओ
अपनी अक्ल दा है प्रकाश परउपकार कुल दुनियां ते दिखाओ,
परउपकार कुल दुनियां ते दिखाओ।

इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि ईश्वर कही गुपट नहीं अपितु प्रकाशमय है। दृष्टि के अन्धकारमय होने की स्थिति में ही वह हमें गुपट लगता है और दृष्टि के प्रकाशमय होने पर वह प्रकाशित हो जाता है। इस तरह दृष्टि पटल पर अज्ञानावरण छा जाने की स्थिति में ही वह सर्वव्यापक परमेश्वर हमें निगाह नहीं आता और हम उसकी खोज में इधर-उधर भटकते फिरते है व उसको पाने की खातिर भांति-भांति के कर्मकाण्डों व आडम्बरों में जा फँसते हैं। इस तरह वस्तु घर में होते हुए भी हम उसको बाहर मन्दिर, मस्जिद, समाज, गुरुद्वारों, जंगलो, तीर्थ-स्थानों आदि स्थानों में तलाशते हैं।

यह अविचार होता है। यदि वास्तव में उस ईश्वर के प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहते हो और उसे स्पष्टता से बयान करना चाहते हो तो ख़्याल को ध्यान वल व ध्यान को प्रकाश वल रखना होगा। इस युक्ति को स्पष्टतः धारण करने से ही उस परमेश्वर को प्रत्यक्ष कर सकोगे।

इस सन्दर्भ में ख़्याल को ध्यान वल व ध्यान को प्रकाश वल रख एक व्यक्ति अपने सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों/प्रभावों का आत्मविश्लेषण कर आत्मनियंत्रण द्वारा अनुशासित ढंग से निज व्यक्तित्व यानि मनुष्य धर्म पर स्थिर बने रहने हेतु अपना सुधार कर जीवन उद्धार कर सकता है। इसलिए याद रखो कि प्रकाश ही प्रत्यक्षता/स्पष्टता का स्रोत है। अतः प्रकाशयुक्त दृष्टि ही धर्म-प्रकाशी कहलाती है जो अपने निज धर्म को प्रकाशमान कर देती है। फलतः व्यक्ति मानव-धर्म पर सुदृढ़ बने रहते हुए धर्मपरायण बनता है। यहाँ यह सत्य जानने की आवश्यकता है कि जगत प्रकाश्य यानि प्रकाश मे लाए जाने योग्य है पर किसी अन्य यानि ईश्वर के प्रकाश से ही प्रकाशित होता है। जानो कि बैहरूनी वृत्ति में यह जगत सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है व अन्दरूनी वृत्ति में आत्मा में जो परमात्मा है उसके प्रकाश से समस्त ब्रह्मांड के रूप में प्रकाशित हो जाता है। जब यह अन्दरूनी वृत्ति में प्रकाशित होता है तो उस प्रकाश में आप, हम, सब एक रूप हो निगाह आते है। सारा भिन्न-भेद व अलगाववाद वहाँ समाप्त हो जाता है। ऐसा होने पर जीव के ख़्याल का जगत में भटकने का सवाल ही पैदा नहीं होता। इस सन्दर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है किः-

मुश्किल नहीं है ओ ईश्वर दे मिलने दी,
प्रभु दे मिलने दी ईश्वर दे मिलने दी,
मुश्किल नहीं है ओ ईश्वर दे मिलने दी।

(श्री साजन जी कह रहे हैं ओ मुश्किल किवें नहीं क्योंकि)

प्रकाशित हूँ प्रकाशित हूँ, मैं प्रकाशित हूँ प्रकाशित हूँ।

अतः इंसानियत में बने रहने हेतु मन को ईश्वर में लीन रखने का विधान अपनाने की आवश्यकता समझनी चाहिए और वैसा ही सुनिश्चित करना चाहिए ताकि अंधकार ख़्याल को अपने में न समेट ले और इस प्रकार अज्ञान धारणा आरंभ हो जाए। इस परिप्रेक्ष्य में यदि वस्तुतः स्थिति को देखा जाए तो अभी तो अंधकार ने सबके ख़्यालों को अपने में समेटा हुआ है। पर हमें उस स्थिति से उसको निकालना है। उसे निकालने हेतु हमें क्या युक्ति अपनानी होगी?

हर पल अपने ख़्याल को ध्यान वल व ध्यान को प्रकाश वल रखना होगा।

बिल्कुल ठीक। अब बताओ कि सूरज-चाँद-सितारे, आकाशों-आकाश, पातालों-पाताल किसका प्रकाश है?

श्री साजन जी का।

हाँ, यह बात मुकम्मल तौर पर याद रखनी है। यह सब आत्मिक ज्ञान वहीं से आ रहा है। सबको आनन्दमय रखने हेतु यह उनकी अनमोल दात है।

इस विषय में प्रकाशमय अवस्था का सत्य आपको अभी बताया गया अब ख़्याल के अंधकारमय अवस्था में भटकने से इंसान की बनत कैसी बनती है उस विषय में भी ध्यान से सुनो और अपना आत्मनिरीक्षण करते जाओ-

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार-

भक्ति शक्ति नूं भुलियां, जन्म नाल जुल्म कमावे।
कई जन्मां दे चढ़ गए मोतीबिन्द, दर दर ठोकरां खावे।
मिट गया चानणा होया अन्धेरा, नज़र कुछ न आवे।

अर्थात् युवावस्था की युक्ति को भूलकर इंसान अपने जन्म नाल वैर

करता है और इस वैर भाव के अधीन हो उसे समझ में ही नहीं आती कि कौन मेरा दुश्मन है व कौन हितैषी है। इस तरह दृष्टि अंधकारमय हो जाती है और यथार्थ का यानि सही-गलत को बोध करने की मानव में विवेकशक्ति ही नहीं रहती। इसी कमजोरी के कारण धीरे-धीरे उसे दिखना बंद हो जाता है और सत्य की परख व स्पष्टता समाप्त हो जाती है।

इस तरह कुछ न दिखाई देने की यह स्थिति अंधकारमय अवस्था कहलाती है। इस संदर्भ में यह तो सब जानते हैं कि जिसे दिखाई न दे वह अन्धों की गणना में आता है। कलियुग में अधिकतर इंसान इसी बीमारी का शिकार हैं और अंधों की तरह इस जगत में विचर रहे हैं। क्या यह बड़ी इज्ज़त की बात है कि आँखे होते हुए भी हम अंधों की तरह इस जगत में विचरें।

नहीं जी।

हम जानबूझ कर आप सबको चोट देने के लिए यह बात कह रहे है ताकि आप समय रहते ही संभल जाओ और नादानो की तरह इस जगत में न विचरो।

इस संदर्भ में याद रखो कि अक्ल का अंधा व्यक्ति किसी वस्तु व बात के यथार्थ को न तो देख सकता है न ही उसकी सत्यता को समझ सकता है। इस प्रकार मिथ्या धारणा के फलस्वरूप वह मूर्ख व अज्ञानी कहलाता है ओर दुष्टाचार व भ्रष्टाचार ही करता है। हम कह सकते हैं कि वह जीवन में जो भी करता है वह आँखे मूँद कर बिना सोचे-समझे व अच्छे-बुरे की परख किए करता है। यह अन्धा अनुकरण कहलाता है।

इसलिए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

कलुकाल विच अन्ने बहुतेरे, कोई विरले हैन सुजाखे,
अन्दर दीवा जगदा होवे, अन्नियाँ नूं कुझ न जापे।

अर्थात् मन मन्दिर प्रकाश होते हुए भी वर्तमान युग में ध्यान की स्थिरता के अभाव में मानव कुछ नहीं समझ पाता। परिणामस्वरूप आजीवन रोता-झुखता रहता है और कुछ भी सोचते व बोलते समय अपना भला-बुरा समझ नहीं पाता। इसी कारण उसके चारों ओर प्रतिकूल परिस्थितियाँ पनपती हैं जो उसके निराशापूर्ण जीवन का हेतु होती हैं। यही तो होता है बुद्धि का अंधकूप में गिरना। यहाँ अंधकूप शब्द से तात्पर्य उस सूखे हुए कुएँ से है जिसके अन्दर अँधेरा होता है और जहाँ कुछ दिखाई नहीं पड़ता। ऐसा कुआँ अधिकतर ऊपर से घास-पत्तों से ढका होता है जिस कारण पहचान में भी नहीं आता कि यह कुआँ है। घास-पत्तों से ढके हुआ कहने के पीछे आशय यह है कि ऐसी अवस्था में इंसान का ख़्याल छल-कपट के आवरण से ढँका होता है और इसी कारण अंधकारयुक्त माया जाल में घिर कर पतनोन्मुख हो जाता है।

इस संदर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

छड्डो हनेरा ढूँढो चानणां, जीव डिगया विच अन्ध कूप खाई।
कौन कढ्ढे ओन्हूं कौन ओ पकड़े, जीव रोंदियां उमर बिताई।।

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार यह मन पर छाए हुए अज्ञान रूपी बादलों के कारण ख़्याल की प्रकाश से वंचित रहने की अवस्था कहलाती है। यही तो इंसान की बुद्धि की भ्रमित अवस्था होती है। जानो इस अन्धकूप में जाकर इन्सान विपत्ति में फँस जाता है और इन विपत्तियों में घिर कर उसकी हिम्मत टूट जाती है। इस कठिनाई से फिर इन्सान को बाहर निकलने का कोई रास्ता ही दिखाई नहीं देता यानि वह अन्ध जाल में फँस फड़फड़ाता है और इस तरह सच्चाई-धर्म का रास्ता उसकी पकड़ से छूट जाता है। हम मानेंगे कि यह परिस्थिति इंसान के लिए अहितकर होती है क्योंकि इसी कारण मन में संकल्प-विकल्प उठते हैं और प्रलयकाल जैसी यह भयंकर परिस्थिति मनुष्य के मन-मस्तिष्क की शांति भंग कर देती है। यही नही खुद की लापरवाही व असावधानी के कारण आई यह प्रलय धीरे-धीरे मानव के समुचित बल-बुद्धि को समेटते हुए समस्त

शारीरिक, मानसिक व आत्मबल को ग्रस लेती है और इंसान भयभीत हो जाता है।

तभी तो इंसान की पकड़ से विचार छूट जाता है और वह मनमानी करने लगता है। फिर वह अंधविश्वासी संसारी व परमार्थिक जीवन में जो भी सोचता है व करता है बिना सोचे-विचारे या बिना उसकी सत्यता की परीक्षा किए ही करता है। हम कह सकते हैं कि ऐसे व्यक्ति के मन में किसी के प्रति विश्वास या श्रद्धा के पनपने का आधार ही मिथ्या होता है। ऐसा अज्ञानी इंसान परमार्थ को किंचित मात्र भी समझने की कोशिश नहीं करता और मिथ्या ज्ञान के आधार पर अंधों में काने राजा की तरह अहंकार वृत्ति अपना बैठता है। इस तरह दूसरों को अपने बहकावे में लेकर उनका संचालन करने वाला निर्दयी व निष्ठुर इंसान किसी का कष्ट-क्लेश नहीं समझता। उस अविचारी की लापरवाही या अन्याय का यही स्वभाव उसके किसी के प्रति अनुराग यानि आसक्ति का कारण तो बनता ही है साथ ही साथ इससे मन में वैर-विरोध भी पनपता है। यही तो जगत से अंध प्रेम कहलाता है जिसके फलस्वरूप उस मानव के अन्दर किसी भी काम को बिना विचार किए करने की प्रवृत्ति यानि अविवेकपूर्ण व्यवहार करने की प्रवृत्ति विकसित होती है। यह इसके आचार व व्यवहार की अव्यवस्थापूर्ण स्थिति होती है जिसमें क्रम, विचार व न्याय आदि का अभाव होता है। उसका यही मनमाना आचरण उसे सच्चाई-धर्म के रास्ते से भटका देता है और वह छल-कपट का मार्ग अपनाकर बात-बात पर तर्क-वितर्क करता है। यह उसके मन-मस्तिष्क की अशांत स्थिति होती है जिसके कारण मानव नरक तुल्य पीड़ा भोगता है।

इस सन्दर्भ में हमें सावधान रहना कि न तो भेड़ चाल अपनाकर हमने किसी काने राजा द्वारा दिखाए मार्ग पर चल उसका अनुकरण करना है और न ही खुद काना राजा बन किसी को अपने पीछे लगाना है। याद रखो किसी को भी अपना चेला बनाकर अपने पीछे

लगाना यानि उसकी स्वतन्त्रता का हनन करना पाप है। अतः हमें अंधों को सुजाखा बनाना है ताकि सब स्वतन्त्र रूप से स्पष्टता से जीवनयापन करने के योग्य बन सके। निःसंदेह यह तभी संभव हो सकेगा जब हम आत्मज्ञान प्राप्त कर तद्नुकूल अपने आचार-विचार व व्यवहार को ढ़ाल एक आदर्श कीर्तिमान स्थापित कर सकेंगे।

इस उद्देश्य पूर्त्ति हेतु सजनों सबको सुझाव है कि जो क्रिया आपको आज बताई है उस क्रिया के अभ्यास द्वारा कार्यव्यवहार करते हुए भी अपने ध्यान को प्रकाश वल व ख़्याल को ध्यान स्थिर रखने में निपुण बनो। यह अत्यंत आवश्यक है ताकि दिव्यता को प्राप्त कर न केवल आप आनन्दमय जीवनयापन कर सको अपितु आपकी आगे आने वाली संतानों मे भी यह विशेष गुण स्थानांतरित हो सके। इसके लिए सजनों घबराओ नहीं अपितु मन-चित्त लगाकर जो भी यहाँ कक्षा में बताया जाता है उसे धारण कर व्यवहार में ले आओ। इस तरह एक बार, बस एक बार इस आत्मिक ज्ञान की गहराई में निर्भयता से उतर कर तो देखो, निश्चित ही विजय आपकी होगी। यह है विश्वास, सर्वव्यापक ईश्वर के प्रति दृढ़ विश्वास जो कुदरती बनत के अनुरूप हमको मानवीय व दिव्य गुणों से सुसज्जित कर हकीकत में इंसान की सर्वश्रेष्ठता को जग जाहिर कर देता है। याद रखो इसे धारण करना ही श्रेयस्कर है।

इस विषय में सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हम सबको सुझाव दे रहा है कि आत्मनिरीक्षण करते हुए अब तक अपने अन्दर जितना भी बिगड़ाव आ चुका है उसे आत्मनियन्त्रण द्वारा सुधारने में विलम्ब मत करो। अतः सब मानेंगे कि हम सबके लिए समभाव-समदृष्टि की युक्ति अपनाकर इस नारकीय परिस्थिति से उबरने हेतु भरपूर प्रयत्न करना अति आवश्यक है ताकि हम पुनः मानव धर्म अनुसार ढल कर सजन-भाव के वर्त-वर्ताव द्वारा अच्छे व नेक इंसान की

तरह जीवन जीने के योग्य बन सकें। अतः इस सन्दर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हम सजनो को सन्देश दे रहा है-

जाग ओ बन्दिया, वक्त तेरा है जागने दा।
हिम्मत न हारीं वक्त न गुज़ारीं कर लै प्रभु नूं याद।
वक्त तेरा है जागने दा, ओ वक्त तेरा है जागने दा।।

कितनी सुन्दर, कितनी लाभकारी व शुभदायक बात है यह। यही तो है इन्सान की वास्तविक बनत व सक्षमता जो कुदरत ने उसे प्रदान की है व उसे तद्नुसार ही चलने का निर्देश दिया है।

अन्ततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इन्सान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

क्या हम, आत्मा में हैं परमात्मा, इस तथ्य व सत्य को मानते हैं?

हाँ जी।

तो क्या हम जानते हैं आत्मा और परमात्मा का मतलब क्या है और यह दोनों भिन्न हैं या अभिन्न हैं?

हाँ जी।

तो पहले बताइए आत्मा क्या है?

आत्मा जीवों में विद्यमान चैतन्य यानि निज का मूल तत्व है।

परमात्मा क्या है?

सबसे श्रेष्ठ चैतन्य। परब्रह्म, परमेश्वर आदि नामों से कहे जाने योग्य, सत्-चित्त-आनन्द-स्वरूप परमतत्व, परमात्मा बद्ध-जीवात्मा से भिन्न, कार्य-कारण से परे, नित्य, शुद्ध, ज्ञानस्वरूप और मुक्त स्वभाव वाला चैतन्य है।

चैतन्य से क्या तात्पर्य है?

चेतन होने का भाव यानि चेतनायुक्त जिसमें ज्ञान और सुध-बुध हो।

ब्रह्म, आत्मा और प्राण में से कौन चैतन्य माना जाता है?

सभी ही।

जड़ रूपी मानव शरीर की चेतनता का हेतु कौन होता है?

वही एक ही चैतन्य परब्रह्म परमेश्वर जो जीवों में विद्यमान रहता है और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का प्राण है।

तो शरीर रूपी मशीनरी का सदुपयोग करने हेतु बल व बुद्धि क्या है?

हृदय वेद विदित सबसे पवित्र ब्रह्मविद्या, जो आत्मज्ञान के रूप में शरीर के रोम-रोम, रग-रग में स्थित रहती है। यही आत्मिक ज्ञान ही यथार्थ में मनुष्य का ब्रह्म बल कहलाता है जो सम्पूर्ण शरीर में प्राण रूप से व्याप्त जड़ जगत को जीवनशक्ति प्रदान कर भासित करता है। अतः मनुष्य को इस जीवनकाल के दौरान मुक्त स्वभाव वाले चैतन्य स्वरूप में सदैव ठहरे रहने के लिए अर्थात् अपने ज्ञान स्वरूप का बोध करने के लिए अपने ख़्याल को निज चेतना स्रोत के साथ जोड़े रखना अति आवश्यक है यानि मन को उसी में लीन रखने के विधान पर सुदृढ़ बने रहना है। याद रखो यही निज ज्ञान स्वरूप आत्मिक बल ही मनुष्य के ख़्याल को विचार ईश्वर है अपना आप के सत्य से जोड़े रखता है और उसे निज के सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक व सर्वज्ञ होने का यथार्थ जनाता है।

ऐसा बोध होने से क्या लाभ होता है?

यह बोध मनुष्य को निष्पक्षता, निर्भयता व निष्काम भाव से जीवन जीने योग्य बना देता है जो उसके घर-परिवार, समाज व जगत में तृप्त व निर्लिप्त बने रह सबके प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए निज जीवन उद्देश्य सिद्धि करने का हेतु होता है। इसलिए हमें मानना होगा कि किसी भी अशुभ से बचे रहने के लिए मनुष्य के पास एक ही साधन है और वह है आत्मिक ज्ञान जो आत्मा की आवाज़ के रूप में प्रणव ध्वनि द्वारा हृदय में प्रकाशित होता है। याद रखो ईश्वर कभी भी किसी का न अशुभ चाहता है न ही करता है और न ही होने देता है। अशुभ प्राप्ति तो कुकर्मों व अधर्मों का फल भोग होती है। इसीलिए यह सत्य सबके लिए जानना आवश्यक है कि आत्मज्ञानी सदा सुकर्म ही करता है पर सुकर्मों में भी जकड़ता नहीं। यही तो होती है मुक्कमल निर्लिप्तता व निज यथार्थ में सुदृढ़ता से बने रहना।

जान लो कि इसके विपरीत भौतिकता के प्रभाव से ग्रस्त होने के कारण आज का मानव अपनी आत्मा की आवाज को सुनने में असक्षम हो गया है यही कारण है कि वह आत्मिक ज्ञान को आत्मसात् कर उसके अनुकूल अपने मन-वचन-कर्म को धर्मसंगत नहीं ढाल पा रहा है। तात्पर्य यह है कि उसकी विवेकशक्ति क्षीण हो गई है और मनमत पर चलता हुआ वह स्वेच्छाचारी नास्तिक ईश्वर यानि अपने असलियत स्वरूप के प्रति अनभिज्ञ हो प्रतिकूल आचार-विचार व व्यवहार दर्शा रहा है। तभी तो दुराचार व व्यभिचार करते हुए वह अज्ञानी आधि-व्याधि से युक्त हो नाना प्रकार के कष्ट-क्लेशों के रूप मे असहनीय पीड़ा भुगत रहा है।

जान लो कि आत्मज्ञान प्राप्ति ही इस पीड़ा से मुक्ति पाने का एकमात्र सरल व सहज साधन है। जानते हो कि जब एक आत्मज्ञानी आत्मबोध कर आत्मिक बल को पहचान जाता है तो वह क्या कह उठता है, ध्यान दो -

1. मैं अपने आत्मिक बल को पहचानता हूँ तभी तो मैं जानता हूँ कि मैं सबसे बलवान हूँ। और तो और यहाँ तक कि मौत भी मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकती और न ही इस जगत की कोई वस्तु व व्यक्ति मुझे यानि मेरे ख़्याल को हिला-डुला सकता है क्योंकि मैं सत्य हूँ, स्थिर हूँ व नित्य हूँ।

2. मैं जानता हूँ कि आत्मविद्या रूपी बल मेरी योग्यता और शक्ति का प्रतीक है और मैं आत्मविश्वास के साथ अपने व्यवहार प्रवृत्तियों तथा अपनी योग्यताओं-अयोग्यताओं आदि को स्वयं ही समझते हुए आत्मसंयम द्वारा अपने मन को वश में रख सकता हूँ व सब कार्य सिद्ध कर सकता हूँ। तभी तो मैं कहता हूँ आत्मिक बल ही मेरा विजय बल है जो मेरी यश कीर्ति को सदा बुलन्द रख सकता है और असहायों को सहारा प्रदान कर सकता है।

3. मैं जानता हूँ कि आत्मिक ज्ञान द्वारा मैं अपनी वर्तमान स्थिति में ही पूरा सुख अनुभव करने की वृत्ति या मानसिक अवस्था में सदा तृप्त बना रह सकता हूँ।

4. इसी आत्मिक बल के कारण मैं न किसी से डरता हूँ और न ही किसी से घबराता हूँ। मुझे समझ आ गया है कि आत्मिक बल ही सब प्रकार के बलों में से प्रधान है और इसके द्वारा मैं स्वयं विषय-विकारों से सुरक्षित रह कुल सगली को भी इनसे सुरक्षित रख सकता हूँ।

5. मैं जानता हूँ कि आत्मिक बल के अतिरिक्त अन्य विश्वास आधार नश्वर हैं, मतलबी हैं जो कभी भी धोखा दे सकते हैं, राह में छोड़ सकते हैं, विषय-विकारों में फँसा मूल धर्म निभाने हेतु कमज़ोरी पैदा कर सकते हैं और दुराचारिता में फँसा सकते हैं, परन्तु मेरे आत्मिक बल को कोई भी क्षीण नहीं कर सकता।

6. मैं मनुष्य चोले में अपना निश्चित कर्त्तव्य और उसे समयबद्ध निपुणता से निभाने का ईश्वरीय हुक्म भली-भाँति समझता हूँ। तभी तो कुशलता से प्रत्येक प्राणी के प्रति अपना फ़र्ज़ अदा हँस कर निभाने हेतु सदा तत्पर रहता हूँ।

7. निज ज्ञान स्वरूप के बोध के कारण हृदय में व्याप्त निर्मलता के प्रभाव से मैं उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल किसी के अधीन रहना या अपने अधीन किसी को रखना ग़ुलामी समझता हूँ। इसलिए मैं समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार सजन-भाव का चलन अपनाने में ही अपना व सबका हित समझता हूँ

8. सबके प्रति आत्मभाव के कारण मेरे हृदय में प्रतिस्पर्धा का भाव नहीं पनपता। मेरे लिए सब बराबर हैं, मेरे अन्दर बड़े-छोटे का, ईर्ष्या-द्वेष का, वैर-विरोध का, मान-अपमान का कोई भाव नहीं। मेरे हृदय में तो आपसी मैत्री व प्रीति का विशेष भाव है इसलिए तो मेरे लिए आपस में मिल जुल कर रहना सहज है।

9. मेरे लिए समाज में सभी का दर्जा बराबरी का है। सभी मेरे लिए समान इज्ज़त के हकदार हैं। मेरे विशाल हृदय में व्याप्त दया भाव व शीलता परस्पर आचार-व्यवहार के दौरान मेरी उदारता व कर्मठता से स्पष्ट झलकते हैं। तभी तो आपसी एकता बनाए रखने हेतु मैं सब कुछ न्यौछावर करने से भी नहीं घबराता व सकुचाता। निज मन-मस्तिष्क को हर परिस्थिति में एक अवस्था में साधे रखने हेतु मैं इसे ही अपना विशेष गुण मानता हूँ।

10. निज परमात्म स्वरूप के प्रति मेरा विश्वास न कभी टूटता है और न ही छूटता है। तभी तो मैं नित्य खुद को अजरता-अमरता का प्रतीक मानता हूँ। यही अटूट विश्वास मेरे पुरुषार्थ का यथार्थ रूप है और इस द्वारा मैं जीवन की हर परिस्थिति में न्यायसंगत विचरने में सक्षम हूँ। इसीलिए मैं निर्भयता से परमार्थ के रास्ते पर अग्रसर बने रह सदा परोपकार करना ही अपना परम कर्त्तव्य मानता हूँ।

11. मेरे साथ विचरने वाले सज्जन मेरी असलियत नहीं जान पाते क्योंकि मेरा हर कर्म निष्काम होता है और सबके सुख व आनन्द का आधार होता है।

12. मैं ही समय-समय पर मायावी रूप धार कर अवतरित होता हूँ और मैं अपने सद्‌गुणों व मर्यादा पुरुषोत्तम होने के कारण सबका

प्रिय होता हूँ। जीवन में हर प्रकार के कष्ट-क्लेश सहकर भी जो भी करता हूँ जनहित के लिए अकर्ता भाव से ही करता हूँ। इस प्रकार मैं सभी का विश्वासपात्र कहलाता हूँ। यहाँ विडम्बना यह है कि धीरे-धीरे यही विश्वास ही मोह का रूप ले लेता है और जब मैं अपने मायावी रूप, रंग, रेखा को त्यागता हूँ तो प्रजा यह वियोग सहन नहीं कर पाती और उस रूप की प्रतिमा बनाकर मेरी पूजा मानता करने लगती है। फिर यह सिलसिला एक प्रथा का रूप ले लेता है और भगवान अनेक रूपों व नामों से जाना जाने लगता है। अनेक ग्रन्थ रचे जाते हैं व अनेक पूजा स्थल बनते हैं। यहाँ से आरम्भ होता है मानव का एक धर्म से अनेक धर्मों में परिवर्तित हो जाना किन्तु यह उनका अविचार होता है। यह भूल कोई भी कभी न दोहराए, इसी के प्रति सचेत करते हुए सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है 'विचार ईश्वर आप नूं मान'। मैं इस सत्य को अपनी अन्तरात्मा का सत्य मानता हूँ और इसलिए मेरे लिए नित्य भाव से इस जगत में विचरते हुए आनन्दमय बने रहना कोई कठिन कार्य नहीं है।

अन्त में हम सभी सजनों से पूछते हैं कि क्या आप ऐसे ही सद्‌गुणी इन्सान के रूप में ढलना चाहते हो?

हाँ जी।

तो सभी को परिवारजनों सहित आत्मिक ज्ञान धार्मिक शिष्य वृत्ति के अनुसार प्राप्त करने व धारण करने उपरान्त उसे अपने आचार-विचार में प्रयोग करना आरम्भ कर देना होगा। इस शुभ क्रिया में सफलता प्राप्ति हेतु किसी भी कारण किसी का भी अन्दरूनी या बैहरूनी वृत्ति में बुरा सुनना, सोचना, बोलना व करना आत्मसंयम द्वारा मुकम्मल बन्द करना होगा। **क्या यह मंजूर है?**

हाँ जी।

अगर यह मंज़ूर है तो इस अभियान में सफल होने के लिए हमारी शुभकामनाएँ सबके साथ है।

अन्ततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनाँक 30 नवम्बर 2014 का सबक

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इन्सान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

आहार

जैसा कि सबको विदित ही है कि आजकल ब्रह्मचर्य आश्रम के विषय में बातचीत चल रही हैं। इसके अंतर्गत अभी तक हमने बाल्यावस्था से आत्मिक ज्ञान को धारण करने की महत्ता के विषय में जाना। इसी सन्दर्भ में सजनों आत्मिक ज्ञान को आत्मसात् करने के लिए शारीरिक स्वस्थता अति आवश्यक है। शारीरिक स्वस्थता सात्विक आहार से पनपती है। अतः आइए जानते हैं सात्विक आहार के विषय में।

सभी जानते हैं कि मनुष्य चोले का मिलना अत्यन्त दुर्लभ है जो कि अनेक जन्मों के संचित पुण्यों और शुभ कर्मों का फल है। इस शरीर से मानव जीवन के लक्ष्य यानि चारों पुरुषार्थ यथा धर्म, अर्थ काम व मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है जिसके लिए इस शरीर का निरोगी रहना अत्यन्त आवश्यक है। यही कारण है कि मानव जीवन के सात सुखों

में निरोगी काया को सर्वप्रथम सुख माना गया है। इसी सुख को प्राप्त कर हम जीवन के अन्य सभी सुख भोग पाते हैं। याद रखो यदि यह सुख हमारे हाथ से छूट गया यानि शरीर रोगग्रस्त हो गया तो जीवन का परम पुरूषार्थ छूट गया।

जानो कि शरीर ही आहार है और आहार से ही शरीर बनता है यानि पनपता है व फलता-फूलता है। शरीर की स्वस्थता आहार की पौष्टिकता पर निर्भर करती हैं। आओ अब जानते हैं कि स्वस्थ कौन होता है?

स्वस्थ कौन?

जिसके शरीर में दोष (वात-पित्त-कफ), अग्नि (जठराग्नि), सप्तधातु (रस-रक्त-माँस-मेद-अस्थि-मज्जा-शुक्र) समान हो एवं मल (मल, मूत्र, पसीना) विसर्जन की क्रिया ठीक होती हो और इन सबके साथ जिसकी आत्मा, इंद्रियाँ और मन प्रसन्न हो, ऐसे मनुष्य को स्वस्थ कहते हैं। एक स्वस्थ मनुष्य ही अपनी इन्द्रियों को वश में रखकर जीवन के परम पुरूषार्थ को सिद्ध करने का पराक्रम दिखा सकता है।

वेदों के अनुसार प्राणियों का प्राण अन्न है। अतः जीव लोक अन्न की ओर दौड़ता है। वर्ण (Colour), प्रसन्नता (Happiness), सुन्दर स्वरों का होना (Melody), जीवन (Life), प्रतिभा (Genius), सुख (Pleasure), सन्तोष (Satisfaction), शरीर की पुष्टि (Physical Nourishment), बल (Strength), मेधा (धारणाशक्ति) (Intellect), ये सभी वस्तुएँ भोजन से ही प्रतिष्ठित/स्थापित हैं अन्न अर्थात् आहार प्राप्त होने पर ही इनकी स्थिति है।

शारीरिक व्यापार के लिए जो लौकिक कर्म हैं, स्वर्गगमन के लिए जो वैदिक कर्म किए जाते हैं और मोक्ष की साधना के लिए जो कर्म बतलाए गए हैं ऐसे सभी कर्म अन्न से ही प्रतिष्ठित हैं अर्थात् बिना अन्न या आहार के संसार में कोई भी कार्य नहीं किया जा सकता।

आहार शब्द से तात्पर्य प्रत्यक्ष रूप से मुख द्वारा सेवन किए जाने वाले खाद्य एवं भोज्य पदार्थ से है, जो न केवल उचित तापमान प्रदान कर हमारे शरीर को पोषित कर स्वस्थ व चलायमान स्थिति में बनाए रखता है अपितु जीवित रखने वाली सभी शारीरिक प्रक्रियाओं एवम् संस्थानों यथा अस्थि-तंत्र, पेशी-तंत्र, श्वसन-तंत्र, रक्त-वाहक-तंत्र, पाचन या पोषण-तंत्र, प्रजनन-तंत्र, उत्सर्जन-तंत्र, तंत्रिका-तंत्र तथा अंतः-स्रावी-तंत्र की क्रियाविधि को आपस में सम्बन्धित कर संचालित भी करता है।

सबकी जानकारी के लिए यह भी स्पष्ट कर दें कि केवल प्रत्यक्ष रूप से मुख द्वारा ग्रहण किया जाने वाला भोज्य पदार्थ ही आहार नहीं है अपितु हमारी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा रूप, रस, शब्द, गंध व स्पर्श के रूप में अप्रत्यक्ष रूप से अन्दर ले जाई जाने वाली भाव रूपी मानसिक खुराक भी आहार ही कहलाती है। याद रखो यह आहार शारीरिक व मानसिक विकास और आत्मिक बल की वृद्धि के लिए प्रत्यक्ष रूप में ली गई खुराक से कई गुना अधिक उपयोगी और महत्त्वपूर्ण है। शारीरिक आहार की तुलना में इस आहार का अधिक संतुलित व संयमित होना नितांत आवश्यक है, क्योंकि इस प्रकार सेवन किए गए आहार का प्रभाव मनुष्य के सूक्ष्म शरीर पर प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से शारीरिक आहार की अपेक्षा कई गुणा अधिक व शीघ्र होता है। जान लो कि जो इस क्रिया को सफलतापूर्ण कर पाता है उसी का संकल्प स्वच्छ, दृष्टि कंचन व जिह्वा स्वतन्त्र रह पाती है। इस तरह मानसिकता विकृत नहीं होती यानि निर्विकार बनी रह पाती है। हम यह भावात्मक खुराक संतुलित व संयमित रूप से व समझदारी से धारण करने योग्य बनें, इस हेतु हर मानव के लिए बाल्यावस्था से ही आत्मिक ज्ञान की पढ़ाई करने का विधान हैं।

ऐसा क्यों कह रहे हैं, इस हेतु ध्यान दो कि भिन्न-भिन्न प्रकार के भोजन के पाचन से व ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ग्रहीत खुराक से रस उत्पन्न होता है। इन रसों का ग्रन्थियों के माध्यम से शरीर के अंग-प्रत्यंग में स्राव (Secretion) होता है। भोजन रस व भावात्मक रस जब आपस

में अंतःसंबन्धित होने के कारण संयुक्त होते हैं तो विभिन्न प्रकार के लाभदायक व हानिकारक जैव रसायनों (Hormones) का शरीर में निष्पादन करते हैं। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि शरीर में मुख्यतः इन जैव रसायनों (Hormones) के लाभदायक व हानिकारक स्राव (Secretion) से क्रमशः संतुलन व असंतुलन की स्थिति उत्पन्न होती है यानि अप्रत्यक्ष रूप से (Indirectly) ये ही संवेगों के माध्यम से हमारी शारीरिक व मानसिक दशा व रोग-प्रतिरोधात्मक क्षमता (Immunity) के नियामक एवं नियंत्रक (Regulator & Controller) होते हैं। इस प्रकार इन स्रावों की प्रकृति (Nature of secretion) के आधार पर या तो मनुष्य का समुचित शारीरिक और मानसिक पोषण व रक्षण होता है या फिर शोषण व भक्षण।

आहार द्वारा ही शरीर में रस (Juice, essence) बनता है जिससे फिर रक्त (Blood) बनता है। रक्त से माँस (Flesh), माँस से मेद (lymph), मेद से हड्डी (Bone), हड्डी से मज्जा (Bone marrow) और मज्जा से पुरुषों में वीर्य (sperm) व स्त्रियों में रज (menstrual excretion in women) बनता है। इस प्रकार जो भोजन पाचन द्वारा क्रमशः रस, रक्त, माँस, मेद, हड्डी, मज्जा में परिवर्तित होता हुआ अन्त में सार धातु वीर्य यानि जीवात्मा के उत्तम आश्रय के रूप में परिणित हो जाता है, वह आहार कहलाता है।

इस संदर्भ में यह भी जान लो कि जहाँ समुचित पोषण और रक्षण की स्थिति में मनुष्य की सर्वांगीण स्वस्थता बनी रह सकती है और चारित्रिक उन्नति होती है वहीं इसके अभाव में शरीर में नाना प्रकार के रोग पनपते हैं यानि शारीरिक, मानसिक व आत्मिक शक्तियों का सर्वरुपेण ह्रास होता है। परिणामस्वरूप असंतुलन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और जीवन का परम पुरुषार्थ मनुष्य के हाथ से छूट जाता है।

आहार का शरीर पर प्रभाव

कहावत है कि 'जैसा खाओगे अन्न, वैसा बनेगा मन"

इस संदर्भ में हमें यह भी समझना होगा कि खाया हुआ अन्न तीन भागों में विभक्त हो जाता है - स्थूल असार अंश मल बनता है, मध्यम अंश से माँस बनता है और सूक्ष्म अंश से मन की पुष्टि होती है। जिस प्रकार दही के मथने पर उसका सूक्ष्म ऊपर आकर घी बन जाता है, उसी प्रकार अन्न के सूक्ष्मांश से मन बनता है। मन अन्नमय है। इस प्रकार आहार शुद्धि से सत्वशुद्धि (essence, heart, being), सत्वशुद्धि से ध्रुवाशुद्धि यानि अटल स्मृति और स्मृति शुद्धि से सभी ग्रन्थियों का मोचन (discharge) होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि आहार के संतुलित, पौष्टिक, हल्के व सुपाच्य अर्थात् सात्विक गुणों से युक्त होने पर मन भी सात्विक बना रहता है अर्थात् उसमें सात्विक भावों का उदय होता है। इस तरह मन में छल-कपट नहीं पनपता और मनुष्य सत्यनिष्ठ व धर्म परायण बना रह पाता है।

अतः मन की पवित्रता, बुद्धि की दृढ़ता तथा अंतर्चेतना की शुद्धता के साथ-साथ मानसिक व आत्मिक स्वस्थता को बनाए रखने के लिए सात्विक आहार ही उत्तम है। याद रखो ऐसा शाकाहारी सात्विक भोजन चाहे शारीरिक माँसपेशियाँ नही बनाता परन्तु प्राकृतिक भूख को जाग्रत कर मनुष्य को संतुष्टि अवश्य प्रदान करता है। इस प्रकार यह भोजन मस्तिष्क, इन्द्रियों व स्वभाव पर सहज ही नियन्त्रण कर मनुष्य को प्रसन्नता प्रदान करने वाला होता है व दीर्घ आयु प्रदान करता है ।

आहार का शरीर, मन व बुद्धि से घनिष्ठ संबंध है। हमारे स्वभाव में क्रूरता न आए और शारीरिक व मानसिक स्वस्थता बनी रहे इस संबंध में आहार चयन से पूर्व उसकी प्रकृति (सात्विक, राजसिक व तामसिक) एवम् उसके परिणाम को जानना नितांत आवश्यक है। यहाँ आहार की प्रकृति से अभिप्राय मुख्यतः प्रत्येक पदार्थ के

सात्विक, राजसिक व तामसिक तीन भावों से है। प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में तीन गुण यथा सात्विक, राजसिक व तामसिक सर्वथा विद्यमान रहते हैं। इसके विषय में आपको अगली कक्षा में बताया जाएगा। तब सब ध्यान से सुनना व समझना।

अन्ततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनाँक 07 दिसम्बर 2014 का सबक

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इन्सान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

गत सप्ताह हमने जाना कि शरीर ही आहार है और आहार ही शरीर है। आहार से ही शरीर पनपता व फलता-फूलता है व आहार की पौष्टिकता पर ही शरीर की स्वस्थता निर्भर करती है। हमने यह भी जाना कि हम जैसा अन्न खाते हैं वैसा ही हमारा मन बनता है। इस कथन के अनुसार खाया हुआ अन्न तीन भागों में विभक्त हो जाता है। पहले स्थूल असार अंश से मल बनता है, मध्यम अंश से माँस बनता है व तीसरे सूक्ष्म अंश से मन की पुष्टि होती है। हमने यह भी जाना कि शारीरिक निरोगता के लिए शरीर से मल-मूत्र व पसीने के रूप में होने वाली विसर्जन क्रिया भी ठीक होनी चाहिए। आइए अब जानते हैं आहार की प्रकृति के विषय में।

आहार की प्रकृति

प्रकृति के आधार पर आहार तीन प्रकार का होता है, आइए सर्वप्रथम मन को पुष्ट व तुष्ट रखने वाले, ग्रहण करने योग्य सर्वश्रेष्ठ सात्विक आहार के विषय में जानते हैं -

सात्विक आहार- सात्त्विक आहार दो शब्दों के सहयोग से बना है। सात्विक + आहार सात्त्विक का अर्थ है सत्त्व गुण युक्त, सत्य से युक्त अर्थात् ऐसा आहार जो सत्य-रस से युक्त हो।

यहाँ सत्त्व शब्द से तात्पर्य मनुष्य की स्वाभाविक अन्तःप्रकृति से है यानि जन्मजात गुण से है। यह ही हर पदार्थ का सार यानि मूल तत्व होता है जो उसकी विशेषता या ख़ासियत कहलाता है। जानो कि आहार के प्रकार के अनुरूप ही मनुष्य के मनोभाव विकसित होते हैं और क्रियाशील हो फलीभूत होते हैं। यही मनुष्य के व्यक्तित्व के अच्छे व बुरे रूप का आधार होते हैं।

सत्त्वगुण से तात्पर्य प्रकृति के तीन गुण यथा सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण में से सबसे पहले उस श्रेष्ठ गुण से है जो मन-चित्त को शुभ कर्मों की ओर प्रवृत्त करता है अर्थात् सात्विक आहार के सेवन से मनुष्य की अन्तः प्रकृति सत्य अनुरूप बनती है और उसके अन्दर सकारात्मक विचारों व सर्वश्रेष्ठ गुणों का विकास होता है। परिणामतः ऐसे मनुष्य का मन-चित्त प्रसन्न रहता है और वह शुभ कर्म करता है।

आहार शब्द का अर्थ है भोजन, खाना, लेना, ग्रहण करना, स्वीकार करना।

सात्विक आहार-सत्त्व गुण युक्त, ऐसा आहार जिसमें शरीरस्थ तापमान को सन्तुलित रखने वाले वायु, पित्त और कफ़ समान मात्रा में उपस्थित रहते हैं, सात्विक आहार कहलाता है। जान लो कि इन त्रिदोषों के विकृत होने की स्थिति में ही शरीर में रोग पनपते हैं। सात्विक आहार में अन्न, शाक-सब्जियाँ, फल, दूध, पनीर, दही, अंकुरित पदार्थ, शहद तथा सूखे मेवे सम्मलित होते हैं। ऐसा सत्य युक्त आहार हमारे मन और मस्तिष्क पर अनुकूल प्रभाव डालता है। ऐसा आहार हमारे स्वभावों की कंचनता को बरकरार रखने के साथ-साथ हमें इन्द्रियों की उत्तेजना से भी बचाए रख शांति प्रदान

करता है। इसके विपरीत सात्विक खुराक के अभाव में इन्द्रियों रूपी घोड़े चंचल हो जाते हैं जिन्हें फिर काबू में करना कठिन हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में मन अशांत हो जाता है। हमारे साथ ऐसा न हो इसके लिएः हमें सदैव सर्वश्रेष्ठ सात्विक आहार का सेवन करना चाहिए।

ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ग्रहण किए सात्विक आहार यानि भावात्मक खुराक से तात्पर्य सर्वोत्तम सत् के भाव के ग्रहण से है। इसके लक्षण ज्ञान, शांति, शुद्धता इत्यादि हैं। यह मनुष्य की अंतःप्रकृति है अर्थात् सम, सन्तोष, धैर्य, आदि सद्गुणों से युक्त स्थिति है। तात्पर्य यह है कि एकता, प्रीति, त्याग, मधुरता, दया, क्षमा, धीरता, गम्भीरता, वैराग, करुणा, ईमानदारी, सत्यभाषिता, भद्रता, साहस, निष्कपटता, विशुद्धता, सजनता, समता, दृढ़ता, निष्कामता, शीलता, परोपकारिता आदि आंतरिक विशेष भावों से युक्त होकर मनुष्य जब सत्य युक्त आचरण यानि सुकर्म करता हुआ धर्म की राह अपनाता है तो इस गुण की प्रधानता से उस में स्वतः ज्ञान, विवेक व बुद्धिमता का उदय होता है और सकारात्मक विचारों का आधिपत्य होने से संकल्प स्वच्छ, दृष्टि कंचन व जिह्वा स्वतन्त्र हो जाती है। परिणामस्वरूप ऐसे मनुष्य का अन्तःकरण निरंतर स्वच्छ, निर्मल व पारदर्शी बना रहता है जिस पर सदा सत्य प्रकाशित रहता है और मानव असीम प्रफुल्लता, आनन्द व सुख-शान्ति को प्राप्त करता है। इस प्रकार सत्वगुण युक्त भावों के ग्रहण द्वारा ऐसा आहार परम पुरुषार्थ की सिद्धि हेतु मनुष्य के चरित्र को श्रेष्ठता की ओर ले जाता है। ऐसे मानव को फिर किसी बाह्य स्रोत से ज्ञान लेने की आवश्यकता नहीं रहती। सतयुग में सभी इसी प्रकार आत्मज्ञानी बनते हैं। इस संदर्भ में सबने अपनी परख करनी है कि हम सब श्रेष्ठ व चरित्रवान बनना चाहते हैं या चरित्रहीनता ही पसंद है?

यदि हम चरित्रवान बनना चाहते हैं तो सत्यता से निज आत्मनिरीक्षण करना होगा और जो भी अवगुण या दोष हमारी चरित्रहीनता का कारण हों उनको त्यागना होगा। इस तरह

आत्मनियंत्रण रखते हुए आत्मसुधार कर चरित्रवान बनना होगा। इसके लिए सात्विक आहार चाहे वह मुख द्वारा ग्रहण किए गया हो या भावात्मक खुराक के रूप में ज्ञानेन्द्रियों द्वारा, केवल उसी का सेवन करना सुनिश्चित करना होगा। मात्र इसी प्रयत्न से पूर्ण स्वस्थता द्वारा हमारा अंतःकरण निर्मल और पारदर्शी बना रह सकता है और हम जीवन की हर परिस्थिति में जीव, जगत और ब्रह्म के खेल को स्पष्टता से जानने व समझने के योग्य बन सकते हैं।

आओ अब जानें सात्विक आहार के सेवन से प्राप्त होने वाले लाभों के विषय में:-

सात्विक आहार के सेवन से लाभ

1.सात्विक आहार सरस, स्निग्ध, रक्तशोधक, पुष्टिदायक, रोगनाशक तथा हृदयग्राही होता है। अतः इससे शरीर को समुचित ऊर्जा, स्फूर्ति व शक्ति प्राप्त होती है।

2. सात्विक, पौष्टिक, शाकाहारी व संतुलित आहार का सेवन करने से शरीर में सात्विक रस उत्पन्न होते हैं। सात्त्विक रस से मनुष्य में सात्विक भाव उत्पन्न होते हैं। तभी तो वह श्रेष्ठ प्रकृति व विशुद्ध स्वभाव वाला इंसान धर्मात्मा व पुण्यात्मा कहलाता है।

3. शुद्ध सात्विक आहार-विहार से रक्त शुद्ध होता है, नाड़ियों की शुद्धि होती है, शारीरिक धातुओं में समता आती है, मन सबल व बुद्धि शुद्ध होती है। चिंतन शक्ति बढ़ जाती है, मन में संतोष व प्रसन्नता का प्रादुर्भाव हो जाता है। याद रखो मन तुष्ट होना आत्मा तुष्टि का प्रतीक होता है। आत्मतुष्टि होने पर मनुष्य को कोई कामना नहीं सताती जिसके फलस्वरूप उसके मन में शरीर व जगत के प्रति लोभ-मोह नहीं पनपता। यही तो होती है निर्लिप्त अवस्था जिसमें वह मनुष्य सर्वसम्पन्नता का एहसास करते हुए निर्विकारी व सदाचारी बना रहता है। यही महान उपलब्धि उसे

सांसारिक फुरनों से आज़ाद रख जगत-जंजाल में फँसने से बचाए रखती है।

4. सात्त्विक आहार का सेवन करने वाला प्राणवान यानि जीवनीशक्ति से भरपूर होता है। तभी तो ऐसा मानव ओजपूर्ण, सचेतन और बलिष्ठ होता है।

5. सात्त्विक आहार के सेवन से जो हमारे शरीर में प्रतिक्षण संयोजन व विभेदीकरण की प्रक्रिया द्वारा कोशिकाओं के नवीनीकरण तथा शारीरिक निर्माण यानि वृद्धि की प्रक्रिया चलती रहती है, उसे समरूप से सदा सात्विक वातावरण प्राप्त होता रहता है। इस प्रकार हमारी शारीरिक व मानसिक स्वस्थता समरूपता से बनी रहती है। फिर समबुद्धि होना कोई कठिन कार्य नहीं रहता और हम व्यवहारिक रूप से समभाव अनुरूप सजन-भाव दर्शाने में कुशल हो जाते हैं।

6. सात्त्विक आहार के सेवन से शरीर में जरम ज़हरीले यानि कीटाणु पैदा होने की गुंजाइश नहीं रहती और सजन शारीरिक व मानसिक रूप से सदा स्वस्थ बना रहता है। इसी कारण सतयुग में कोई जरम जहरीला पैदा नहीं होता।

7. सात्विक आहार के सेवन से शरीर की सारभूत धातु की पुष्टि होती है परिणामस्वरूप मनुष्य को आयुबल, उत्साह व आरोग्य लाभ प्राप्त होता है व सन्तान उत्तम गुण सम्पन्न होती है। मनुष्य को दीर्घ आयु प्राप्त होती है और उसके लिए अपने संस्कारों यानि मन, रुचि, आचार-विचार आदि को परिष्कृत तथा उन्नत करने का कार्य सुगम हो जाता है।

8. आत्मा जो एक चेतन बिन्दु है, वह हमारे मस्तिष्क द्वारा शरीर पर नियन्त्रण रखती है। सात्विक आहार द्वारा प्राप्त सन्तुष्टि का सीधा प्रभाव हमारे मस्तिष्क पर पड़ता है और मस्तिष्क प्रकम्पन द्वारा इन विद्युत्तीय तरंगों को आत्मा तक स्थानांतरित कर देता है, जो हमारे

अन्दर अच्छे विचारों व स्वभावों का निर्माण करती है। कहने का तात्पर्य यह है कि सर्व ब्रह्माण्ड की चेतना का आधार सर्वव्याप्त परमात्मा ही है। आत्मा की चेतनता का हेतु भी परमात्मा ही है। सात्विक आहार के सेवन से प्राप्त होने वाली आत्मतुष्टि का प्रभाव जब हमारे मन-मस्तिष्क पर पड़ता है तो उस स्थिति में हमारा ख़्याल अन्तर्निहित ईश्वर प्रदत्त वेद विदित सत्य आत्मज्ञान से जा जुड़ता है। आत्मिक ज्ञान होने पर सज्जनता अनुरूप अच्छे विचारों व स्वभावों का निर्माण स्वतः आरम्भ हो जाता है।

9. मन को शान्त व वाणी को पवित्र रखने में सात्विक आहार सहायक होता है, जिससे हमारे स्वभावों में स्वच्छता बनी रहती है और हमारा मन विकारों से सुरक्षित यानि निर्विकारी बना रहता है।

10. सात्विक आहार के सेवन से व्यक्ति की बुद्धि व वृत्ति-स्मृति, निर्मल हो जाती हैं और यह निर्मलता का प्रवाह रोम-रोम, रग-रग को सम्पूर्ण स्वस्थता से सँजोए रखता है। फिर पूर्व-जन्म, कुल-मर्यादा, शिक्षा आदि का मन पर पड़ने वाला प्रभाव दोष रहित अर्थात् सकारात्मक होता है। इस तरह व्यक्ति सद्व्यवहार करता है और सदाचारी कहलाता है।

11. सात्त्विक आहार का सेवन करने वाला अपनी सम प्रकृति में स्थित रहता है इसलिए जीवन की हर परिस्थिति में यानि ऊँच-नीच, दुःख-सुख आदि में अविचलित यानि शांतचित्त, दृढ़ व मज़बूत रहता है।

12. सात्त्विक आहार के सेवन से मनुष्य में सात्त्विक गुण जैसे संतोष, धैर्य, सत्यवादिता, सरलता, क्षमाशीलता, साहस, ईमानदारी, संयमशीलता आदि विकसित होते हैं। इसीलिए तो ऐसा इंसान साधु यानि सज्जन और विवेकशील प्रकृति का होता है।

13. सात्त्विक आहार का सेवन करने वाला शास्त्र सम्मत सत्य-धर्म के मार्ग का अनुकरण करता हुआ श्रेष्ठ आचरण दर्शाता है और

अपने कर्त्तव्यों का पालन ठीक से करते हुए सदाचारी कहलाता है।

14. सात्विक आहार हमें काफी हद तक शारीरिक व मानसिक रूप से निरोगी रखने में सहायक होता है। फलतः हम संसारी व परमार्थी दोनों उद्देश्यों की पूर्ति आसानी से कर सकते हैं।

आप सहमत होंगे कि सात्विक आहार के सेवन के विषय में जो भी अभी बताया गया है वह सब हर इंसान की आवश्यकता हैं। अतः इस आवश्यकता को जानो, समझो और पूरा करो। इस हेतु किसी भी प्रकार के रस का त्याग भी करना पड़े तो आत्मसंयम द्वारा उसे त्यागने से भी नहीं सकुचाओ।

राजसिक आहार- इस प्रकार के भोजन का सेवन गुणों के लिए नहीं अपितु जिह्वा-रस के लिए किया जाता है। इसके अंतर्गत तीखे मसाले, अधिक कटु, अम्ल, लवण, ऊष्ण, तीक्ष्ण, रुक्ष, तथा चटपटे आहार आदि आते हैं। निरन्तर राजसिक भोजन के सेवन से विसर्जन क्रिया गड़बड़ा जाती है व पाचन सम्बन्धी नाना प्रकार के रोग उपजते हैं। इस प्रकार यह आहार शारीरिक त्रिदोषों को उत्पन्न कर शारीरिक तापक्रम को असंतुलित करने वाला होता है। ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ग्रहण किये राजसिक आहार के सेवन से हमारा तात्पर्य उन भावों के ग्रहण से है जिनके द्वारा मानव के अन्दर चंचलता, भोग-विलास तथा दिखावे की रुचि का सूत्रपात होता है और वह जीवन की विलासिता व कामुकता की ओर आकर्षित होता है। किसी की निंदा-चुगली करना व सुनना, अनुचित साहित्य पढ़ना व उसकी चर्चा करना, पाश्चात्य सभ्यता के तौर-तरीकों व रीति-रिवाजों को अपनाना व बढ़ावा देना, मुख्यतः इसके अंतर्गत आते हैं। हम मानेंगे कि टी0 वी0 इस बीमारी को फैलाने का प्रमुख कारण है। ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त इस प्रकार का आहार सेवन जीवन को नश्वरता की ओर ले जाकर मनुष्य को चारित्रिक पतन यानि दुष्चरित्रता के ऐसे अंधे कुएँ में धकेल देता है, जहाँ से निकलना उसके लिए सम्भव नहीं हो पाता।

तामसिक आहार-बासा, रसहीन, दुर्गन्धयुक्त, जूठा, मादक पदार्थों

एवं मांस आदि से युक्त आहार तामसिक आहार कहलाता है। ऐसे आहार के सेवन द्वारा हमारे शरीर के तापमान में अनुचित वृद्धि होती है। यह अनुचित ऊर्जा हमारे शारीरिक-मानसिक संतुलन को बिगाड़ देती है। फलतः हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ व कर्मेन्द्रियाँ उत्तेजित हो हमारे अन्दर, व्यग्रता, अधीरता व कामुकता उत्पन्न करती हैं। मुख व ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ग्रहण किए इस प्रकार के आहार के सेवन से मनुष्य की बुद्धि व इन्द्रियाँ सम्पूर्णतया मन की परतन्त्रता स्वीकार कर लेती हैं और मनुष्य न चाहते हुए भी इन्द्रियों द्वारा भोग्य हानिकारक रसों के अधीन हो वह सब कुछ करने के लिए विवश हो जाता है जो सर्वथा मानवधर्म के विपरीत होता है। यही कारण है कि वह काम, क्रोध व लोभ जैसे विकारों से घिर दुर्बुद्धि हो जाता है और उसमें जड़ता, अज्ञानता, दानवता, दृष्टिभ्रम, आलस्य, निद्रा और रक्त दूषणा से सम्बन्धित विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। यह सर्वरूपेण मनुष्य के शारीरिक, मानसिक व अध्यात्मिक रूप से असंतुलित व अनियन्त्रित हो तनाव, भय, दुःख व शोकग्रस्त होने की स्थिति होती है जो उसे अधोपतन की ओर धकेल देती है यानि उसका नैतिक पतन शुरू हो जाता है। यही कारण है कि मनमत के अधीन हो आज का मानव आत्मानुशासन स्वीकारना पसंद नहीं करता। तभी तो वह नैतिक पतन को प्राप्त हो दुराचारी, अनाचारी व भ्रष्टाचारी बन चुका है और हम सब इनके दुष्प्रभावों से भलीभाँति परिचित हैं।

इस सन्दर्भ में हम सबसे पूछना चाहते हैं कि राजसिक व तामसिक आहार के दुष्परिणामों से परिचित होने के बावजूद भी हम इस प्रकार के आहार का सेवन क्यों करते हैं?

क्योंकि यह आहार चटपटा होता है व हमें अपनी ओर आकर्षित करता है।

जान लो कि जिह्वा रस व इन्द्रिय रस के अधीन होने के कारण ही हम भोज्य पदार्थों व भावात्मक आहार के रूप में मुख व ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से राजसिक व तामसिक आहार का सेवन करते हैं यानि

हम तेज मिर्च-मसालों वाला चटपटा व माँसाहार इत्यादि खाते हैं व इन्द्रिय-रस के प्रभाव से निंदा-चुगली, गाली-गलौज व क्रोधवश अनुचित वाणी आदि बोलते हैं। ऐसा करते समय हम यह भूल जाते हैं कि इससे जरम-जहरीले व हमें हर प्रकार से रोगी बनाने वाले कीटाणु हमारे शरीर में पनप रहे होते हैं। फलतः आत्मसंयम के अभाव के कारण हम शारीरिक व मानसिक तौर से अस्वस्थ हो जाते हैं। हमारे साथ ऐसा न हो इसके लिए हमें अपनी ज्ञानेन्द्रियों का सही प्रयोग करना सीखना होगा। हमें खाद्य व भावात्मक आहार ग्रहण करने से पहले उसकी सात्विकता का भलीभांति विचार करना होगा ताकि हमारे शरीर को उचित तापमान प्राप्त होने की क्रिया निरन्तर चलती रहे और हम हर प्रकार से निरोगी बने रहें। याद रखो हर कार्य की सिद्धि हेतु शारीरिक व मानसिक स्वस्थता व स्वच्छता आवश्यक है।

अन्त में हम यही कहना चाहेंगे कि पूर्ण रूपेण स्वस्थ रहने के लिए प्रत्येक मानव को न केवल अपनी शरीर रूपी मशीनरी का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए अपितु इसके इस्तेमाल व पालना-पोषणा के विषय में भी पूरी जानकारी होनी चाहिए। इसी सन्दर्भ में अब ध्यान से राजसिक तथा तामसिक आहार के सेवन से प्राप्त होने वाली हानियों के विषय में जानोः-

राजसिक तथा तामसिक आहार के सेवन से हानि -

1. आहार के असंतुलित, भारी व तेज मिर्च मसालों से युक्त होने पर यानि राजसिक व तामसिक होने पर मन, बुद्धि, प्राण और शरीर में राजसिक व तामसिक प्रवृत्तियाँ सक्रिय हो जाती हैं। ये मन-मस्तिष्क को उत्तेजित करती हैं परिणामस्वरूप चंचलता, चिड़चिड़ापन, अनिद्रा व तनाव आदि पनपने लगते हैं।

2. प्रकृति विरुद्ध खान-पान व शारीरिक व्यवहार से शरीर में वात, पित्त, कफ नामक त्रिदोष उत्पन्न हो जाते हैं और गुणकारी पदार्थ भी विकारी हो जाते हैं जो हमारे शारीरिक अंगों को असाध्य रोगों से

ग्रस्त कर मन-मस्तिष्क को चंचल बना देते हैं।

3. राजसिक तथा तामसिक आहार का सेवन करने वाले मनुष्य में सत्वगुण की न्यूनता के कारण अचेतनता यानि जड़ता व अवचेतनता पनपती है। फलतः मानव का आत्मतत्व से सम्बन्ध छूट जाता है और आत्मबल कमजोर पड़ जाता है। ऐसा इंसान ईश्वर का दिया हुआ सब गँवा बैठता है और अज्ञानियों की तरह कामी, लोभी, क्रोधी, विलासी, आलसी, कुटिल व पापी बन इस जगत में विचरता है।

4. राजसिक व तामसिक आहार के सेवन से रक्त दूषित हो जाता है व नाना प्रकार के शारीरिक व मानसिक रोगों के कीटाणु व जरम जहरीले उत्पन्न हो जाते हैं और शरीर रोगों का घर बन जाता है।

5. राजसिक व तामसिक आहार के सेवन से मनुष्य की सारभूत धातु में विकृति उत्पन्न होने के कारण शारीरिक शक्ति, बल व पराक्रम क्रमशः क्षीण होता हुआ नाश को प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त उसकी भावी सन्तति भी इन अनुवांशिक अवगुणों से अछूती नहीं रहती और जन्म से ही व्याधिग्रस्त हो काल का ग्रास बन जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि फिर वह मानव कुदरती प्रदत्त प्रजनन क्षमता का भी चेतनता व अफुरता से प्रयोग करने में सक्षम नहीं रहता। परिणामस्वरूप पैदा होते ही बच्चों को नाना प्रकार की शारीरिक व मानसिक बीमारियाँ घेर लेती हैं और इस प्रकार वह भाव-स्वभावों की तरफ से भी ठीक तरह से पनप नहीं पाते। याद रखो यही लापरवाही अपनी ही पैदा की हुई संतानों की अज्ञानता का कारण बनती है जिसके कारण वे सच्चाई धर्म के रास्ते से भटक जीवन हार बैठते हैं। याद रखो यदि हम में से कोई भी अपने बच्चों की ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति का कारण बनता है तो यह उनके प्रति बहुत बड़ा गुनाह होता है।

6. राजसिक व तामसिक दोनों ही प्रकार का भोजन शरीर व मस्तिष्क के लिए अनुपयुक्त है। इसलिए सच्चे पातशाह जी ने महाबीर जी के द्वारे पर अक्षर व नाम लेने वाले सब सजनों को माँस, अण्डे तथा अन्य मादक पदार्थों को पूर्ण रूप से त्याग करने का आदेश दिया है ताकि जिस मार्ग पर हम चल रहे हैं, उस पर हमारे विचारों एवं स्वभावों की कंचनता बरकरार रहे और हम अपने लक्ष्य की प्राप्ति समयानुसार कर सकें।

अन्ततः याद रखो

स्वास्थ्य अपने का ध्यान न रखना अच्छा नहीं है, अच्छा नहीं है।
सिग्रेट-बीड़ी तम्बाकू लेना अच्छा नहीं है, अच्छा नहीं है।
केवल सात्विक आहार ही लेना अच्छा है जी अच्छा है।

अन्ततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इन्सान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

सात्विक आहार

अभी तक हमने जाना कि शरीर ही आहार है और आहार ही शरीर है। आहार से ही शरीर पनपता व फलता-फूलता है व आहार की पौष्टिकता पर ही शरीर की स्वस्थता निर्भर करती है। हमने यह भी जाना कि हम जैसा अन्न खाते हैं वैसा ही हमारा मन बनता है। इस कथन के अनुसार खाया हुआ अन्न तीन भागों में विभक्त हो जाता है। पहले स्थूल असार अंश से मल बनता है, मध्यम अंश से माँस बनता है व तीसरे सूक्ष्म अंश से मन की पुष्टि होती है। हमने यह भी जाना कि शारीरिक निरोगता के लिए शरीर से मल-मूत्र व पसीने के रूप में होने वाली विसर्जन क्रिया भी ठीक होनी चाहिए।

इस के पश्चात् हमने यह भी जाना कि प्रकृति के आधार पर आहार तीन प्रकार का होता है सात्विक, राजसिक व तामसिक। सात्विक

आहार सत्त्व गुण युक्त होता है तथा इसमें शरीरस्थ तापमान को संतुलित रखने वाले वायु, पित्त और कफ़ समान मात्रा में उपस्थित रहते हैं। इसके विपरीत जिस भोजन का सेवन गुणों के लिए नहीं अपितु जिह्वा-रस के लिए किया जाता है व जो शारीरिक त्रिदोषों को उत्पन्न कर शारीरिक तापक्रम को असंतुलित करने वाला होता है वह भोजन राजसिक व तामसिक आहार कहलाता है। शारीरिक व मानसिक स्वस्थता की दृष्टि से सात्विक आहार का सेवन ही उचित है। आइए अब आगे जानते हैं:-

भोजन को पकाते समय ध्यान रखने योग्य सच्चे पातशाह जी के निर्देश-

1. हथ कार वल, चित्त यार वल' अर्थात् सब कार्य-व्यवहार करते हुए ख़्याल महाराज जी के साथ जुड़ा रहे। हृदय में अक्षर चलता रहे, फुरना न ठहरे।

2. सच्चे पातशाह जी ने नाम अक्षर चलाते हुए भोजन को पकाने व सेवन करने के लिए कहा ताकि इस नाम युक्त तथा सत्य युक्त भोजन करने से हमारा आचार-विचार व व्यवहार शुद्ध हो।

सच्चे पातशाह जी के वचन

'रोटी पकांदियां होइयां वी नाम चलाओ ते अक्षर चलाओ। अगर असी नाम चलांदे रोटी पकावांगे ते अन्न दे विच, इन्हां पकिया रोटियां दे विच नाम रूपी किटाणु पैदा हो जानगे। फिर असी ओह रोटियां खावांगे ते सानूं अच्छी बुद्धि मिलेगी। बच्चयां नूं वी अच्छी बुद्धि मिलेगी। इस तरह साडा घर सतयुग बन जाएगा। अगर असी फुरना करदे-करदे रोटी बनावांगे, ते फुरने वाले कीटाणु, बीमारी वाले कीटाणु साडे हत्थां विच पैदा हो जानगे, फिर असी ओन्हां हत्थां दी पकी होई रोटी खावांगे ते साडे अंदर अनेक प्रकार दियां बीमारियां पैदा होन गियां। इस तरह साडा घर स्वर्ग दे बदले नरक बन जाएगा। इस वास्ते ऐसी नाम रूपी खुराक खाओ जैंदे नाल घर

विच बीमारियां न होवन। इस तरह सारा दिन घर दा काम करदे असी अपने इष्टदेव नूं मिल सकदे हाँ।'

'स्त्री दी खाद, पति दा बीज बोया'

अर्थात् जो बीज पति द्वारा स्त्री की कोख में आया उसके सम्पूर्ण विकास के लिए भोजन माता से प्राप्त होता है। इसलिए इस अवस्था के दौरान, जबकि एक स्त्री में जीव का निर्माण हो रहा होता है, माता को सन्तुलित आहार के साथ-साथ शान्त, प्रफुल्लित एवम् नाम-ध्यान से जुड़े रहना चाहिए तथा शास्त्र का विचार करना चाहिए ताकि भावी सन्तान उससे प्रभावित हो।

भोजन पकाते समय ध्यान रखने योग्य बातें

1. रसोईघर में जहाँ भोजन को पकाना है, साफ़-सुथरा और उजला होना चाहिए।

2. भोजन पकाने से पूर्व हाथों व नाखूनों की सफाई पर विशेष ध्यान दें। भोजन बनाने व भोजन परोसने वाले बरतन भी साफ़-सुथरे व उजले हों।

3. भोजन सामग्री भी साफ़ करके व धोकर प्रयोग में लानी है।

4. भोजन जिस भी विधि से पकाया गया हो, उसके पोषक तत्व नष्ट न हों।

5. इस बात का विशेष ध्यान रखें कि भोजन स्वास्थ्यवर्धक, पौष्टिक, सन्तुलित व स्वादिष्ट हो।

6. भोजन प्रोटीन, खनिज पदार्थ, कार्बोहाइड्रेट्स व विटामिन युक्त हो।

7. खाने में दूध, दही, फल व हरी सब्जियों का प्रयोग अधिक करें क्योंकि ऐसा शाकाहार स्वास्थ्यवर्धक होता है व पाचन-शक्ति व विसर्जन क्रिया को ठीक रखता है।

8. अनावश्यक बातचीत करते हुए, जल्दबाज़ी व उत्तेजना का स्वभाव त्यागकर धैर्य से भोजन पकाएँ।

9. सात्विक भोजन खाने के साथ-साथ, भोजन किस भावना से बनाया गया है, यह बात भी बड़े महत्त्व की है। हम यदि सद्भावना से भोजन पकाएँगे तो वह स्वादिष्ट व तृप्ति प्रदान करने वाला होगा। इसलिए पूरे आत्मविश्वास के साथ, प्रेम सहित व ध्यान-स्थिर होकर ही भोजन पकाना चाहिए।

10. भोजन बनाने वाले सजन का शरीर स्वस्थ व विचार कंचन होने चाहिए।

11. रसोईघर में जूठे बर्तन नहीं रखने चाहिए।

भोजन परोसते समय ध्यान रखने योग्य बातें

1. भोजन परोसने से पूर्व भी हाथों की स्वच्छता पर ध्यान दें।

2. खाना प्रसन्नचित्त व तनावरहित होकर परोसें।

3. उँगली से खाना न चखें, चम्मच का प्रयोग करें।

4. भोजन परोसने का स्थान भी स्वच्छ व साफ़-सुथरा हो।

5. खाँसते व छींकते समय यह ध्यान रहे कि कीटाणु भोजन में न जाएँ।

इस प्रकार अच्छी भावना से खिलाया गया भोजन, भोजन न होकर भगवान का भोग हो जाएगा जो परिवार के सभी सदस्यों को मानसिक शान्ति देगा।

आहार का सेवन करते समय ध्यान रखने योग्य महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. भोजन सर्वप्रथम ईश्वर को समर्पित करें तत्पश्चात प्रसाद रूप में भोजन ग्रहण करें। इस प्रकार भोग लगाकर ग्रहण किया हुआ भोजन सन्तुष्टि प्रदान करने वाला होता है।

2. हमें ध्यान रखना चाहिए कि हमारी जिह्वा रस के अधीन न हो अपितु आवश्यकता अनुरूप भोजन करें।

3. आवश्यक है कि भोजन रुचिकर हो, हल्का हो व तृप्तिदायक हो।

4. पाचन तन्त्र की सुविधा के लिए हमें नियमित अन्तराल पर एवं निश्चित समय पर ही भोजन ग्रहण करना चाहिए।

5. भोजन खूब चबा-चबाकर करना चाहिए। भूख से एक-आधी रोटी कम खाने पर हम हल्के-फुल्के और चुस्त बने रहते हैं।

6. आहार अपनी शारीरिक-अवस्था, आयु-सीमा व रोग आदि को ध्यान में रखकर लिया जाना चाहिए।

7. जहाँ आवश्यकता से कम भोजन शारीरिक व मानसिक विकास में बाधा है वहीं अधिक भोजन शरीर को अस्वस्थ कर अनेक रोगों को उत्पन्न करता है इसलिए जिस आहार को लेने से पाचन तन्त्र पर अतिरिक्त बोझ न पड़े उसे शास्त्रों में सम्यक आहार कहा गया है।

8. भोजन ग्रहण करने का उपयुक्त समय प्रातः आठ बजे से नौ बजे के मध्य, दोपहर एक से दो के मध्य तथा सायंकाल सात बजे से पूर्व है। रात्रि में देर से भोजन करने पर पाचन कार्य यथासमय पूर्ण नहीं होता अतः नींद में भी बाधा आती है और प्रातःकाल जागने पर भी आलस्य बना रहता है किन्तु उचित मात्रा में नियमपूर्वक भोजन करने से दुख और रोग नष्ट होते हैं और भगवत् प्राप्ति होती है।

9. सद्गुण युक्त भावी सन्तान की प्राप्ति के लिए नवविवाहित स्त्री-पुरुष को याद रखना चाहिए कि यदि माता-पिता सात्विक आहार का सेवन करेंगे तो उनकी सन्तान भी सात्विकता से पूर्ण होगी।

10. माता-पिता को चाहिए कि वे अपनी हैसियत के अनुसार बच्चों को केवल सम्पूर्ण पोषण प्रदान करने वाला सात्विक आहार ही दें।

ध्यान रखें कि बच्चा गलत संगत में पड़कर माँस-मदिरा का सेवन न करे। यहाँ तक कि अपनी किसी भी ज्ञानेन्द्रिय द्वारा वे तामसिक व राजसिक आहार न ग्रहण करें। बच्चों को सदाचारी बनाने हेतु अपने इस फ़र्ज़ अदा को हमें सावधानी व सतर्कता से निभाना है।

अन्ततः हम यही कहेंगे कि वास्तव में आहार ही शरीर है और शरीर ही आहार। इस आहार के अनुरूप ही मनुष्य का आन्तरिक वातावरण यानि अंतःस्थिति निर्मित होती है और उस अन्तःस्थिति के अनुरूप अन्दरूनी व बैहरूनी वृत्तियों में सकारात्मकता या नकारात्मकता पनपती व विकसित होती हैं। मनुष्य यदि सावधानीपूर्वक अपने चरित्र पर दृष्टिपात करे यानि आत्ममन्थन करता हुए आत्मविश्लेषण करे तो वह ध्यान-धारणा, आत्मसंयम, आत्मविश्वास व अभ्यास के बल पर केवल सात्विक आहार का सेवन कर स्वयं में सतोगुण को विकसित कर आत्मबोध कर सकता है तथा राजसिक व तामसिक पदार्थों व भाव-स्वभावों का त्याग कर इनसे उत्पन्न समस्त आधि-व्याधियों से बचा रह सकता है। यह ही सत् चरित्र को प्रत्यक्ष रूप से अंगीकार कर अपने उद्धार का एकमात्र साधन है। ऐसा चरित्रवान साधक अपने चरित्र को साध्य बनाकर ध्यान-बल द्वारा अपने समस्त भाव-स्वभावों को आजीवन सात्विकता का पोषण प्रदान करता हुआ जीवन के परम पुरुषार्थ को सिद्ध कर लेता है।

अन्ततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इन्सान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

सजनो दिनाँक 8 अप्रैल 2014 से समभाव-समदृष्टि के स्कूल में आरम्भ हुई आत्मिक ज्ञान की पढ़ाई के द्वारा प्रत्येक मानव, जीवन के अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों एवं पहलुओं पर जीवन उपयोगी ज्ञान प्राप्त कर अपने जीवन को सही मार्गदर्शन प्रदान कर सकता है। इस क्रिया में यथासमय सफलता प्राप्त करने हेतु संतोष, धैर्य पर बने रह सच्चाई, धर्म के रास्ते पर चलने का परम पुरुषार्थ दिखाने हेतु बाल्यावस्था से ही भौतिक ज्ञान प्राप्ति के साथ-साथ आत्मिक ज्ञान ग्रहण कर, उसे कुशलता से अपने आचार-विचार व व्यवहार में उतारना अति आवश्यक है।

इसी आवश्यकता के दृष्टिगत क्या आप जानना चाहते हो कि बाल्यावस्था से ही भौतिक ज्ञान प्राप्ति के साथ-साथ आत्मिक ज्ञान ग्रहण करना क्यों आवश्यक है?

हाँ जी।

तो आओ प्रश्नोत्तर के माध्यम से तुलनात्मक अध्ययन द्वारा भौतिक ज्ञान प्राप्ति व आत्मिक ज्ञान प्राप्ति से जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव को समझते हैं, इस हेतु सर्वप्रथम बताओ कि आत्मा के बिना शरीर क्या है?

जड़।

इसी तरह आत्मिक ज्ञान प्राप्ति के बिना बुद्धि क्या है?

जड़।

बुद्धि जड़ इसलिए हो जाती है क्योंकि भौतिक ज्ञान जड़ पदार्थों का ज्ञान कराता है। अब बताओ आत्मिक ज्ञान किस यथार्थ से हमारा परिचय कराता है?

अपनी नित्यता के यथार्थ से कि मैं अजर-अमर हूँ, निर्भय हूँ।

और भौतिक ज्ञान किस यथार्थ से हमारा परिचय कराता है?

संसार नश्वर है।

आत्मिक ज्ञान से कौन से भाव का विकास होता है?

आत्मीयता के भाव का।

भौतिक ज्ञान से कौन से भावों का विकास होता है?

स्वार्थप्रद भावों का।

आत्मिक ज्ञान प्राप्ति से मानव को क्या लाभ होता है?

इससे चरित्र निर्माण होता है।

चरित्र निर्माण इसलिए क्योंकि आत्मिक ज्ञान प्राप्त कर एक आत्मज्ञानी को अंतर्निहित मानवता का बोध हो जाता है और वह फिर तद्नुरूप ही आचार-विचार अपनाकर व्यवहारिकता दर्शाता

है। याद रखो एक आत्मज्ञानी ही मानवोचित्त व्यवहारिकता दर्शा सकता है। इसके विपरीत एक भौतिकज्ञानी अपने आचार-व्यवहार द्वारा मानवता के स्थान पर मनमत का प्रदर्शन करता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि उसकी व्यवहारिकता का रूप भौतिकवाद के अनुरूप ढला होता है। चूँकि भौतिक पदार्थों का रूप पल-प्रति-पल परिवर्तित होता रहता है अतः भौतिकवादी जो धारणा करता है व व्यवहारिकता दर्शाता है वह भी पल प्रति पल बदलती रहती है और उससे भौतिकता का स्पष्ट प्रदर्शन होता है। इसके विपरीत नित्य स्वरूप में स्थिर रहने के कारण एक आत्मज्ञानी सदा सात्विक व यथार्थ धारणा करता है व तद्नुकूल ही व्यवहारिकता दर्शाता है। इस प्रकार उसकी करनी से सदा यथार्थ प्रगट होता है।

इस सन्दर्भ में यह भी जान लो कि आत्मज्ञान अंतर्निहित यानि अन्तर में विद्यमान मानवता के भाव को जाग्रत करता है जिसे ग्रहण कर बुद्धि विवेकशील बनती है और मानव जाग्रत अवस्था में बने रह सचेतन व्यक्तित्व वाला इंसान कहलाता है जबकि भौतिक ज्ञान अंतर्निहित मानवता की हिंसा कर हमारी बुद्धि को जड़ बनाता है और मानव अज्ञानमय अवस्था में बने रह अचेतन या अवचेतन व्यक्तित्व वाला मिथ्याचारी इंसान कहलाता है। जान लो कि अंतर्निहित मानवता को दबाना यानि प्रयोग में न लाना निजी व्यक्तित्व की हत्या करना है जो महापाप कहलाता है। तभी तो दुश्चरित्रता से ग्रस्त हो, अपने व दूसरों के प्रति, अपने आचार-व्यवहार द्वारा, इस गुनाह को करने वाला व्यक्ति मौत से सदा भयभीत रहता है। तात्पर्य यह है कि उसका दिल-दिमाग़ हमेशा डरता रहता है कि कहीं इस पाप के दंड के रूप में मौत का चक्रव्यूह उसे अपने आगोश में न समेट ले। उसका यूँ भयभीत होना सत्य ही होता है क्योंकि हकीकत में ईश्वर प्रदत्त मानवता यानि निजी यथार्थ व्यक्तित्व की हिंसा करने वाले अपराधी मानव को मौत अपने चक्रव्यूह से निकलने नहीं देती। याद रखो जन्म-जन्मांतरों तक मोह-माया की फाँसी यानि मौत की यह त्रास भुगतना अति कठिन व

कष्ट प्रदायक होता है। तभी तो इस पीड़ा से त्रस्त मनुष्य के मन में सम, संतोष, धैर्य, सच्चाई व धर्म के स्थान पर काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार रूपी विकार घर कर जाते हैं जो उसकी शारीरिक, मानसिक व आत्मिक स्वस्थता को क्षीण कर उसे आधि-व्याधि का शिकार बना देते हैं। परिणामस्वरूप ऐसा मानव कामनाओं का दास हो जाता है और स्वार्थपरता अनुसार जीवन जीना आरम्भ कर देता है। फिर न तो अपने जीवन के कर्त्तव्यों को ठीक ढंग से निभाने के योग्य रहता है और न ही जीवन के परम पुरुषार्थों यानि धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को सिद्ध कर पाता है।

अतः इस दुःखदाई परिणाम को जानकर अपना व अपने बच्चों का इससे बचाव करो और इस हेतु सात्विक आहार व आत्मिक ज्ञान धारणा करना सुनिश्चित करो ताकि हमारी शारीरिक व मानसिक स्वस्थता बनी रहे और मानवता अनुरूप हमारा निजी वास्तविक व्यक्तित्व निखर कर सामने आए। इस प्रकार हम एक सद्चरित्र धर्मात्मा व्यक्ति कहलाने के योग्य बन अपनी संतानों को भी सद्मार्ग पर अग्रसर कर सकें। इस हेतु सतर्क रहो ताकि आपसे जीवनकाल में मानवता के विपरीत अब कुछ भी न हो। याद रखो यदि आप यह निश्चय ले लेते हो और वैसा ही करना सुनिश्चित करते हो तो मात्र इतना करने से ही आपका ख़्याल सदा स्वच्छ, दृष्टि कंचन और जिह्वा स्वतंत्र बनी रह सकती है। इसके विपरीत यदि हम आत्मिक ज्ञान के वर्त्त-वर्त्ताव में प्रवीण नहीं होते तो चाहे हम जीवन में जितना भी गा लें कि न बुरा सोचूँगा, न बुरा बोलूँगा और न ही किसी का बुरा करूँगा, हकीकत में वैसा कर पाना सम्भव नहीं हो सकता। तात्पर्य यह है कि यदि आत्मीयता के व्यवहार में हम निपुण नहीं है तो हम चरित्रवान नहीं बन सकते और न ही अपने जीवन का उद्देश्य सिद्ध कर सकते हैं। फिर कैसे हम सुख-समृद्धि के अधिकारी बन सकते हैं? इस तरह हम तो तब रोने-झुखने को प्राप्त करने के अधिकारी बनते हैं। यही रोना-झुखना ही फिर हमारी सोच में बना रहता है, वह ही हमारी बातचीत द्वारा प्रगट होता है और वह ही हमारे कर्मों

द्वारा परिलक्षित होता है। यह हैवानी बुद्धि की निशानी होती है जिससे मन में संकल्प-विकल्प की तरंगे उठती है और अशांति का वातावरण पनपता है। उपरोक्त समस्त बातचीत को विचार कर हम सबने अपना आत्मनिरीक्षण करना है कि हम हैवान हैं या इन्सान हैं?

इन्सान हैं।

इंसान हैं तो इस हैवानी बुद्धि से ग्रस्त होना क्या हमें शोभा देता है?

नहीं जी।

यदि ऐसा करना हमें शोभा नहीं देता तो आत्मिक ज्ञान धारणा करना सुनिश्चित करो। अपने बच्चों को भी इसी सद्मार्ग पर ले आओ और बाल्यावस्था से ही उनके अन्दर इस ज्ञान धारणा के प्रति रुचि पैदा करो ताकि युवावस्था आने तक वे मानवता अनुरूप अनुशासन अपनाकर आत्मज्ञानी बनें व इस तरह ईश्वर के कर्त्तव्यपरायण सपुत्र कहलाएँ।

इस सन्दर्भ में याद रखना है कि यही एकमात्र वह युक्ति है जिसको सही तरीके से अमल में लाकर मानव खुद एक अच्छे व नेक इंसान के रूप में ढलकर सभी जीवों से आत्मीयता यानि सजन भाव अनुसार व्यवहार करने के योग्य बन सकता है व औरों को भी सही ढंग से प्रेरित करते हुए इस जगत में पुनः सुख-शान्ति व एकता के वातावरण का निर्माण करने का कार्य सिद्ध करने में निष्काम भाव से सहयोगी बन सकता है। सजन श्री शहनशाह महाबीर जी के द्वारे पर होने के नाते अपने इस परम कर्त्तव्य को यथासमय सही ढंग से निभाने के लिए हमें भरपूर प्रयत्न करना है और इस उद्देश्यपूर्ति की सफलता हेतु हमें किसी प्रकार के त्याग से नहीं सकुचाना है। इस पुण्य कार्य की सिद्धि हेतु सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार आत्मिक ज्ञान की पढ़ाई व गुढ़ाई करने की समयबद्ध योजना हमें इस प्रकार बतायी गयी है -

प्रथम त्रैमासिक योजना के अंतर्गत

सजनों ने सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के निम्नलिखित पैग़ाम वाले कीर्तनों के भावार्थ को समझते हुए व अमल में लाते हुए, अन्दरूनी और बैहरूनी वृत्ति दोनों का रोना-झुखना बंद करना है अर्थात् जिह्वा स्वतन्त्र और अफुर अवस्था को धारण करना है। यह कार्य सिद्धि सजन-भाव के वर्त्त-वर्त्ताव द्वारा सहजता से हो सकती है।

द्वितीय त्रैमासिक योजना के अंतर्गत

पहले सबक को यादगीरी में रखते हुए सजनों ने अब तक अपनाए कलियुगी भाव-स्वभाव हटा 'हौं-मैं" को मिटाकर यह शरीर रूपी घर सतयुग बना लेना है। इसके साथ ही विराट दृष्टि अर्थात् सर्वव्यापक भगवान देखना, पकड़ना और इसी वृत्ति पर खड़े होकर ब्रह्म-वृत्ति अर्थात् एक निगाह-एक दृष्टि, एक दृष्टि एक दर्शन को ठहरा लेना है।

ब्रह्म-वृत्ति पर स्थिर बने रहने के लिए प्रत्येक सजन को ब्रह्म क्या है? ब्रह्म का ज्ञान क्या है? ब्रह्म-प्रकाश और ब्रह्म-स्वरूप क्या है? इसकी यथार्थता का बोध होना आवश्यक है।

'सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ' के अनुसारः-

'वृत्ति है जे एहो कमाल, वृत्ति है जे एहो विशाल।'
इसी द्वारा ही जीत-जीत और फ़तह-फ़तह है।

विराट दृष्टि पर खड़े होकर ब्रह्म-वृत्ति को कैसे ठहराना है? ध्यान दो -

जिह्वा स्वतन्त्र, संकल्प स्वच्छ और दृष्टि कंचन करके

इसी के साथ इस अन्तराल में बुज़ुर्गों, बच्चों और गृहस्थ के फ़र्ज़-अदा के प्रति अपनी जाँचना कर लेनी है और अपने आप को गृहस्थ-

आश्रम ठीक ढंग से चलाने के लिए व हर एक के प्रति अपना फ़र्ज़-अदा हँसकर करने के लिए कहना व समझाना है।

तृतीय त्रैमासिक योजना के अंतर्गत

अब तक पढ़ाए गए सबक के बारे में अपनी जाँचना-तुलना कर उस पर परिपक्वता से तैयार होने के साथ-साथ विचार शब्द तथा समभाव-समदृष्टि को परिपक्वता से ठहरा लेना है।

चतुर्थ त्रैमासिक योजना के अंतर्गत

इस अंतराल में सजनों पूर्वोक्त सबक को दोहराते हुए अपनी परिपक्वता व कमज़ोरी की जाँचना कर अपना नतीजा परख लेना है। इस तरह अपना नतीजा समझकर सजनों अपनी जो भी कमज़ोरियाँ समझ में आएं उन्हें महामन्त्र 'श्री राम ओ रोम रोम में रम रिहा, हर जनचर में, जड़ प्रकाशे चेतन प्रकाशे, श्री राम ओ रोम रोम में रम रिहा हर बनचर में, साडा है सजन राम, राम है कुल जहान' के गुप्त/अजपा जाप द्वारा दूर कर लेना है और अन्त में मन में पढ़ना है 'मैं तूं जगत तूं, आप ही आप हो, मेहर करो, मेहर करो, मेहर करो। इस प्रकार समभाव-समदृष्टि के सबक पर परिपक्वता से पूर्णतया खड़े होकर आना है। याद रखो सजनों अगर हम एक निगाह एक दृष्टि पर फ़तह पा गए तो सम का कोई सवाल नहीं। हमे दिव्य दृष्टि का सबक मिलेगा। वह सबक क्या है? अपनी असलियत की पहचान, जेहड़ा मन मन्दिर प्रकाश, ओही असलियत ज्योति स्वरूप मेरा अपना आप, एक निगाह ओ एक दृष्टि, ओ एक दृष्टि ओ एक दर्शन, जनचर बनचर ओ जड़-चेतन ओ एक दर्शन, ओ एक दर्शन।

यह है सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित युवा अवस्था की भक्ति अर्थात् समभाव-समदृष्टि की युक्ति यानि आत्मिक ज्ञान की पढ़ाई व गुढ़ाई द्वारा सजन भाव के वर्त-वर्ताव को आत्मसात् करने

का तरीका जिसको सही ढंग से अपनाने पर ही एक मानव को एक तो बल की प्राप्ति होती है और दूसरा शक्ति ताकतवर हो जाती है जिससे उसका कुसंगी संकल्प संगी हो जाता है। जानो ऐसा होने पर सन्तोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म के सवाल हल हो जाते हैं। फिर सम का कोई सवाल नहीं रहता और नौजवान युवा अवस्था आ जाती है। यह मानव के उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल होने की अवस्था होती है। यही अवस्था उसकी भक्ति प्रबल और शक्ति ताकतवर होने की प्रतीक होती है। यही तो होता है मानव को अपने निज यथार्थ का बोध होना और फिर नित्यभाव से अपने सभी कर्त्तव्यों को निर्भयता से न्यायसंगत व परोपकार प्रवृत्ति से निभा पाने का पुरुषार्थ व पराक्रम दिखा पाने के योग्य बनना यानि आत्मतुष्टि द्वारा निज यथार्थ रूप में बने रह इस जगत में यथार्थता, निर्लिप्तता व अकर्त्ता भाव से विचरना। याद रखो ऐसा व्यक्ति ही यश और कीर्ति का सुपात्र होता है।

अंततः हम सजनों से प्रार्थना करते हैं कि सभी सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित इस जीवन अनुशासन को समझ व विधिवत अपनाकर ईश्वर के सुपुत्र बन सदा पुण्य कर्म ही करें ताकि सभी के हृदय में, पारिवारिक व सामाजिक वातावरण में ऐसा सुकर्मो का राज्य स्थापित हो कि सभी ही परमार्थ बन कर्मभोग से निजात पाएं। ऐसा सुनिश्चित करने के लिए अगर अपने आप को उपरोक्त अनुशासन अपनाने हेतु बाध्य भी करना पड़े तो ऐसा करना ईश्वर का आदेश, आज्ञा, उपदेश एवं शिक्षा मानें। अपने शुभचिंतक बन अविलम्ब इन वचनों की पालना नियमानुसार करना आरंभ कर दें और इसके प्रति सही दिशा में यत्नशील रहें। इस परख के लिए समय-समय पर आत्मनिरीक्षण कर अपनी कमियाँ खोजना न भूलें और फिर इन कमियों के सुधार हेतु मज़बूत आत्मनियंत्रण रख समय पर आत्मसुधार करें। इससे आपकी अन्दरूनी व बैहरूनी दोनों वृत्तियों का रोना-झुखना बन्द हो जाएगा और मन-मस्तिष्क की सम अवस्था की शान्ति शक्ति के प्रभाव द्वारा सभी पारिवारिक

जनों के साथ प्रेम, शान्ति व एकता बनी रहेगी।

याद रखो यह हमारी शारीरिक व मानसिक स्वस्थता के लिए अति आवश्यक है और यही स्वस्थता हमें अपने जीवन उद्देश्य प्राप्त करने के योग्य बनाती है जिससे हम राग-द्वेष, वैर-विरोध, काम-क्रोध व लोभ-मोह आदि के भ्रम जाल से निकल स्वतन्त्र बुद्धि हो सर्वगुण सम्पन्न बन जाते हैं। इस प्रकार हम पुण्य कर्मों द्वारा जन्म-मरण के चक्रव्यूह से छुटकारा पा परमपद प्राप्त करने के अधिकारी बन सकते हैं।

अन्ततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनाँक 28 दिसम्बर 2014 का सबक

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इन्सान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

जैसा कि सबको पता ही है कि आजकल चालीसे का महायज्ञ चल रहा है। सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित पढ़ाई के अनुसार ये दिन जीवन उद्देश्य प्राप्ति की दृष्टि से एक मानव के जीवन में बहुत महत्त्व रखते हैं व शुभ माने जाते हैं क्योंकि इन चालीस दिनों में प्रत्येक मानव को अन्दरूनी व बैहरूनी दोनों वृत्तियों में आनन्दप्रदायक सात्विक वातावरण प्रदान कर आत्मसुधार द्वारा जीवन बनाने का अनमोल अवसर दिया जाता है। निश्चित ही यदि मानव इन चालीस दिनों के दौरान हिम्मत से काम लेता है और विधिवत् तरीके से युक्तिसंगत यत्न लड़ाता है तो आत्मसुधार की इस क्रिया में सफल हो जाता है। अतः सब सजनों ने इस तरह से यत्न लड़ाना है कि सब सफलता को प्राप्त हों।

सबकी जानकारी के लिए इन चालीस दिनों का जो विधान है उसके अनुरूप सबने सुनिश्चित रूप से अपने मन, वचन व कर्म द्वारा सबके

साथ समभाव-समदृष्टि की युक्तिनुसार सजन-भाव का आचरण व वर्त्त-वर्त्ताव करना होता है। इसके प्रति सबने बात-बात पर यानि कदम-कदम पर जो भी अन्दर सोच पनपती है, अपना आत्मनिरीक्षण करना होता है यानि जाँचना करनी होती है कि किसी भी प्रभाववश, कहीं कुछ भी, इस विधान के विपरीत न हो जाए। भूल से यदि भयवश, लोभवश, मोहवश या किसी अन्य कारण से ऐसा हो भी जाता है तो आत्मनिरीक्षण क्रिया द्वारा स्वयं पर सचेत रह आत्मनियंत्रण करना है ताकि फिर से वैसी गलती दोबारा न हो। याद रखो जो यह क्रिया नित्यप्रति विधिवत् करता है वह सजन इन चालीस दिनों में आत्मसुधार कर हकीकत में मानव कहलाने के योग्य बन जाता है।

इस तरह यह अन्तराल अपने यथार्थ रूप को पहचानने का समयकाल होता है व बचे हुए समयकाल में इस पहचान अनुरूप सदा के लिए तद्नुकूल व्यवहार करना सुनिश्चित करना होता है। अतः चालीस दिन परिवारों सहित इस कार्य को अत्यंत लगन व दिलचस्पी से करो। इससे सारा निजी तनाव समाप्त होने से परिवार तो सुख में आएगा ही आएगा साथ ही साथ समाज का रूप भी अच्छा बनेगा। इसलिए इस पुण्य कार्य को अपने व सबके उपकार का हेतु जानकर अवश्य करो। याद रखो ऐसा करने पर ही आजीवन सुकर्म कर पाओगे और दुःख- क्लेश आने पर भी नेक कर्म करना छोड़ोगे नहीं। तात्पर्य यह है कि फिर जो भी करोगे वह धैर्य से जनहित को ध्यान में रखकर ही करोगे और उस करनी से न तो आपको और न ही किसी को कष्ट पहुँचेगा। इसलिए फिर से कह रहे हैं कि हकीकत में मानव के अंतर्निहित जो मानवता रूपी विशेष गुण या धर्म है उस गुण का विकास इन चालीस दिनों के दौरान अपने अन्दर कर लो ताकि फिर मानवता अनुरूप ही आचार-विचार व व्यवहार सहजता से व सुदृढ़ता से करना आरम्भ कर सको। इस से सबको सजन मानना व सजन जानना आपके स्वभाव के अंतर्गत आ जाएगा और 'सब सजन हुण वैरी कौन' के कथनानुसार सबके साथ स्थापित सम्बन्ध आत्मभाव से निभा पाओगे।

इस हेतु अब तक मन-वचन-कर्म द्वारा जो भी अमानवीय कर्म या बातें हो रही हैं उसका सत्यता से आत्मनिरीक्षण करो। सत्यता से आत्मनिरीक्षण करने पर निश्चित ही स्वयं द्वारा हो रही भूल की आपको समझ आ जाएगी। एक बार अपनी गलती समझ में आ गई तो उसे स्वीकार लो और उस के परिणामों को दृष्टिगत करो। इससे आपको उस भूल को करने से प्राप्त होने वाले दुःखदाई परिणामों का बोध होगा। तब पता चलेगा कि अमानवीय कर्मो को करने के परिणामस्वरूप दुःख ही प्राप्त होता है और ऐसा व्यक्ति दुःख ही आगे बाँटता है।

अतः ऐसी ग़लती या भूल दोबारा न करना ही हितकारी है। यह आपका सत्यनिष्ठा से गृहस्थ-आश्रम के कर्त्तव्य निभाते हुए, निज धर्म पर अटल बने रहने का सूचक होगा। इसके विपरीत यदि आप अपनी की हुई ग़लती को पुनः दोहराओगे तो यह आपके लिए अपयश की व शर्म की बात होगी और आप समभाव-समदृष्टि की युक्तिनुसार, सजन-भाव के स्थान पर द्वि-भाव का वर्त-वर्त्ताव करने लगेंगे। इससे परस्पर लड़ाई-झगड़ा, वैर-विरोध तो पनपेगा ही पनपेगा साथ ही बच्चे भी हमारे ही भाव-स्वभावों का अनुकरण कर मन-वचन-कर्म द्वारा वैसा ही आचार-विचार व व्यवहार अपनाना व दर्शाना आरम्भ कर देंगे। इस प्रकार हमारी अमानवीय सोच व कर्मों के कारण कितना बड़ा नुकसान हो जाएगा। अतः हमारा सुझाव यही है कि जब भी परिवारों में लड़ाई-झगड़ा हो, तो उस लड़ाई के पीछे छिपे अमानवीय कारण को ढूँढने का यत्न करो और उसको जानने के पश्चात उससे छुटकारा पाने का समाधान लो। जानते हो इससे क्या होगा?

इससे जो हमारा यथार्थ तत्व है 'सम' वह हमारे आचरण द्वारा सजनता के रूप में उजागर होगा। कहने का तात्पर्य यह है कि जब सबके प्रति हमारे हृदय में समदर्शन हो जाता है यानि अन्तर्निहित ईश्वर प्रदत्त मानवीय गुण परिपूर्णता से सारे उजागर हो जाते हैं तो समभाव नज़रो में पक्का हो जाता है। अतः हमारे लिए समदृष्टि

रूपा महान गुण के अनुसार अन्तर आत्मा द्वारा सब को बराबर व समान समझना यानि उसी नज़रिए से देखना सहज हो जाता है। ऐसे ही बनो और साथ ही साथ समझो कि ऐसा करते समय यदि हम किसी का बुरा करते हैं, उसको गाली देते हैं, उस पर क्रोध करते हैं या किसी से छीना-झपटी करते हैं तो यह अनीति है यानि मानव-धर्म के विरुद्ध है। इस अनैतिक आचरण व व्यवहार का फल हमें कभी न कभी जीवनकाल में भोगना ही भोगना पड़ेगा। अतः ये चालीस दिन अपने पर कड़ा पहरा रखो ताकि भूलकर भी किसी से यह अनीति न हो जाए। यह सावधानी सबने लेनी है। सबकी जानकारी के लिए अपनी अन्तरात्मा से सबको बराबर समझने यानि समभाव को उजागर करने की युक्ति वीरवार के तीसरे बोर्ड में इस प्रकार लिखी हुई हैः

"जब, कोई सजन चाहे वह परिवार के हों, बालक हों, वृद्ध हों, गरीब हों या अमीर हों – उसे जय सीता राम, नमस्ते या सत श्री अकाल बुलाते ही दृष्टि उस सजन के हृदय की तरफ देखे, और उस में अपनी असलियत प्रकाश को देखे' बातचीत करते समय ख्याल उसी प्रकाश में ठहरा रहे' बातचीत करने से मुस्कराहट आयेगी बदन प्रफुल्लित होगा, हृदय खिड़ेगा और मुख चमकेगा''

अर्थात जब भी किसी से मिलो तो उसे अपने समान समझते हुए अपनी अन्तरात्मा से उसकी अन्तरात्मा का अभिनन्दन करो। इस नीति का पालन न करने के कारण ही तो हम एक दूसरे को बड़ा-छोटा मानने की भूल कर बैठते हैं और किसी का आदर तो किसी का निरादर कर देते हैं। यह इसलिए होता है क्योंकि हमारी बुद्धि सबको बराबरी का दर्ज़ा देने में धोखा दे जाती है और हमारी दृष्टि सर्व एक दर्शन देखने में असक्षम हो जाती है। इस प्रकार इस त्रुटिपूर्ण व्यवहार का नतीजा भी बुरा ही निकलता है यानि हम किसी का मान तो किसी का अपमान कर बैठते हैं, किसी को भला तो किसी को बुरा समझ बैठते हैं। यहाँ तक कि हम अच्छे-बुरे व

सत्य-असत्य की पहचान ही खो बैठते हैं। यह सब 'समभाव-समदृष्टि' की युक्ति अनुकूल 'सजनभाव' के वर्त-वर्त्ताव पर मज़बूत न रहने के कारण होता है। यह सब सही तरीके से आत्मनिरीक्षण न करने यानि अवविचार के कारण होता है। या हम कह सकते हैं कि यह स्वयं द्वारा की गई ग़लती को बार-बार दोहराने के कारण होता है। पता चला कि इसका प्रभाव कहाँ तक जाता है।

अब विचार करो कि इस लापरवाही से आपके मन-मस्तिष्क पर क्या प्रभाव पड़ता है?

बुरा।

इससे अन्ततः आपको सुख प्राप्त होता है या परेशानी?

परेशानी और दुःख ही प्राप्त होता है।

तो यह दुःख किसने ख़रीदा?

नादानी के कारण स्वयं हमने।

तो क्या यह समझदारी की बात है?

नहीं जी।

इन्सान से अगर यह भूल हो जाए तो क्या अच्छा लगता है ?

नहीं जी।

क्यों अच्छा नहीं लगता?

(मौन)

इसलिए अच्छा नहीं लगता क्योंकि इन्सान के पास कुदरत प्रदत्त विशेष विवेक बुद्धि है। वह विवेक बुद्धि जो अच्छे-बुरे की पहचान करती है। सत्य-असत्य का भेद जनाती है। जाँचना करो कि क्या

जब भी आपके मन के अन्दर अनुचित उकसाहट व उत्तेजना उत्पन्न होती है तो **क्या आप अपनी इस विवेक-शक्ति का इस्तेमाल करते हो?**

नहीं जी।

अन्तर्निहित शक्ति होते हुए भी इसका इस्तेमाल न करने से क्या होगा? धीरे-धीरे उस शक्ति को प्रयोग करने की युक्ति हम भूल जाएंगे और अविचार में फँस नकारात्मक रूप से जीवन जीने लगेंगे। यही कारण है कि आज मानव के मन-वचन-कर्म द्वारा दुराचार हो रहा है।

तो क्या यह हितकर है या नुकसानदायक है?

नुकसानदायक है।

क्या इस द्वारा हम बुद्धिमान बन सकेंगे या हमारी बुद्धि भ्रष्ट हो जाएगी?

बुद्धि भ्रमित हो भ्रष्ट हो जाएगी।

जान लो कि बुद्धि का भ्रमित व भ्रष्ट होना मानसिक रोगों से ग्रस्त होने का सूचक है। ऐसा इन्सान फिर पागलों जैसी हरकतें करता है, क्योंकि वह जो भी सोचता है विचारता है व व्यवहार करता है वह अनुचित व प्रतिकूल ही होता है।

जाँचना करो कि कहीं आपके साथ भी ऐसा तो नहीं हो रहा? अगर हो रहा है तो जो भी भूल आज तक स्वयं द्वारा हो चुकी है उसे भूल जाओ और आगे से आत्मसुधार करने का दृढ़ निश्चय लो।

अन्ततः हम फिर से दोहरा रहे हैं कि आत्मिक रूप से सबको समान समझते हुए परस्पर सजन भाव का ही व्यवहार करना। याद रखो यदि इस क्रिया को कुशलता पूर्वक करते हुए हमने इसे अपने

जीवन का ढंग बना लिया तो हमारा मन-मस्तिष्क सर्वव्यापक भगवान यानि एक दर्शन में स्थित हो उसी में लीन हो जाएगा। अन्य शब्दों में जब इंसान के मन के भाव का आधार, समवृत्ति यानि सुख-दुःख, हानि-लाभ आदि में मन की स्थिरता होगी, तो यह मन व बुद्धि की सम अवस्था का प्रतीक होगा। जान लो कि यही सबसे उत्तम मानसिक अवस्था कहलाती है जिससे मन शान्त रहता है और स्वयंमेव समदृष्टि रूपी गुण विकसित होता है। इस गुण के वर्त्त-वर्त्ताव में पूर्णतः निपुण मानव को समदृष्टा कहते हैं।

समदृष्टा एक निगाह एक दृष्टि द्वारा जनचर-बनचर, जड़-चेतन में एक दर्शन सर्वव्यापक भगवान का सत्य बोध करने में सक्षम होता है जिससे उसके मन में सर्व एकात्मा के प्रसार की यथार्थ ज्ञान धारणा के फलस्वरूप आत्मभाव उजागर होता है। फिर वही आत्मभाव उस इंसान के आचार-विचार व व्यवहार का मजबूत आधार बन जाता है। ऐसा होते ही उस इंसान के लिए कोई छोटा-बड़ा, अमीर-ग़रीब, अपना-पराया नहीं रहता। उसके लिए सब बराबर होते हैं। इसलिए उसके लिए सबका हित निज हित के समान महत्त्व रखता है और फिर वह परोपकार प्रवृत्ति जीवन में जो भी करता है निष्काम भाव से ही करता है। यही तो होता है अकर्त्ता भाव से सब कुछ करते हुए भी उसके अच्छे-बुरे फलभोग से विमुक्त रहना। इसे ही आत्मतुष्टि कहते हैं जिससे उस मनुष्य के मन को संतोष प्राप्त होता है और उसे कामनाओं के प्रभाव से प्राप्त होने वाली अधीरता से छुटकारा मिल जाता है। इस प्रकार वह धैर्यवान अपने यथार्थ आत्मबल का धीरता से प्रयोग करते हुए अपने जीवन का हर उद्देश्य सत्यनिष्ठा व धर्मपरायणता से सिद्ध करने में सफल हो जाता है।

सो सबने इन चालीस दिनों में युक्ति संगत इसी प्रकार यत्न करना है ताकि सफलता प्राप्त हो। इस हेतु हिम्मत से काम लेना और भूलकर भी मनमत के आधीन मत हो जाना। इस तरह मार्ग में आने वाली बाधा या कठिनाइयों से मत घबराना और सफलता प्राप्ति हेतु किसी

भी प्रकार का त्याग करने व भाव-स्वभावों की कुर्बानी देने से भी मत सकुचाना। तभी जीवन के महान उद्देश्य को प्राप्त कर सकोगे।

अन्ततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनाँक 04 जनवरी 2015 का सबक

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इन्सान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

जैसा की सब सजनों को विदित ही है कि आजकल चालीस दिन का महातप यानि गदे का यज्ञ महोत्सव चल रहा है। यह यज्ञ महोत्सव प्रत्येक सजन के लिए जीवन बना कर विश्राम पाने का सुनहरी अवसर है। तात्पर्य यह है कि आत्मिक ज्ञान की जो पढ़ाई हम संसारी झंझटों में फँस जाने के कारण वर्ष भर ठीक से नहीं कर पाते वह इस अन्तराल में ब्रह्मचर्य व्रत की ताकत, चालीस दिन की विधि, हवन-मन्त्रों, संयम अपनाने की नीति और युक्ति की नियमबद्ध श्रमसाध्य पालना द्वारा सहजता से की जा सकती है। अतः जीवन लक्ष्य प्राप्ति हेतु इस यज्ञ की अनमोल महत्ता को समझते हुए हमें इस अवसर को हाथ से नहीं जाने देना चाहिए। निःसंदेह यह तभी संभव हो सकता है यदि हमें इस महाव्रत के उद्देश्य की पूर्ण रूपेण जानकारी हो।

आओ सर्वप्रथम जानते हैं कि यह यज्ञ महोत्सव कब और किस प्रयोजन हेतु मनाया जाता है।

गदे का यज्ञ एक महाव्रत है जो प्रतिवर्ष 3 पौष से 13 माघ तक मनाया जाता है। चालीस दिनों तक चलने वाले इस महाव्रत का आरम्भ 'गदा' रूपी शान्ति-शक्ति को धारने हेतु, 'गदे' की पूजा के रूप में हुआ। इस सन्दर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

महाबीर आप पवाया जी, ए गदा सोहणा लगदा।
दासी दे दिल नूं भाया जी, ए गदा सोहणा लगदा।
मैं नहीं कोई नज़र न आवे, मैं नहीं कोई नज़र न आवे।
गदा महाबीर जी पाया जी, ए गदा सोहणा लगदा।।

ए गदा हीरियाँ जड़त जड़ाया, ए गदा हीरियाँ जड़त जड़ाया।
सब दे दिल नूं भाया जी, ए गदा सोहणा लगदा।।

इस गदा ने सारी उमर चरणां विच गुज़ारी, इस गदा ने सारी उमर चरणां विच गुज़ारी।
सियाराम मिलाया जी, ए गदा सोहणा लगदा।।

इस गदा ने तीनों ताप मिटाये, इस गदा ने तीनों ताप मिटाये।
कोई झगड़ा न आया जी, ए गदा सोहणा लगदा।।

ए गदा राम जी दे प्यारे ने पाया,
ए गदा राम जी दे प्यारे ने पाया।
रघुनाथ जी दिल विच हर्षाया जी, ए गदा सोहणा लगदा।।

इस गदा ने देवतियां दी आस पुजाई,
इस गदा ने देवतियां दी आस पुजाई।
राक्षसां नूं मार मुकाया जी, ए गदा सोहणा लगदा।।

जिस दासी ने ए गदा जो पाया, यम ओन्हां दे निकट नहीं आया।
मौत दा भय हटाया जी, ए गदा सोहणा लगदा।।

परन्तु अज्ञानवश जब कुरस्ते पड़े कलियुगी दुर्बुद्धि जीव इस महाशक्ति को थामे रखने की नीति व योग्यता को धारने में असमर्थ हो गए तो रख

के रूप में 'गाना' रूपी शक्ति का पूजन आरम्भ हुआ। इस 'गाने' को चालीसे के अंतिम दिवस नीतिनुसार व युक्तिसंगत उपासक के रूप में धारण करने का विधान है। सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार इस 'गाने' का धारक अगर इसे धारे रखने हेतु शास्त्रविदित इन्सानियत के उसूलों पर मजबूत बना रहता है तो वह अपने आप को विकार-वृत्तियों से रक्षित रख सहजता से ही अंतःकरण शुद्ध रखने में कामयाब हो सकता है जोकि जीवन लक्ष्य प्राप्ति का अमोघ साधन है।

आइए अब जाने कि "गाना" क्या है?

सबकी जानकारी के लिए "गाना" सर्वश्रेष्ठ साइंसदान 'श्री साजन जी' का महान अविष्कार है जो कलियुग में पहली बार आया है। 'गाना' हमारी 'रख' यानि रक्षक है। रक्षक होने के साथ-साथ यह हमारा 'सीस ताज' है। पवित्रता और कंचनता का प्रतीक यह 'गाना' कल्याणकारी और सुखदायी है। अतः इसको धारे रखने में हमारी शान है।

'गाना' किस धातु से बनाया जाता है ?

गाना' सोने व ताम्बे की धातु का बनाकर ही धारण किया जाता है क्योंकि ये दोनों ही धातुएँ शुद्धता व कंचनता की प्रतीक हैं व इनमें मनुष्य को शारीरिक स्वस्थता के साथ-साथ मानसिक उत्तेजना से बचाए रख शांतमय बनाए रखने का गुण है। इसके अतिरिक्त 'गाना'' बनाने के लिए इन दो धातुओं का प्रयोग इसलिए भी किया गया ताकि अमीर व ग़रीब दोनों वर्गों के सजन अपनी हैसियत अनुसार इसे समान रूप से धार सकें। याद रहे इन दो धातुओं के अतिरिक्त किसी भी अन्य धातु का 'गाना" नहीं बनाया जाता।

गाने के ऊपर बने तीन रंग किसके प्रतीक चिह्न हैं ?

गाने के ऊपर बने तीन रंग यानि हरा, नीला और आसमानी क्रमशः धरती, जल और आकाश के प्रतीक हैं। चूंकि हरा रंग हरियाली, भरपूरता, खुशहाली व स्वस्थता को दर्शाता है इसलिए इसे धरती का

प्रतीक चिह्न माना है। बीच वाला नीला रंग जल की अथाह गहराई, उसकी पवित्रता, शीतलता और निर्मलता को दर्शाता है इसलिए इसे जल का प्रतीक चिह्न माना गया है। ऊपर का हल्का नीला यानि आसमानी रंग शांति, शून्यता, असीमता, एकांत स्थान (जहाँ पर सजन की सुरत ने प्रवेश करना है), खालीपन, रूप-रंग-रेखा से रहित, जिसके भीतर कुछ न हो, निराकार व हर चीज से विहीनता को दर्शाता है इसलिए इसे आकाश का प्रतीक चिह्न माना है। इस प्रकार गाने के ऊपर प्रदर्शित ये तीनों रंग असीम और अथाह हैं जिनका ईश्वर की तरह कोई पारावार नहीं।

गाने को कहाँ धारण किया जाता है और इसका क्या लाभ है?

जैसा कि सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में विदित है कि 'सज्जी भुजा है शक्ति' इस कथन के अनुसार गाना जो शांति-शक्ति हेतु हमारी 'रख' है उसे सज्जी यानि दाहिनी भुजा की कलाई पर नब्ज़ के ऊपर धारण किया जाता है। इस नीति अनुसार गाने की टुकड़ी (जो नब्ज़ डाक्टर हमारी देखता है) उस नब्ज़ के ऊपर फिट टिकनी चाहिए। यदि 'गाना' खुला हो तो उसके एक दो कलफ हटा देने चाहिएं ताकि वह टुकड़ी खिसक कर अपने निर्धारित स्थान से इधर-उधर न जा सके।

इस प्रकार युक्तिसंगत सही जगह पर धारण किए "गाने" से जहाँ बैहरूनी वृत्ति में हमारी शारीरिक स्वस्थता बनी रहती है यानि रक्तचाप नियंत्रित बना रहता है वहीं अन्दरूनी वृत्ति में नाम-अक्षर चलाते समय ख़्याल को व ध्यान-दृष्टि को आत्मशक्ति की (जिससे हमारी नाड़ी चल रही है) अनुभूति होती है। फलतः मानसिक शान्ति अर्थात् आत्मिक सुख की प्राप्ति होती है। इस नीति की महत्ता को समझते हुए 'गाना' हमेशा सज्जी यानि दाहिनी भुजा की कलाई पर नब्ज़ के ऊपर ही धारण करना चाहिए, कहीं और नहीं।

'गाना' पहनने की सही नीति क्या है यानि यह कब और कैसे पहना जा सकता है ?

1. 'गाना' चालीस दिन गदे के यज्ञ की विधि पूरी करने व अन्तिम सात दिनों के ब्रह्मचर्य व्रत पर ठीक रहने के पश्चात् ही पहना जा सकता है।

2. 'गाना' पहनने से पूर्व कच्चे लाल रंग के धागे का 'गाना' पहना जाता है। यह कच्चा 'गाना' अन्तिम सात दिनों में होने वाले हवन की समाप्ति पर बाँधा जाता है।

3. सातवें दिन यज्ञ की सम्पन्नता पर यानि 'गानों" की पूजा के पश्चात् ताँबे या सोने का 'गाना' पहना जाता है। नए गाने केवल इसी दिन पहनाए जाते हैं आगे पीछे नहीं। आगे-पीछे वही सजन 'गाना' पहन सकते हैं जिनका 'गाना' खण्डित हो गया है या जो 'गाना' बदलना चाहते हों।

इस संदर्भ में कच्चा 'गाना' बाँधने और 'गाना' पहनाने की ड्यूटी देने वाले सजन ने अपना कार्य करते समय महाराज जी के मुख के इन शब्दों को याद रखना है।

'जिन सजनों ने पहले नाम लिया हुआ है और अढ़ाई साल से मीट, अण्डा नहीं खाया उनको 'गाना' देना है। जिन सजनों ने अब नए नाम अढ़ाई सालों में लिये हैं अगर उन सजनों ने नाम लेने के बाद मीट, अण्डा खाया है तो उन्हें "गाना" नहीं देना है। जिनको मीट अण्डा खाने के बाद भी "गाना" दे दिया है उनसे वापिस ले लेना है। सजनों से कहें कि आप सच्ची सरकार के चरणों में हैं। सच बोलना है झूठ नहीं बोलना। उन्हें सच बुलवा कर फिर 'गाना" पहनाना है। जिन सजनों ने नाम लेने के बाद भी मीट, अण्डा खा लिया है या खा रहे हैं उन सजनों से कहें कि वे भजन बन्दगी करते रहें और आगे के लिए मीट, अण्डा छोड़ देवें पर वे 'गाना" नहीं पा सकते।'

'गाना' पहनने वाले सजन के लिए आवश्यक निर्धारित योग्यता क्या है?

'गाना' वही सजन पहन सकता है जोः-

1. 'गाना" पहनने का इच्छुक हो व जिसने इस द्वारे से नाम ले रखा हो।

2. जो मीट, अण्डा और नशीले पदार्थों का सेवन न करता हो।

3. जो पतिव्रत व पत्नीव्रत धर्म की पालना पर अडिग हो।

4. जिसे पाठ की सम्पूर्ण विधि व युक्ति शुद्धता से स्पष्ट उच्चारण के साथ आती हो तथा नाम लेने के पश्चात उसने सारी नीतियाँ जैसे बुधवार-वीरवार के बोर्ड पढ़ना, मंगलवार का हवन, तीन वक्त का अखण्ड पाठ आदि ठीक से की हों।

'गाना' पहनने के पश्चात् किन-किन नीतियों की पालना करनी है?

1. गाने को प्रतिदिन सुबह उठकर व रात को सोते समय सात बार 'साडा है सजन राम, राम है कुल जहान' करके प्रणाम करके सोना है।

2. गाने को केवल दही में नमक डालकर धोना है अन्य किसी पदार्थ से नहीं धोना है।

3. 'गाना' पहनने के पश्चात भूलकर भी मीट, अण्डा और नशीले पदार्थों का सेवन नहीं करना। न ही मीट अण्डा घर में बनाना है और न ही मीट अण्डे वाले बर्तनों को हाथ लगाना'है।

4. 'गाना' पहनने वाले सजन ने 'गाना' पहनने के पश्चात गृहस्थाश्रम में एकता और शान्ति का वातावरण बनाए रखने का भरसक यत्न करना है क्योंकि गाना धारण किए रखने के लिए घर सतयुग बनाना आवश्यक है।

5. दुःख आने पर भी 'गाना' पहनने वाले सजन ने दुःख में या क्रोध में आकर रोना-पीटना या स्वयं के शारीरिक अंगों पर हाथ नहीं उठाना यानि 'गाना' धारण करने के उपरान्त सजनों ने रोना-पीटना नहीं।

6. गाना' पहने हुए हाथ में कोई कृत्रिम धागे व अन्य धातु नहीं पहननी। याद रहे जिस हाथ में 'गाना' पहना है उस हाथ में केवल सोने का आभूषण ही पहन सकते हैं क्योंकि 'गाना' कंचन है और कंचन के साथ कंचन धातु ही पहनी जा सकती है।

7. एक बार 'गाना' पहनने के पश्चात 'गाना' हर समय कलाई पर सुशोभित रहना चाहिए यदि 'गाना' बदलना भी पड़े तो बगैर उसे पहने कुछ खाना-पीना नहीं। इसीलिए प्रत्येक सजन ने अपने पास दो गाने रखने हैं। एक हर समय पहना हुआ और दूसरा घर में रखा हुआ।

8. किसी भी सजन ने खण्डित 'गाना' जेबों में रखकर या धागे से बाँधकर या बकसुओं के साथ लगाकर प्रयोग में नहीं लाना।

9. जिन सजनों ने सोने का 'गाना' पहना हुआ है वे सजन भी एक ताम्बे का 'गाना' घर में अवश्य रखें ताकि गाने के खण्डित होने पर उसे उतार कर झट दूसरा 'गाना' पहन सकें।

10. सब गानों की टुकड़ी व चेन का नमूना एक होना चाहिए। इस हेतु ड्यूटी वाले सजन गदे के यज्ञ पर यह सुनिश्चित करें कि एक ही नमूने वाली टुकड़ी व चेन ही पूजने के लिए थाली में रखें।

11. यदि किसी सजन की सोने वाले गाने की चेन खण्डित हो जाए तो दोबारा टुकड़ी नहीं पूजवानी है। हाँ, यदि टुकड़ी खण्डित हो जाए या फिर किसी कारणवश सजन, जितने वजन की वह टुकड़ी है उससे अधिक वजन की टुकड़ी बनवाना चाहता हो तो अवश्य दोबारा पुजवा कर ही 'गाना' पहनना होता है। यहाँ यह भी स्पष्ट कर दें कि यदि दोबारा अपने सामने उतने ही वजन की टुकड़ी बनवानी है और उसके बनाने में लेश मात्र भी अधिक सोना न प्रयुक्त करना हो तो उसे दोबारा पुजवाने की आवश्यकता नहीं है।

12. किसी सजन के गुज़र जाने पर यानि शरीर छोड़ देने पर उस सजन का 'गाना' या तो सभा में लाकर दे देना है (चाहे सोने का हो या ताम्बे का) या फिर घर का कोई अन्य नामी सजन वह 'गाना' पहन

सकता है। परन्तु यह ध्यान रहे कि भूलकर भी सोने के गाने की टुकड़ी को गलाकर उसका गहना बनाने के लिये प्रयुक्त न किया जाए। इस तरफ से अति सावधान रहना है। इस स्थिति में परिवार के सजन सभा के सजनों को पैसे लेकर या बिना पैसे लेकर भी सोने का 'गाना' दे सकते हैं।

अन्ततः गाने की महत्ता, उसकी उपासना विधि, धारक की योग्यताएँ एवं पालनीय नीतियों आदि के विषय में विस्तृत विवेचना से यह ज्ञात होता है कि 'रक्षक' के रूप में प्रदत्त कुदरत की इस महान कंचन दात को धारने की मर्यादा का युक्तिसंगत पालन करने से न केवल हम आत्मसंयम द्वारा विकार-वृत्तियों में फँसने से बचे रह सकते हैं अपितु अपने अंतःकरण को विशुद्ध रखते हुए अन्तर्निहित असलियत स्वरूप के आद् स्रोत से शान्ति-शक्ति भी प्राप्त कर सकते हैं। इस संदर्भ में जान लो कि जहाँ शान्ति चंचलता, उग्रता, राग, चिंता, व्याकुलता व झगड़े-बखेड़ों आदि से रहित मन में पूर्ण संतोष का होना जनाती है वहीं शक्ति निर्विकारता युक्त चित्त की सुदृढ़ता अर्थात् व्यक्ति के धीर यानि धैर्यवान होने का प्रतीक होती है। अतः शक्ति के प्रवाह द्वारा स्वार्थपरता से छुटकारा पा परमार्थ को अपनाना सहज हो जाता है।

इस प्रकार आत्मज्ञान द्वारा उसे अपनी अजरता-अमरता यानि यथार्थ का बोध हो जाता है। फलतः मानव निज बोध द्वारा अपनी सम अवस्था को पहचान समदृष्टि के सबक अनुसार अकर्त्ता भाव से सबके साथ सजन-भाव का वर्त्त-वर्त्ताव करते हुए इस जगत के विषयों से निर्लिप्त बना रह पाता है। इससे उसके लिए निष्कामतापूर्वक परोपकार करते हुए निर्भयता से सच्चाई-धर्म के रास्ते पर बने रहना आसान हो जाता है। तभी तो वह अपनी जीवन शक्ति का प्रयोग सर्वहित के लिए करने के साथ-साथ अपने महान जीवन-लक्ष्य को प्राप्त कर पाता है। इसी संदर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में भी कहा गया है कि :-

'गाना' है ओ बड़ा महान, गाने दी ऊच्ची है जे ओ शान
'गाना' पवा रहे ने आप भगवान, तुसां बालक नहीं नादान,
सजनों हो तुसां नौजवान
सतयुग घर बनाओगे, तदों तुसां 'गाना' पावोगे,
महाराज जी दे वचन करो प्रवान, सजनों हो तुसां इन्सान
इन्सान हो तो इन्सानी दिखाओगे
महाराज जी दे वचनां तो न लाहवोगे-तदों तुसां 'गाना' पावोगे
'गाना' अज़ब दिखाया,
'गाना' महाराज जी ने पाया 'गाना' अजब दिखाया
आहा 'गाना' अज़ब दिखाया, वाह वाह 'गाना' अज़ब दिखाया

अर्थात् 'गाना' महान है और इन्सान को इन्सानियत में ढालकर महान बनाने व उसकी शान बढ़ाने के लिए इसका आविष्कार हुआ है। ईश्वर प्रदत्त इस महान दात को अपनी कलाई पर धारण करने के पश्चात् कोई नादानी करना यानि अविचारग्रस्त हो नीतियों की उल्लंघना करना सजन को शोभा नहीं देता। याद रखो जिस सजन ने इस रख के रूप में 'गाना' रूपी शक्ति को धारण कर रखा है उन्हें ताकतवर युवा अवस्था में बने रहना सुनिश्चित करना है और अपनी वृत्ति-स्मृत्ति व बुद्धि को निर्मल रखते हुए प्रबल भक्ति व शक्ति द्वारा उच्च बुद्धि उच्च ख़्याल होना है। इसलिए सभी सजनों को सुझाव है कि इसके प्रति खुद व सबको जाग्रत रखते हुए कलियुगी भाव-स्वभाव छोड़ कर सतयुगी भाव-स्वभाव अपनाकर अपनी सर्वोत्कृष्टता सिद्ध करो।

अन्ततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इन्सान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

समता के प्रतीक गुलानारी रंग की महत्ता

आओ जानें कि चालीस दिनों के ब्रह्मचर्य तप के दौरान गुलानारी रंग का दुपट्टा ओढ़ने का विधान क्यों है? जीवन जीने के लिए, जीवन के उद्देश्य की पूर्ति के लिए और मन की शान्ति के लिए इस गुलानारी रंग के दुपट्टे का क्या महत्त्व है?

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार इलाही व पातशाही गुलानारी रंग की महिमा अपर अपार है। इसको कोई विरला ही जान व पहचानकर धारण कर सकता है। गुलानारी रंग धुर से आया हुआ वह रंग है जिस रंग का बाणा श्री राम जी, श्री साजन जी व हनुमान जी ने पाया। इसी रंग ने उन्हें सजाया है परिणामस्वरूप उनकी रंगत देखकर आज भी सारा जगत उनके प्रति मस्ताना है। अतः उनसे प्रेरणा प्राप्त कर आपको भी सतवस्तु का यह भाव-स्वभाव

रूपी बाणा धारण कर ख़ालिस सोना होने के लिए हृदय में उमंग जाग्रत करनी है।

यह गुलानारी रंग चारों वर्णों यथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की एकता का प्रतीक है। इस नाते यह गुलानारी रंग चारों वर्णों के इंसानों का आवाहन कर रहा है कि आओ वर्णों के भेदभाव से ऊपर उठकर एक ही रंग में रंग कर एकभाव हो जाओ। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि यह सम्पूर्ण मानव जाति को निष्कामता, निष्पक्षता व धीरता से एकरूप समझने व देखने की बात है। यह है समभाव में स्थित हो अपने मानव रूप होने का सत्य बोध होना और सम्पूर्ण मानव जाति के हृदयों से आपसी भिन्न-भेद का मिटना यानि एकता व एकरसता से जीवन जीना।

अन्य शब्दों में इस गुलानारी रंग की भाव रूपी महत्ता को आत्मसात् कर चारों वर्णों को सम मानना व जानना समभाव में स्थित होना है और इस प्रकार समदृष्टि जैसे महान गुण द्वारा विराट् रूप सर्वव्यापक भगवान के एक दर्शन का बोध कर आत्मीयता से जीवन जीना है। इस सन्दर्भ में गुलानारी रंग एकमतता व सदाचार का प्रतीक है। इस इलाही रंग के रंग में रंगे हुए व्यक्ति की वृत्ति-स्मृति व बुद्धि निर्मल रहती है व उसके विचारों में उच्चता व सुदृढ़ता होती है क्योंकि वह किसी भी बात व कार्य के प्रभाव व परिणाम को विवेक बुद्धि की तुला पर भली-भाँति तोलकर निर्णय लेता है। इस प्रक्रिया से उस व्यक्ति में मनुष्यता अनुरूप सद्गुणों का विकास होता है। यह उसकी विवेकशक्ति प्रबल होने का लक्षण व सर्वांगीण उन्नति का सूचक होता है। इस प्रकार वह समबुद्धि हानि-लाभ, सुख-दुख तथा शत्रु-मित्र आदि को समान समझता है यही कारण है कि उसके हृदय आकाश का तापमान सदा सम बना रहता है और उग्रता नहीं पनपती। हृदय की यह निर्मल स्थिति अंतर्निहित गुप्त मन, बुद्धि और अहंकार रूपी तत्वों की शांति व स्थिरता की प्रतीक होती है जिससे मनुष्य का ख़्याल स्वच्छ, दृष्टि कंचन व जिह्वा स्वतंत्र बनी रहती है।

याद रखो यदि हम चालीस दिनों में विचारशक्ति द्वारा गुलानारी रंग के महत्त्व को समझते हुए चारों वर्णो के प्रति बराबरी का नज़रिया अपना पाते हैं तो यह हमारे समवृत्ति व समदृष्टि होने का सूचक होता है। इसलिए ही चालीस दिनों में चित्त की स्थिरता द्वारा सबके साथ समान आचरण व व्यवहार करने का विधान है। ऐसा सदाचारी व्यक्ति स्वयं तो आनन्द का अनुभव करता ही है साथ ही दूसरों को भी उसके आचार-व्यवहार का रूप अच्छा लगता है यानि उन पर भी वैसा ही प्रभाव जाता है और उनमें भी सदाचारिता का मार्ग अपनाने की प्रेरणा जाग्रत होती है।

अतः हमारे लिए बनता है कि पारिवारिक व सामाजिक एकता और मानव-धर्म अनुरूप नैतिक तौर पर मज़बूत बने रहने हेतु कदम-कदम पर यानि जीवन के हर पहलू में, गुलानारी रंग की महत्ता को खुद यथार्थता से जीवन में उतार कर अच्छी तरह से समझें व औरों को भी इसके विषय में बोध कराएं ताकि सम्पूर्ण मानव जाति परस्पर मेल-मिलाप, स्पष्टता व सजन-भाव अनुसार जीवन जीना सीखे।

इस विषय में रंग शब्द के अर्थ से भी भली-भांति परिचित होना आवश्यक है। रंग वह है जिससे कोई वस्तु रंगी जाती है। मनुष्य के भाव-स्वभाव रूपी ताने-बाने के अनुरूप ही उसकी रंगत यानि (Aura) बनता है। इस प्रकार यह ही उसके जीने का ढंग व स्वभाव का रूप कहलाता है यानि उस स्वभाव अनुरूप व्यावहारिकता अपनाने पर उसी रंगत के अनुरूप सौन्दर्य बनता है अर्थात् उस पदार्थ या इंसान की शोभा व छवि बनती है। कहने का तात्पर्य यह है कि रंग से ही आकर्षण होता है व रंग की रंगत का मानव जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। रंगत ही मानव के मन की अवस्था का दर्शन कराती है तथा इसी रंगत का ही प्रभाव औरों पर पड़ता है। याद रखो जो पूर्ण रूपेण सज्जनता के इस रंग में रंग जाता है वह सदा शिष्ट बना रहता है और उसके व्यवहार में स्पष्टता होती है। यह उसकी पूर्ण युवावस्था यानि मानसिक स्थिरता व सबलता का प्रतीक होता है।

कहते हैं कि इन्सान की गतिविधियाँ, आचरण व व्यवहार उसके रंग-ढंग के प्रतीक होते हैं। जान लो कि समता अनुरूप रंग-ढंग शान्ति का प्रतीक होता है। समता से यहाँ तात्पर्य सबको समान दृष्टि से देखते हुए तद्नुकूल आचार-विचार व व्यवहार दर्शाने से है। ऐसा व्यक्ति किसी के प्रति किसी प्रकार का भेदभाव या राग-द्वेष नहीं रखता। वह जहाँ जाता है वहीं सबका दिल जीत लेता है। इस प्रकार हृदय स्थित समभाव, सजनभाव रूपी गुण में परिवर्तित हो जब इंसान के व्यवहार में प्रगट होने लगता है तो वह इंसान सजनता का प्रतीक बन जाता है। वह सबको अपना बना लेता है और निर्द्वन्द्व शांतमय जीवन जीता है।

अतः हमें मानना होगा कि समता जब अपना प्रभाव दिखाती है तो उसके सामने अन्य सब रंग फीके पड़ जाते हैं जिससे चित्त में परमानन्द का अनुभव होता है। जान लो कि मंगलाचरण, समता के प्रति समर्पित हो, उसका सत्कार करना है। इसी समता के स्वभाव के वर्त्त-वर्त्ताव में निपुण व्यक्ति ही अपनी श्रेष्ठता स्थापित कर सकता है व जीवन की बाज़ी जीत सकता है। तात्पर्य यह है कि वह कभी भी अपने व किसी के मन के अनुसार आचरण कर अपने जीवन का खेल नहीं बिगाड़ता। अतः सभी को सुझाव है कि यदि जीवन को आनन्दमय बनाना चाहते हो तो इस इलाही रंग में रंग जाओ व भूल कर भी कभी किसी के प्रति समता से भिन्न द्वेषपूर्ण व्यवहार करने की नीति मत अपनाओ।

याद रखो कि चालीस दिन सदा इसी एक ही मानसिक स्थिति में बने रहना होता है। यह वह स्थिति है जिसमें परस्पर किसी प्रकार की विपरीतता या विषमता नहीं होती। यह पारस्परिक विरोध हटा कर सामंजस्य स्थापित करने तथा कराने यानि औचित्यता व आपसी मेल-मिलाप रखने की बात होती है। इससे सहनशीलता प्रदान करने वाला क्षमा रूपी गुण मन की भावना के रूप में विकसित होता है जिसके अनुसार क्रोध उत्पन्न होने का कारण होने पर भी वह न तो उत्तेजित होता है और न ही क्रोध करता है अपितु उसका अपराध सहन कर लेता है यानि उसके मन में बदले की भावना नहीं पनपती। यही तो मनुष्य के धैर्यवान होने का प्रतीक होता है।

यह मन के शांत यानि चंचलता रहित स्वस्थ व विरक्त होने की अवस्था होती है जिसमें मन किसी भी प्रभाव के कारण उग्र या प्रचंड नहीं होता यानि वह सभी प्रकार के अंतर्द्वन्द्वों व मतभेदों से मुक्त ईश्वर में लीन रहता है। इसी शान्ति-शक्ति के प्रभाव से वह शान्त मन मनुष्य अपने जीवनकाल में एक तो कष्ट, विपत्ति, अमंगल आदि से रक्षित रहता है तथा उसके मन में कुटिलता यानि छल-कपट नहीं पनपता। वह संतोषी व धैर्यवान जीवन में जो भी करता है मांगलिक कार्य ही करता है यानि किसी के सुख, चैन में बाधा डालने वाला कोई ग़लत काम जैसे लड़ाई-झगड़ा, दंगा-फ़साद आदि नहीं करता और दूसरा उसके लिए वासना शमन यानि इन्द्रिय-निग्रह करना सहज हो जाता है क्योंकि उसका शारीरिक स्वभावों का टैम्प्रेचर कभी घटता या बढ़ता नहीं अर्थात् सम रहता है।

इस प्रकार वह मनुष्य सत्य-असत्य के विवेक वाला, ईमानदार यानि पवित्र मन वाला होता है। यह अवस्था अंतःकरण की शुद्धता का प्रतीक होती है। यहाँ अंतःकरण की शुद्धता से तात्पर्य भले-बुरे के विवेक तथा अनुभव करने वाले आन्तरिक कारण अथवा मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार रूपी सामूहिक साधन की स्वच्छता से है। इस प्रकार वह निर्विकारी, विचार ईश्वर है अपना आप के सत्य को वर्त-वर्ताव में उतार कर स्थिर चित्त हो जाता है तथा सत् चित आनन्द स्वरूप एक दर्शन में स्थित रहते हुए वह सच्चरित्र बन जाता है। अमीरों का भी अमीर ऐसा संतोषी निष्काम भाव से अपना सर्वस्व परोपकार के लिए समर्पित कर आनन्दमय बना रहता है। इसी यथार्थ भक्ति द्वारा हम जीवन लक्ष्य प्राप्त कर सकते हैं ।

आओ अब उपरोक्त सबक को यादगीरी में बिठाने के लिए इसकी पुनरावृत्ति करते हुए अपना-अपना आत्मनिरीक्षण करें।

गुलानारी रंग किसका प्रतीक है?

ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र, सब वर्णों यानि सम्पूर्ण मानव जाति की एकता का या बराबरी का।

यह रंग हमें क्या शिक्षा देता है?

परस्पर समता अपनाने यानि सजन-भाव को व्यवहार में लाने की।

अब अपना आत्मनिरीक्षण करो कि क्या हम चालीस दिनों के इस महाव्रत के दौरान सबसे सजन-भाव अनुसार व्यवहार कर पाते हैं?

नहीं जी।

तो हमें सावधान रहना है और जो ग़लती अब तक हो चुकी है उसको भूलकर भी नहीं दोहराना। याद रखो ग़लती को दोहराने से अपना व सबका नुकसान होता है। तात्पर्य यह है कि परस्पर समभाव-समदृष्टि की युक्तिनुसार सजन-भाव का वर्त्त-वर्त्ताव न करने से यानि सतवस्तु की चाल न पकड़ने से भिन्न-भेद पैदा होता है और परस्पर सम्बन्ध कमज़ोर पड़ते हैं, लड़ाई-झगड़ा होता है, वाद-विवाद चलता है। इस प्रकार मन की शांति व पारस्परिक एकता भंग हो जाती है।

तो क्या समभाव के स्थान पर ऐसा द्वि-द्वैत युक्त व्यवहार दर्शाने से हमारा चालीस दिनों का महातप पूरा हो सकता है?

नहीं, यह असम्भव है।

याद रखो चालीस दिन ऐसा वर्ताव करने का निर्देश देने के पीछे मकसद यह है कि हम स्वार्थ की राह छोड़ कर निरंतर परमार्थ के रास्ते पर अग्रसर रहें। इस तरह यह जीवन को स्वार्थ से परमार्थ की ओर मोड़ने का यत्न है। इस यत्न में कामयाब होने के लिए बहुत बड़े दिल की व त्याग दिखाने की आवश्यकता है। इस हेतु समझदारी से आत्मनियन्त्रण रखने की आवश्यकता है ताकि हमारे मन में तूं-मैं का भेद पैदा न हो और हमारा मन सदा निज असलियत स्वरूप में लीन रहे।

यहाँ विचार करने की बात है कि क्या हम यह कर पा रहे हैं?

नहीं जी, अभी हम अपने अन्दर ऐसा करने हेतु कमज़ोरी का आभास करते हैं।

अपने आप को कमज़ोर मत समझो और अपने भाव, भावना व स्वभाव को इस गुलानारी रंग की रंगत में रंग दो और समभाव-समदृष्टि की युक्तिनुसार सजन-भाव के वर्त्त-वर्त्ताव का प्रदर्शन करो। याद रखो यही रंगत आपके मन की रंगत हो ताकि मन में किसी के प्रति किसी प्रकार का ऐसा भिन्न-भेद न हो जिससे द्वि-द्वेष व अशान्ति उत्पन्न हो।

याद रखो यही रंगत आपकी जिह्वा की रंगत हो यानि अपने शब्दों पर आपका नियन्त्रण हो और जिह्वा से किसी के भी प्रति कोई ऐसा अनुचित शब्द न उच्चरित हो जिसे सुनकर उसका हृदय विदीर्ण हो जाए यानि वह दुःखी हो जाए। इस तरह मन-वचन से इस रंगत को अपने कर्म में उतार दो यानि आपके कर्म का रूप सुकर्म हो।

याद रखो यदि हम एकता, एक अवस्था की इस नीति के विरुद्ध विचरते हैं तो हमारे कर्म का रूप कुकर्म या अधर्म ही होगा जो हमारे लिए अपयश की बात होगी यानि यह ख़ुद अपनी किस्मत बिगाड़ने की बात होगी।

जाँचना करो कि कहीं आप ख़ुद अपनी प्रारब्ध तो नहीं बिगाड़ रहे हो?

(मौन)

ध्यान दो जब स्वयं बनाई किस्मत अनुसार फल भोग प्राप्त होता है तो सुकर्मों में जकड़ा इन्सान हँसता है व कुकर्मों-अधर्मों में जकड़ा हुआ इन्सान रोता है।

इस तरह पाप मार्ग पर चलने से रोने-झुखने से युक्त इस जीवन से छुटकारा कैसे प्राप्त हो सकता है?

अतः फिर से कह रहे हैं कि इस गुलानारी रंग की भाव रूपी रंगत को अर्थात् समता के अनुसार अपनी भावना को मज़बूत कर इस तरह वर्त्ताव में ले आओ कि यह हमारा मूल गुण बन जाए और देखने वाला हमारे भाव-स्वभाव रूपी बाणे का रंग देखकर दंग रह जाए। कहने का तात्पर्य द्वि-द्वेष, छल-कपट, भिन्न-भेद से रहित एकता, एक अवस्था में बने रहने से है। इस हेतु सावधान होकर इन चालीस दिनों के दौरान स्वयं पर संयम रखते हुए जीवन जीना होगा। यह नहीं कि आपकी कथनी कुछ व करनी कुछ हो। इन्सान हो तो इन्सानियत में आना होगा। ऐसा इसलिए कह रहे हैं कि मनुष्य होने के नाते आपके पास विशेष बुद्धि है। इस विशेष बुद्धि के कारण आपके लिए सत्य-असत्य व भले-बुरे की परख करना कठिन कार्य नहीं है। अतः ईश्वर प्रदत्त इस विवेक बुद्धि का प्रयोग कर मानवता अपना लो और नेकी की राह पर चल पड़ो। इस हेतु इन चालीस दिनों के महातप के दौरान ही अपने मन-वचन-कर्म को साध लो ताकि ख़्याल स्वच्छ, जिह्वा स्वतन्त्र व दृष्टि कंचन हो जाए और आप इसी जीवन काल में अपने जीवन उद्देश्य की प्राप्ति कर सको। याद रखो यदि हम ऐसा करने में सफल नहीं हो पाते तो जीवन की बाज़ी हार बैठेंगे।

तो क्या चाहते हो जीवन उद्देश्य कि प्राप्ति या जीवन हार जाना?

जीवन लक्ष्य की प्राप्ति करना।

तो समय रहते सतर्क हो जाओ और खुद पर नियन्त्रण रखते हुए समता के विपरीत चलन अपनाकर किंचित् मात्र भी त्रुटि करने की भूल न करो। याद रखो त्रुटि करने का अर्थ होगा ख़्याल का इधर-उधर भटक जाना। ख़्याल के भटकने से असली घर का रास्ता भूल जाओगे। घर कर रास्ता भूल गए तो जीवन लक्ष्य प्राप्त कैसे हो सकेगा। सो यह भूल कभी मत करना।

अब सब सही तरीके से अपना आत्मनिरीक्षण करना और जहाँ भी त्रुटि दिखाई दे आत्मनियन्त्रण द्वारा उसे सुधार लेना। इस हेतु कुछ भी कुरबान करना पड़े यानि अनुचित भाव-स्वभाव त्यागना भी पड़े तो वह त्यागने से मत सकुचाना। यहाँ सतर्क रहना कि आत्मनियन्त्रण ऐसा हो कि भले ही कुछ भी हो जाए पर इस महातप में अनुचित करनी के कारण हमारी निर्धारित उद्देश्य सिद्धि में किसी प्रकार का कोई विघ्न न पड़े। इसकी निर्विघ्न समाप्ति के लिए हिम्मत लड़ाना और एकता के भाव में मज़बूत हो जाना।

चारों वर्ण अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एक ही रंग गुलानारी गुलानारी रंग की महिमा

ध्वनि:-

कैसा प्यारा है रंग हृदय उठे उमंग
कैसा प्यारा है रंग हृदय उठे उमंग।

आ आ आ आ आ कैसा प्यारा है रंग हृदय उठे उमंग।
इस रंग दा पाया श्री राम जी ने बाना, जगत देख होवे मस्ताना।

ए रंग धुर दा आया, कैसा प्यारा है रंग हृदय उठे उमंग।
इस बाने ने साजन जी नूं है ओ सजाया, नाले हनुमान जी ने वी पाया।

ए रंग धुर दा आया, कैसा प्यारा है रंग हृदय उठे उमंग।
ए रंग इलाही आया, ए रंग पातशाही आया।

ए रंग कोई विरला जाणे, ए रंग कोई विरला पछाणे।
रंग ओ इलाही आया, ओ रंग पातशाही आया।
रंग है ओ अजब रंग, ओ रंग रौशनाई आया।।

इस रंग दी महिमा अपर अपार, ओ कोई विरला जाने।
चमके ओ शहर पर शहर, कोई विरला पहचाने।।

सबके हृदय इस एकता के रंग में रंग कर प्रफुल्लित व आनन्दित हो उठें इस हेतु सबको शुभकामनाएँ।

अन्ततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इन्सान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

नीतियों के पालन के प्रति आत्म-विश्लेषण

जीवन उद्देश्य की पूर्त्ति हेतु प्रतिवर्ष 3 पौष से 13 माघ तक चलने वाले चालीस दिनों के महाव्रत के महत्त्व को समझते हुए हमें सतत् रूप से सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित नीतियों की पालना के प्रति जागरूक रहना है ताकि हम शांति-शक्ति के धारक बन पूर्ण संतोष एवं धैर्य को प्राप्त कर निडरता से सच्चाई-धर्म के रास्ते पर चल सकें। इस हेतु आवश्यकता है कि हम नीतियों की पालना के संदर्भ में अपनी वर्तमान स्थिति का सत्यता से विश्लेषण करें और जहाँ भी इनकी पालना के प्रति खुद को कमज़ोर पाएँ, उस कमज़ोरी पर आत्मनियन्त्रण द्वारा विजय प्राप्त कर आत्मसुधार करें। निःसंदेह तभी हम इस महाव्रत को निर्विघ्न सम्पन्न कर एक अच्छे व नेक इंसान की तरह आजीवन सदाचारी व निष्काम भाव से परोपकारी बने रह सकते हैं। आओ अब इस सन्दर्भ में निम्नलिखित बिन्दुओं पर

अपनी जाँचना करते हैं:-

प्रश्न - क्या हम सजन विचार के साथ प्रेम और शान्तिपूर्वक चालीसे पर बैठे हैं?

प्रश्न - क्या हमें सत्संग की प्रारम्भिक विधि अर्थात् हनुमान चालीसा, संकट मोचन, पंच कवित्त, भोग, हवन, गीता के श्लोक, आरती इत्यादि मौखिक रूप से याद हैं?

प्रश्न - क्या हमने मन-वचन-कर्म द्वारा ब्रह्मचर्य व्रत की पालना करने हेतु अपने आप को तैयार कर लिया है? इस संदर्भ में हमें याद रखना है कि आखिरी सात दिन इस नीति का सख्ती से पालन करते हुए ही हमें चालीसे पर बैठना है। चालीसे की निर्विघ्न सम्पन्नता के लिए यह अति आवश्यक है।

प्रश्न - क्या हम चालीसे का पाठ गुलानारी रंग का दुपट्टा सिर पर करके सुबह 6 बजे से 10 बजे के अन्दर या फिर दोपहर 2 बजे से रात 9 बजे के अन्दर नित्यप्रति विधि अनुसार अफुरता से करते हैं?

प्रश्न - क्या हम अपनी चार पढ़ाइयाँ यथा 1. तीन वक्त बैठकर पाठ करना 2. सारा दिन अक्षर चलाना 3. बुधवार-वीरवार के बोर्ड पढ़ना 4. मंगलवार का हवन, गदे के यज्ञ का हवन, अखण्ड हवन, चैत्र के यज्ञ का हवन और पौने दो महीने का पाठ (5.00 से 5.30 बजे तक या 5.30 से 6.00 बजे तक) नियम से करते हैं? कहीं लोभ, मोह-माया के प्रभाव से हम इसके विपरीत चलन अपनाकर चालीस दिनों का महाव्रत खंडित करने की भूल तो नहीं करते?

प्रश्न - क्या इस महाव्रत के अन्तराल में हम शांति-शक्ति की प्राप्ति हेतु नियमित रूप से अपने-अपने शहरों के सत्संग में सही समय पर जाते हैं?

प्रश्न - क्या हम पति व पत्नी, पतिव्रत-पत्नीव्रत धर्म की मर्यादा पर अटल बने हुए हैं व परस्पर एक दूसरे से पूछकर इस महायज्ञ पर बैठे हैं?

प्रश्न - कहीं नीतियों की अवहेलना करने के कारण हमने कुरस्ता यानि दुराचारिता का मार्ग तो नहीं अपना लिया और इस प्रकार अपनी यश-कीर्ति की हानि तो नहीं कर बैठे? अगर ऐसा है तो अपने, अपने परिवार व आने वाली संतानों के सुख के निमित्त समय रहते ही आत्मिक ज्ञान प्राप्त कर अपने मन को वश में रख खुद को सम्भाल लें यानि सदाचार का रास्ता अपना लें।

प्रश्न - क्या हम इस महाव्रत के दौरान किसी बात का रोना-झुखना और निंदा आदि तो नहीं करते और सदैव क्रोध, झूठ-फ़रेब, चोरी-ठगी, छल-कपट, वैर-विरोध, ईर्ष्या-द्वि-द्वेष, लड़ाई-झगड़े इत्यादि से बचकर रहते हैं?

प्रश्न - क्या चालीस दिन के महाव्रत के दौरान किसी शोक वाली जगह पर जाकर और रोकर हमने अपना चालीसा खंडित तो नहीं कर लिया? यदि ऐसा कर लिया है तो हमें आखिरी सात दिन चालीसे पर नहीं बैठना और हुक्म पर खड़े रहना है?

प्रश्न - ग़लती से भी कहीं हम पति-पत्नी सर्वव्यापक भगवान के सत्य को नज़रअंदाज़ कर क्रोधवश एक दूसरे पर या अपने बच्चों पर हाथ तो नहीं उठाते हैं?

प्रश्न - हम व हमारे बच्चे स्वार्थ में फँस बिगड़े नहीं इस हेतु क्या हम खुद पर व उन पर कड़ी निगाह का पहरा रखने में खुद को सक्षम पाते हैं?

प्रश्न - क्या हमें याद है कि गाना हमारा 'सिरताज' व 'रख' है। क्या आत्मरक्षा हेतु धारण किए हुए इस 'सिरताज' के रख-रखाव के नीति-नियमों के प्रति हम जागरूक हैं? कहीं नाम लेने व गाना पहनने के पश्चात् हम सात्विक आहार के विपरीत जिह्वा रस के वशीभूत हो राजसिक व तामसिक आहार के सेवन में तो नहीं फँस गए अर्थात् मीट, अण्डा, शराब जैसे निषिद्ध आहार का सेवन तो

नहीं कर रहे? यदि ऐसा है तो चुपचाप गाना उतार कर सभा में दे दें, इसी में भलाई है।

प्रश्न - क्या घर का सब कार्य-व्यवहार करते हुए भी हमारा अक्षर घड़ी की टक-टक की तरह चलता रहता है अर्थात् क्या हम नाम-ध्यान में जुड़े रह भक्ति-शक्ति धारण किए रहते हैं?

प्रश्न - क्या हम ख़्याल की अफुरता व ध्यान की स्थिरता हेतु अपना ख़्याल ध्यान वल व ध्यान प्रकाश वल रख पाते हैं?

प्रश्न - क्या हम सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित 'जाँचो-तोलो तुल खड़ोवो' की युक्ति अनुसार कदम-कदम पर विचार पकड़ते हुए पल-प्रति-पल आत्मनिरीक्षण करते हैं? याद रखो इस नीति का पालन करने पर ही हम आत्मनियन्त्रण द्वारा आत्मसुधार करने की दिशा मे अग्रसर हो सकते हैं।

प्रश्न - क्या हम सजन श्री शहनशाह महाबीर जी के चरित्र से शिक्षा लेकर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बनने हेतु युक्तिसंगत यत्न कर रहे हैं? युक्तिसंगत यत्न से तात्पर्य नीति-नियमों की पालना द्वारा अन्तःकरण की शुद्धता यानि मन, बुद्धि व चित्तवृत्तियों की निर्मलता सुनिश्चित कर 'हौं-मैं' के रोग से छुटकारा पाने से है।

प्रश्न - क्या हम सजन श्री शहनशाह महाबीर जी की तरह अकर्त्ताभाव से निष्कामतापूर्वक ईश्वरीय हुकुम की पालना के लिए तत्पर रहते हैं?

प्रश्न - क्या अन्दरूनी व बैहरूनी दोनों वृत्तियों में हम सेवक-स्वामी, भक्त-भगवान व गुरु-चेले के भाव से मुक्त रह शब्द है गुरु, शरीर नहीं है व विचार ईश्वर है अपना आप के सत्य को स्वीकार कर अटलता से व्यवहार में उतार पाते हैं?

प्रश्न - कहीं भूल से हम मानव-धर्म के विपरीत चलन अपनाकर, शरीरों और तस्वीरों की पूजा-मानता करने व करवाने में व मानव-निर्मित धर्मों के प्रपंचों, आडम्बरों व कर्मकाण्डों में तो नहीं फँस गए?

प्रश्न - जैसा कि हम सब जानते ही हैं कि 'शब्द है हमारी पढ़ाई, ग्रन्थ है हमारी सफ़ाई' क्या इस नीति को ध्यान में रखते हुए हम नित्य प्रति सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ पढ़-समझ कर विचार में ला सत्य को अपना पाते हैं ? यानि क्या हम बुरे भाव-स्वभावों को त्याग कर अपनी सुरत को कंचन यानि ख़ालिस सोना करने के प्रति सचेत हैं?

प्रश्न - क्या हम अपनी जिह्वा स्वतन्त्र रख पाते हैं अर्थात् परस्पर बातचीत के दौरान गाली-गलौज या अपमानसूचक व निरर्थक शब्दों का प्रयोग तो नहीं करते? कहने का आशय यह है कि हम परस्पर सजनता व जी-जी का वर्त-वर्ताव करते हुए सत्य व मृदुभाषी बने रह पाते हैं?

प्रश्न - क्या हम इस विषयी जगत में विचरते हुए अपना संकल्प स्वच्छ रख पाते हैं अर्थात् इच्छा व कामना के प्रभाव से विमुक्त हो आत्मतुष्ट तथा शरीर व जगत के विषयों से निर्लिप्त बने रह पाते हैं?

प्रश्न - क्या हम एक निगाह एक दृष्टि द्वारा जनचर-बनचर-जड़-चेतन में एक दर्शन कर अपनी दृष्टि कंचन व दृष्टिकोण सकारात्मक रख पाते हैं?

प्रश्न - क्या हम अपने शरीर रूपी मकान के साथ-साथ मन-मंदिर की स्वच्छता व स्वस्थता का पूरा ध्यान रखते हैं?

प्रश्न - क्या हमारी अन्दरूनी व बैहरूनी दोनों वृत्तियाँ समरस हैं यानि जो मन-मन्दिर प्रकाश है वही जग अन्दर देखते हुए हमारा

मन-वचन-कर्म एकरस रह पाता है? कहीं हमारी कथनी व करनी में फ़र्क तो नहीं है?

प्रश्न - क्या हम सतवस्तु जो सर्व एकात्मा में है परमात्मा उस हीरे की पहचान के लिए आवश्यक आत्मज्ञान प्राप्त करने हेतु तत्पर है ? तात्पर्य यह है कि क्या हम आत्मिक ज्ञान की पढ़ाई के प्रति पूर्ण समर्पित व सजग हैं अर्थात् मन-वचन-कर्म द्वारा खुद सात्विक ज्ञान धारणा कर उसे वर्त्त-वर्त्ताव में ला रहे हैं ताकि हमारे बच्चे भी हमें देखकर इस परमार्थी पढ़ाई व गुढ़ाई अनुरूप चलन अपनाएं व पूर्ण निष्काम व समर्पण भाव से सर्वहित हेतु सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ की वाणी के प्रचार व प्रसार हेतु यत्न लड़ाकर परोपकार कमाएं।

प्रश्न - क्या हम साग को कड़ाह समझते हुए अर्थात् किसी बात की अपेक्षा, इच्छा व शिकायत न करते हुए अपनी व परिवार की उन्नति के प्रति यत्नशील बने रह, अपनी हैसियत में प्रसन्नता से विचरने में ही आनन्द मानते हैं?

प्रश्न - क्या हम विपरीत परिस्थितियों में भी चित्त की सुदृढ़ता व निर्विकार अवस्था सुनिश्चित कर पाते हैं अर्थात् जन्म-मरण, रोग-सोग, ख़ुशी-ग़मी, मान-अपमान व अमीरी-ग़रीबी इत्यादि में धैर्यवान बने रह समभाव से स्थित रह पाते हैं और सबके साथ समदृष्टि अनुसार सजन-भाव का वर्त्त-वर्त्ताव कर पाते हैं ?

प्रश्न - क्या हम अपने यथार्थ यानि अपनी अजरता-अमरता के प्रति जागरूक रह सत्यतापूर्वक निर्भयता से समस्त कार्यव्यवहार कर पाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि कहीं मायावी आकर्षण के वशीभूत हो अज्ञान धारणा द्वारा हम नश्वरता यानि जड़ता में तो नहीं फँस रहे हैं?

प्रश्न - क्या हम मानव-धर्म के अनुरूप मानवोचित्त गुण यथा सहृदयता, शिष्टता, शील, उदारता, क्षमा, सज्जनता, दया, अहिंसा, परोपकारिता, आदि अपनाते हुए परस्पर इन्हीं का ही वर्त्त-

वर्त्ताव करते हैं अर्थात् धर्म के रास्ते पर सीधे चलते हुए अपने जीवन के प्रति, परिवार के प्रति, समाज के प्रति व विश्व के प्रति कर्त्तव्यों का निष्कामता से न्यायसंगत पालन कर पाते हैं ?

प्रश्न - क्या सजन श्री शहनशाह महाबीर जी के द्वारे पर आने के बावजूद भी हम अपने पारिवारिक सदस्यों को नाम-अक्षर से वंचित रखने की भूल तो नहीं कर रहे? यानि क्या हम अपने परिवारजनों को सच्चाई-धर्म के रास्ते पर चलने के लिए प्रेरित कर घर को सतयुग बनाने हेतु यत्नशील हैं?

प्रश्न - क्या हम अपने घर के बुज़ुर्गों की सेवा व बच्चों की पालना ठीक से हँसकर करते हैं?

प्रश्न - क्या नीति अनुसार घर में व सत्संग में विचरते हुए हमारे हृदय की प्रफुल्लता व चेहरे की मुस्कुराहट बनी रहती है ?

प्रश्न - क्या हम एकता के प्रतीक इलाही व गुलानारी पातशाही रंग में रंग कर सबके साथ आत्मभाव व सजन-भाव से विचरते हुए समदृष्टि अनुरूप एक जैसा वर्ताव करते हैं?

प्रश्न - क्या हम पूर्ण आत्मीयता के भाव से सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान ईश्वर के प्रति पूर्ण श्रद्धा तथा विश्वास रखते हुए स्वार्थ और परमार्थ दोनो में ही एकता, एक अवस्था बनाए रख पाते हैं?

अन्ततः सजनों महाव्रत के इन्हीं चालीस दिनों के अन्तराल में निज व्यक्तित्व के विकास द्वारा उज्ज्वल चरित्र निर्माण एवं अपने उद्धार हेतु हमने सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित इन नीतियों की पालना के प्रति आत्मविश्लेषण कर अपना यथार्थ मूल्यांकन कर लिया होगा और यह सत्य जान लिया होगा कि जीवनप्रदायक इन नीतिओं की युक्तिसंगत पालना न करने के कारण ही हम सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित युवावस्था की सौखी भक्ति अर्थात् 'समभाव-समदृष्टि की युक्ति' के बारे में पढ़ने-सुनने व समझने के

पश्चात् भी उसे अमल में नहीं ला पा रहे। अतः सजनों आवश्यकता है संभलने की और संभालने की, नीतियों की पालना स्वयं करने की व करवाने की। इस कार्य सिद्धि के निमित्त ईश्वर द्वारा प्रदत्त यह चालीसे का महायज्ञ वरदान है। यदि हम चाहें तो इस दौरान इन नीतियों की युक्तिसंगत पालना द्वारा अपने ख़्याल को ध्यान वल व ध्यान को प्रकाश वल साध सकते हैं और इस तरह उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल हो नौजवान युवा अवस्था को धारण कर सकते हैं। सजनों यह होगा भक्ति प्रबल और शक्ति ताकतवर हो जाना। इस प्राप्ति हेतु हमें पूरी लगन व निष्ठा से इस महाव्रत के दौरान पुरुषार्थ करना होगा। तभी हम आवागमन के चक्र से मुक्त हो अपने असली घर परमधाम पहुँच विश्राम प्राप्त कर पाएंगे।

अन्ततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनाँक 25 जनवरी 2015 का सबक

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इन्सान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

हवन

चालीसे की विधि उपरान्त आखिर वह दिन नज़दीक आ गया जिस दिन 'रख' रूप में 'गाना' रूपी शक्ति का पूजन हवन-मंत्रों आदि के साथ बड़े हर्षोल्लास से सम्पन्न किया जाता है। आशा है कि सब सजन चालीस दिन की विधि के दौरान अपने आप को विकार-वृत्तियों से रक्षित रख आत्मसंयम द्वारा नीति और नियमों की युक्तिसंगत साधना करने में सफल हो रहे होंगे। इस तरह इन्सानियत के उसूलों पर सुदृढ़ बने रह अब आपके लिए गृहस्थाश्रम के साथ-साथ मन मंदिर रूपी घर में शान्ति स्थापित कर उसे सतयुग यानि सत्य युक्त बनाने में कोई कठिनाई नहीं अनुभव हो रही होगी। ऐसे सजनों को हिदायत है कि अफुरता से हवन विधि सम्पन्न करने के पश्चात् भी आपने अपनी अन्दरूनी व बैहरूनी वृत्ति में यही एकरस प्रसन्नता व आनन्द का वातावरण बनाए रखना है।

याद रखो तभी हम अपनी जिह्वा स्वतंत्र, संकल्प स्वच्छ व दृष्टि कंचन रखते हुए सर्वव्यापक भगवान को दृष्टिगोचर रख सबसे समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार आत्मीयता अनुरूप सजन-भाव का वर्त्त-वर्त्ताव कर पाएंगे और सबके प्रति अपने कर्त्तव्यों का निष्कामतापूर्वक हँस कर पालन करते हुए विचार शब्द व समभाव-समदृष्टि की युक्ति को परिपक्वता से ठहरा पाएंगे। इस प्रकार चैत्र के यज्ञ पर अपने भाव-स्वभावों को खालिस सोना कर मानवता अनुरूप ढ़ाल पाने के यत्न में सफल हो फ़र्स्ट का नतीज़ा सुनाएंगे। आइए अब सात दिनों के ब्रह्मचर्य व्रत की पालना के उपरांत 'गाने' की पूजा के लिए किए जाने वाले 'हवन' का उद्देश्य, नीति, युक्ति व महत्ता के विषय में विस्तार से जानते हें।

हवन

जैसा कि सर्वविदित ही है कि यज्ञ एक धार्मिक अनुष्ठान होता है जिसके अंतर्गत सत्य-ज्ञान प्राप्ति हेतु हवन यानि निश्चित विधि-विधान द्वारा मंत्रोच्चारण के साथ-साथ अपनी आत्मा अर्थात् सुरति को आहुति के रूप में अर्पित करके शब्द अर्थात् ईश्वर या ब्रह्म में मिलाने का कृत्य किया जाता है। प्रयोजन अनुसार इस हवन को करने की एक निर्धारित विधि होती है परन्तु हवन करने वाले सजनों की योग्यता, मंत्रोच्चारण, क्रिया का ढंग व सावधानी एक समान होती है। इस संदर्भ में गदे के यज्ञ की समाप्ति पर किया जाने वाले हवन 'गाना' रूपी शक्ति के पूजन के उपलक्ष्य में किया जाता है ताकि चालीस दिनों तक की गई नीति नियमों की पालना द्वारा अफुर अवस्था को प्राप्त साधक उपासक के रूप में 'गाने' को पूर्ण श्रद्धा और विश्वास सहित युक्तिसंगत धारण कर सके और इस प्रकार निर्विकारता से जीवनयापन करते हुए इस जीवन के परम पुरूषार्थ को सिद्ध कर सके।

हवन करने का सामान्य उद्देश्य व महत्ता क्या है?

हवन क्रिया एक शुभ व परोपकारी कृत्य है जिसे धर्म-कार्य भी कहते हैं। हवन की क्रिया द्वारा हम अन्दरूनी और बैहरूनी वृत्ति में अफुर

अवस्था प्राप्त कर लेते हैं तथा ध्यान की स्थिरता द्वारा मानसिक शान्ति प्राप्त कर लेते हैं। हवन अध्यात्मिक, आधिभौतिक व आधिदैविक तीनों तापों से छुटकारा पाने का एक अचूक साधन है क्योंकि इससे शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। हवन की प्रज्ज्वलित अग्नि में दी जाने वाली गौ-घृत व औषधियों के मिश्रण की आहुति से निकलने वाला एक परमाणु, सहस्त्र विषैले परमाणुओं को नष्ट कर देता है। इस प्रकार हवन दूषित वातावरण को शुद्ध करने का एक श्रेष्ठ उपाय है। इस प्रकार सूर्यकिरणों से मिले हुए स्वर्ण-तत्व आस-पास के वातावरण को काफी समय तक सुगन्धित और विशुद्ध बनाए रखते हैं जिससे असंख्य प्राणियों का भला होता है।

हवन करते समय सजन की अन्दरूनी वृत्ति कैसी होनी चाहिए?

हवन करते समय सजन की मुकम्मल अफुर अवस्था होनी चाहिए। ध्यान रहे इन सजनों ने अपने ख़्याल को ध्यान वल व ध्यान को प्रकाश वल कर मन्त्रों के अर्थ व भाव के साथ जुड़कर आहुति देनी है व इस तरह अत्यन्त प्रेम से बाहर से सचेत रहते हुए अपने ख़्याल को आद् से जोड़े रखना हैं। यही नहीं हवन-कुण्ड की अग्नि में आहुति देते समय या बोलते समय साथ-साथ अपनी 'मैं ' को भी होम कर देना होता है। हवन इस तरह एकरस होकर करना है कि हवन मंत्र बोलते समय व आहुति देते समय किसी सजन की अन्दरूनी वृत्ति में जुड़े रहने की तार न टूटे। याद रखो इस तरह एक भाव होकर आत्मीयता से किया हुआ हवन ही निर्विघ्न सम्पन्न माना जाता है।

हवन करने वाले सजनों की आवश्यक निर्धारित योग्यता क्या है?

1. हवन पर जो सजन बैठते हैं वे गदे के यज्ञ की विधि करने वाले चुने हुए सात सजनों से अलग होते हैं तथा आद-अन्त से कंचन होते हैं। इन सजनों का गृहस्थाश्रम ठीक होना चाहिए।

2. इन्हें नीति अनुसार सात दिन के ब्रह्मचर्य व्रत पर बिल्कुल ठीक रहना चाहिए।

3. इन हवन करने वाले सजनो को युक्ति अनुसार हनुमान चालीसा, संकटमोचन, पंचकवित, प्रार्थना, मंगलवार के हवन की विधि, गायत्री मन्त्र, शान्ति पाठ, भोग लगाने की विधि शुद्ध ज़बानी याद होना चाहिए।

4. ये सजन नामी, नीतिवान व गाना पहने हुए होने चाहिए तथा इनका चालीसे पर बैठना व नित नेम खंडित नहीं होना चाहिए।

5. इन सजनों को हवन पर बैठने की आज्ञा पहले से ही ले लेनी चाहिए।

हवन पर बैठने से पूर्व विचारणीय बिन्दु

यह हवन सब सजनों के जन्म में है इसलिए इसकी अखण्डपूर्ति सब सजनों के लिए अनिवार्य है। बैहरूनी वृत्ति में प्रत्येक स्कूल में जगाकर हवन करने के लिए सात सजनों का विधान है। इसके अतिरिक्त सभी सजनों ने इस दिन अपने-अपने स्कूलों में निर्धारित समय पर पहुँचकर अन्दरूनी वृत्ति में हवन करना है। याद रखो कि इस दिन सभी सजनो नें सफेद पोशाक पहन कर व नया गुलानारी दुपट्टा ओढ़ कर ही सारी विधि व हवन करना है। किसी ने भी किसी अन्य रंग का वस्त्र नहीं ड़ालना। जगाकर हवन करने वाले निर्धारित सात सजनों में से छः निश्चित मन्त्रों के साथ सामग्री की आहुति डालते हैं और एक सजन गाय के घी की आहुति देता है।

हवन के सहायक सजन यद्यपि सारी सामग्री पहले से ही थाली में मिलाकर प्रत्येक सजन के आगे आहुति देने योग्य सामग्री रख देता है और इसी प्रकार घी, लकड़ी, धूप, लस्सी तथा आवश्यक पात्र भी रख देता है पर फिर भी हवन करने वाले सजनों की ड्यूटी है कि वे हवन करने से पूर्व जाकर पूरी सामग्री की जांचना कर लें और यदि

कोई कमी लगे तो शीघ्र ही उसे विधि शुरू होने से पूर्व ही पूरा कर दे। इसी तरह इन सजनों ने हवन से पूर्व सामग्री की शुद्धता की भी जाँच-परख कर लेनी है।

1. हवन करने वाले निश्चित सात सजन सुच्चे मुँह (बिना कुछ खाये पीये) हवन करेंगे।

2. हवन करने वाले सभी सजनों को हवन से पूर्व तिलक (गुलानारी रंग के सिंदूर का) लगाना है।

3. ये सजन हवन कुंड से एक हाथ की दूरी पर बैठेंगे ताकि आहुति ठीक डलती रहे।

4. हवन की सारी विधि माइक पर बैठा पहले से निश्चित एक अन्य सजन बोलेगा। इसी सजन के साथ आवाज मिलाकर सातों सजन हवन-कुण्ड में आहुतियाँ देंगे ताकि आहुति एक साथ दी जाए।

5. हवन की पूरी सामग्री के पैसे हवन पर बैठने वाले सातों सजनों ने मिलकर देने होते हैं।

6. हवन शुरू होने से लेकर उसकी समाप्ति तक प्रत्येक कार्य के लिए सीधे हाथ का, जिसमें गाना पहना हो, ही इस्तेमाल किया जाता है। इसीलिए किसी कारणवश यदि किसी ने बाएं हाथ में गाना पहना हुआ भी हो तो हवन से पहले उसे सीधे हाथ में पहन लेना चाहिए।

7. हवन के दौरान बिल्कुल सीधे अफुर होकर बैठना चाहिए।

8. चूंकि हवन बैहरूनी वृत्ति का कृत्य है इसलिये मन्त्र उच्चारण बिल्कुल शुद्ध होना चाहिए, कोई भी अक्षर व मात्रा तक अन्दर न बुले और न ही अस्पष्ट हो अपितु जो भी बोलना है वह हृदय से बाहर आए और उसमें से प्रसन्नता का भाव झलके। इस प्रकार बैरुनी वृत्ति का कृत्य ठीक होने से अन्दरूनी वृत्ति यानि ख़्याल अपने आप मज़बूत हो जाएगा।

हवन करते समय सावधानी -

1. हवन करते समय इधर-उधर भी नहीं देखना चाहिए। दृष्टि हाथ की तरफ जिसमें सामग्री है उस तरफ टिकी रहे व ध्यान हवन कुण्ड में से प्रज्ज्वलित हो रही लौ के शिखर पर टिक जाए।

2. ध्यान रहे हवन के दौरान किसी एक सजन ने दूसरे सजन को अपनी थाली में से सामग्री नहीं देनी।

3. हवन कुण्ड में आहुति डालने से पूर्व सामग्री को अंदाज़ से 21 भागों में बाँट लेना चाहिए ताकि प्रत्येक मन्त्रोच्चारण के साथ, आहुति में सामग्री का सम भाग हवन कुण्ड में जाए। इस प्रकार हवन समाप्ति पर एक तो हम इकट्ठी ढेर सामग्री हवनकुण्ड मे डालने से उठने वाले अनावश्यक धुएं से बचे रह सकते हैं दूसरा हवनकुण्ड में अग्नि बुझने का ख़तरा भी नहीं रहता।

4. याद रहे सामग्री का जो भाग आहुति डालने के लिए हाथ में लिया जाए उस भाग को पूरा का पूरा ईमानदारी से हवनकुण्ड में डालना है यानि हाथ में ली हुई सामग्री इधर-उधर नहीं गिरनी चाहिए क्योंकि जो चीज़ हमें जहाँ और जितनी मात्रा में पहुँचाने को मिली है उसे अमानत समझ कर यथास्थान उतनी ही मात्रा में वहाँ पहुँचाना हमारा धर्म है। यदि हम असावधानीवश उसे इधर-उधर गिरा देते हैं तो वह अधर्म कहलाता है।

हवन के दौरान होने वाली प्रत्येक क्रियाविधि की विस्तृत जानकारी व उसको करने का ढंग व तात्पर्य इस प्रकार है :-

चंदोवा- हवन कुण्ड के ऊपर गुलानारी रंग का चंदोवा लगाना चाहिए ताकि आकाश मार्ग से आने वाली कोई भी वस्तु या द्रव्य हवन-कुंड की पवित्रता को भंग न कर दे।

सफ़ाई- हवन-स्थान की स्वच्छता व पवित्रता बनाने हेतु जहाँ हवन

करना है वह स्थान हवन-कुण्ड रखने से पहले अच्छी तरह से नाम-अक्षर चलाते हुए साफ़ कर लेना चाहिए।

धूप- हवन करने से पूर्व की आरम्भिक विधि बोलने के पश्चात् हवन-कुण्ड के बाहर चारों कोनों में धूप जलाई जाती है। धूप के थोड़ा जल जाने के पश्चात् उसकी लौ को हाथ से बुझा कर शान्त कर देना चाहिए ताकि हवन समाप्ति तक उससे निकलने वाले धुँए व सुगंन्धि से हवन-कुण्ड के चारों ओर का वातावरण कीट-पतंगों जैसे मक्खी-मच्छर इत्यादि की पहुँच से विमुक्त बना रहे यानि हवन के दौरान उन्हें हवन-कुण्ड में प्रवेश का मार्ग न मिल सके। धूप का आकार थोड़ा लम्बा व मोटा बनाना चाहिए ताकि एक तो हवन समाप्त होने तक उसका प्रभाव हवन कुण्ड के चारों तरफ बना रहे और दूसरा वह इस दौरान देर तक बिना गिरे सीधी जगती रहे। इसके लिए धूप को बीच में से थोड़ा वल कर तथा ऊपर से उसकी चोंच निकालने के पश्चात नीचे से सपाट कर देना चाहिए।

नारियल की ठूंठी में मुश्क कपूर रखना- धूप जलाने के पश्चात् नारियल की ठूंठी में थोड़ा सा मुश्क कपूर हवनकुण्ड के भीतर चारों कोनों में खुली-खुली सटाई लकड़ियों की सहायता से मध्य में रखा जाता है। इसका लाभ यह होता है कि एक तो मुश्क-कपूर की सहायता से हवन की लकड़ियाँ जल्दी आग पकड़ लेती हैं तथा पूरी जलती हैं और दूसरा नारियल की ठूँठी की मदद से हवन की अग्नि हवन-कुण्ड में फैलने की बजाय लौ के रूप में सीधा ऊपर जाती है।

लकड़ियाँ लगाना- हवन में प्रयुक्त होने वाली लकड़ी आम की होनी चाहिए तथा प्रयोग में लाने से पहले उसे छोटे-छोटे टुकड़ों में काट लेना चाहिए। ध्यान रहे पेड़ से कटी हुई सूखी लकड़ियाँ हवन के लिए उपयुक्त होती है। हवन करने से पूर्व जाँच लें कि इन लकड़ियों में कोई कील व कीड़ा इत्यादि न लगा हो। हवनकुण्ड में लकड़ियाँ वर्गाकार मे सजाकर रखी जानी चाहिए। इससे अग्नि ठीक से प्रज्ज्वलित होती है।

अग्नि प्रज्ज्वलित करना- हवन का पूर्वतः ठीक प्रबन्ध करके सातों में से एक सजन जो घी की आहुति देता है वह अग्नि प्रज्ज्वलित करता है। हवन प्रज्ज्वलित करने से पूर्व हवन-कुण्ड में रखी लकड़ियों पर थोड़ा घी डाल दिया जाता है। हवन प्रज्ज्वलित करने वाला सजन हवन के दौरान आवश्यकतानुसार लकड़ियाँ हवनकुण्ड में डालता रहता है। याद रखो हवन को जलाने के लिए प्रयुक्त होने वाली माचिस की तीली को कभी भी हवनकुण्ड में नहीं डालना चाहिए।

हवन की सामान्य नीति- गदे के यज्ञ के आखिरी सात दिनों में नित्य प्रति हवन करने की नीति है। पहले छः दिनों में हवन 'मंगलवार के गुप्त हवन' की तरह दोपहार को दैनिक विधि के दौरान स्कूलों में जलाकर व ब्रांचों में गुप्त किया जाता है तथा सातवें दिन प्रातः नौ बजे बड़ा हवन होता है। यह बड़ा हवन, हवन मन्त्र पढ़कर हवन-कुण्ड में प्रज्ज्वलित अग्नि में घी, जौं, तिल अदि की आहुति देकर किया जाता है।

हवन की विधि-

1. सर्वप्रथम हवन करने वाले निश्चित सजन हवन कुंड के चारों ओर यथास्थान बैठ कर मन में प्रार्थना करेंगे।

2. फिर पांच जयकारे लगाने और सात बार 'साडा है सजन राम राम है कुल जहान 'करने के पश्चात निम्न कीर्तन पूरा बोलेंगेः-

'नी मैं धो के पीवां हनुमान जी दे चरण।

3. तत्पश्चात् हवनकुण्ड के चारों कोनों में धूप जगानी है तथा थोड़ी जग जाने के पश्चात लौ हाथ से बुझा देनी है। वह सजन जिसके आगे घी और नारियल पड़े होते हैं, वह हवन कुंड में आम की लकड़ी के साथ हवन प्रज्ज्वलित करेगा और यह ध्यान रखते हुए कि अग्नि प्रज्ज्वलित रहे, लकड़ियां डालता रहेगा।

4. हवन कुंड में सबसे पहले नीचे नारियल की ठूंठी में मुश्क कपूर रखकर उसके चारों तरफ लकड़ियां रखकर जिन पर थोड़ा सा घी डाल लेना है, अग्नि प्रज्ज्वलित करनी है। जिस सजन ने अग्नि प्रज्ज्वलित की है वह मंत्रोच्चारण के साथ-साथ घी की आहुति डालेगा और बाकी छह सजन आहुति की सामग्री डालेंगे। हवन करने की विधि जानने से पूर्व आहुति कैसे डालनी है इस विषय में भी जान लेते हैं:-

5. **आहुतिः-** हवन करने वाले सात सजनों में से छः सजन निर्धारित मन्त्रों के साथ सामग्री की आहुति देते हैं और एक सजन घी की आहुति देता है। सामग्री की आहुति देने वाले सजनों को हर मन्त्र का उच्चारण शुरू होने से पूर्व सीधे हाथ में (जिसमें गाना पहना हुआ होता है) उँगलियों के मध्य हवन सामग्री ले लेनी चाहिए। ताकि सामग्री के जिस भाग की आहुति देनी है वह अलग हाथ में आ जाए और फिर मंत्रोच्चारण की जो क्रिया या कर्म हम कर रहे हैं, उसका सारा प्रभाव उस समर्पित होने वाले भाग में चला जाए। स्पष्ट है हर मंत्र का ओ३म् स्वाहा से पूर्व बुलने वाला उच्चारण कर्म या क्रिया कहलाता है जैसेः-

'सुहंग पवन नन्दनाय नमः' यह भाग क्रिया या कर्म है इससे बाद का मन्त्रोच्चारण का 'ओ३म्-स्वाहा' भाग धर्म कहलाता है। इसलिए जैसे ही ओ३म् अक्षर का उच्चारण आरम्भ हो वैसे ही हमारा हाथ तथा हाथ के साथ हमारा ख़्याल धर्म-कार्य के लिए अपनी आहुति समर्पित करने हेतु इष्ट यानि भगवान की तरफ बढ़ता जाए यानि 'हथ कार वल और चित्त यार वल'। स्वाहा के साथ आहुति समर्पित करते ही अन्दर से ख़्याल और बाहर से हाथ खाली हो जाए यानि वृत्ति पूरी तरह से उस इष्ट के ध्यान में ठहर जाए। मन्त्र के इस भाग का उच्चारण बड़ी ही शुद्धता और धैर्य के साथ बोलकर किया जाना चाहिए क्योंकि यह उच्चारण धैर्य के साथ जितना शुद्ध और स्पष्ट बोलकर किया जाता है, उतना ही व्यक्ति को धर्मार्थ समझ आता है।

6. फिर सातों सजन निम्नलिखित मंत्रोच्चारण के साथ-साथ नीचे लिखी आहुतियां हवन कुण्ड में डालते हुए हवन करेंगे।

क. सुहंग पवन नन्दनाय नमः..... ओ३म् स्वाहा।

अर्थात् प्राण रूपी पवन नन्द नायक को नमस्कार। हे ओ३म् (नामक भगवान) मेरा नमस्कार फलीभूत हो।

ख. श्री हनुमान चालीसा पूरा बोलकर..... ओ३म् स्वाहा के साथ आहुति देनी हैं।

अर्थात् जो महाबीर जी सबसे श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान, व सारी दुनियां में ज्ञानवान है उन महाबीर जी के गुणों का स्मरण व गुणगान करते हुए उनसे बल, बुद्धि और ज्ञान प्रदान करने की प्रार्थना करनी हैं।

ग. ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्। .... ओ३म् स्वाहा।

अर्थात् हे प्राणदाता, दुःखहर्त्ता, सर्वव्यापक, आनन्द के देने वाले प्रभु! आप सर्वज्ञ और सकल जगत के उत्पादक हैं। हम आपके उस सर्वशक्तिमान उपासना करने योग्य शुद्ध तेज स्वरूप का ध्यान करते हैं जो हमारी बुद्धियों को प्रकाशित करता है। हे प्रभु आपसे हमारी बुद्धि कभी भी विमुख न हो। आप हमारी बुद्धियों में सदा प्रकाशित रहें और हमारी बुद्धियों को सब बुरे कर्मों से अलग करके शुभ कर्मों की ओर सदा प्रेरित करें। हमारी यही प्रार्थना है।

ध्यान रहे, मंत्रोच्चारण शुरू होने से पहले सब सजनों ने आहुति सीधे हाथ में उंगलियों के मध्य ले लेनी है। मंत्रोच्चारण के दौरान यह आहुति हाथ में ही रहे। ओ३म् स्वाहा बोलते ही आहुति एक साथ हवन कुण्ड में डालनी है। इसका अभ्यास पहले से ही करके रखना है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक हनुमान चालीसे की आहुति के साथ एक नारियल भी डालना है। याद रहे हवन के दौरान क्रमशः

प्रत्येक मन्त्र की आहुति सात बार दी जाती है। ऐसा इसलिए क्योंकि सात का अंक पूर्णता का प्रतीक माना गया है।

प्रत्येक सजन ने आहुति के बाद दो बार यह बोलना है:–

'सीस निवावां, मैं फुल बरसावां, मेहर, मेहर, मेहर कीती महाबीर जी।
'सीस निवावां, मैं फुल बरसावां, मेहर, मेहर, मेहर कीती महाबीर जी।

ऐसा बोलते समय हवन करने वाले सजनों ने अपनी झोलियों में पास पड़े फूलों की पत्तियां बरसानी हैं तथा निगुर्ण मंदिर में बैठे सात कंचन सजनों ने पूजा के लिए रखे गानों के ऊपर फूल बरसाने हैं।

7. हवन की समाप्ति पर बची हुई सामग्री थोड़ी-थोड़ी करके हवन कुण्ड में डाल देनी है।

8. तत्पश्चात् शान्ति पाठ सातों सजन मिलकर बोलेंगे।

शान्ति पाठ -

ओ**घम्** द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ँ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिः ब्रह्म शान्ति : सर्वे ँ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ओ३म्।

अर्थात् हे सर्वशक्तिमान प्रभु ! आकाश एवं अन्तरिक्ष में शान्ति ही शान्ति हो। जल और थल में शान्ति हो। औषधियों और वनस्पतियों में शान्ति हो। ईश्वर के द्वारा बनाये गए सभी रूप हमारे लिए शान्तिदायक हों। ब्रह्मा की बनाई हुई सृष्टि में शान्ति हो। संसार में चारों तरफ शान्ति ही शान्ति हो। शान्ति भी शान्तिमय हो। हे परमात्मा, मुझे ऐसी ही शान्ति प्रदान करो, यही मेरी मंगल कामना है।

याद रखो शान्ति पाठ बोलते समय जिस वक्त शान्ति शब्द बोलना है, तो उस समय महसूस करना है कि शान्ति हमारे शरीर के अन्दर

रोम-रोम, रग-रग में उतरती जाये। इस प्रकार बैहरुनी वृत्ति में शान्ति बोलने के साथ साथ शान्ति कंठ में से अन्दर हृदय की ओर जाएगी, फिर वहाँ से उदर में फैलकर वहीं समा जाएगी। उदर में शान्ति के समाने से मन मस्तिष्क अपने आप शान्त हो जाएगा। याद रहे शान्ति तत्व की व्यवस्था कुदरत ने इस प्रकार से हमारे शरीर के अन्दर निहित की हुई है, जो पाँच विकारों को शान्त रखने में अपने आप में पूर्णतया सक्षम है। इस अभ्यास से इस तत्व का भरपूर इस्तेमाल करना सीखो।

9. समाप्ति पर मन में चरण-शरण करनी है।

10. **लस्सी के फेरे-** हवन की समाप्ति पर हवनकुण्ड की अग्नि शांत करने के लिए हवनकुण्ड के चारों ओर कच्ची लस्सी के फेरों से उसे शांत किया जाता है। यह क्रिया हवन करने वाला हर सजन कच्ची लस्सी का जग बाँए हाथ में पकड़ कर सीधे हाथ से (जिस प्रकार मन्त्रों की आहुति देते हैं उसी प्रकार) लस्सी को जमीन पर गिराते हुए तथा मन में शब्द चलाते हुए हवनकुण्ड के दाहिनी ओर से एक-एक चक्कर लगाते हुए करता है।

11. परिक्रमा के पश्चात् यानि हवन की समाप्ति पर निम्न पांच जयकारे बोले जाते हैं:

सजन सियापति रामचन्द्र जी की जय।
सजन पवन सुत हनुमान जी की जय।
सजन उमापति महादेव जी की जय।
बोल सजन श्री कृष्ण बलदेव जी की जय।
बोल सतवस्तु के वाली श्री साजन जी की जय।

12. फिर यह सजन अपनी जगह बैठकर 'मैं नहीं आहुति रघुवर जी ने पाई' की ध्वनि बोलते हैं।

13. हवन की समाप्ति के पश्चात दोनों आरतियाँ 'सजन श्री शहनशाह हनुमान जी की' और 'श्री रघुवंशमणि जी की' करनी है। यह आरती हवन करने वाले सजनों ने हवन कुण्ड के पास बैठ कर बोलनी है।

अन्ततः सजनों चालीस दिनों के इस अन्तराल में अभी तक हमने जाना कि चालीस दिनों के इस महोत्सव की प्रत्येक रीति-नीति के पालन करने का मकसद प्रत्येक मानव को उसके जीवन के उद्देश्य से परिचित कराने का एक युक्तिसंगत सार्थक प्रयत्न है। इस दौरान अन्दरूनी व बैहरूनी वृत्ति में मौन अपनाकर की जाने वाली प्रत्येक नीति की पालना से हम मायावी जगत में भटके व लिप्त हुए अपने ख़्याल को अफुर कर मन-मस्तिष्क में शान्ति-शक्ति का सृजन करने के यत्न में सफल हो जाते हैं। परिणामस्वरूप अन्तर्निहित सन्तोष-धैर्य जैसे दिव्य गुणों का विकास होता है और आत्मनिरीक्षण व आत्मनियंत्रण द्वारा द्वि-द्वैत, राग-द्वेष, वैर-विरोध, लड़ाई-झगड़ा, ईर्ष्या इत्यादि जैसे मन्दे भाव-स्वभावों का त्याग करने में सक्षम हो पाते हैं। इस तरह चित्त में निर्विकारता पनपने लगती है और परस्पर एकात्मा का यानि आत्मभाव जाग्रत होता है जिससे प्रेम, एकता, एक अवस्था व मैत्री-भाव सुदृढ़ होता है।

जान लो सजनो यह आशा किरण है आत्मसुधार की। अतः अब सबने इसी वृत्ति में बने रहने हेतु कुदरत प्रदत्त इन्सानियत के गुणों को सत्यता से परख कर तद्नुरूप आचार-व्यवहार अपनाना सुनिश्चित करना है और निरंतर उन्नति पथ पर अग्रसर होते हुए अपनी संतानों के सम्मुख भी इसी मार्ग पर चलने का आदर्श प्रस्तुत करना है ताकि सारा परिवार परमार्थ अपनाकर सत्य-धर्म के रास्ते पर एकरस चलने का पराक्रम दिखाने में कामयाब हो सके व इस तरह अपनी प्रारब्ध को सुखदाई बना कुल समाज की भलाई के निमित्त भी कल्याणकारी सिद्ध हो सके।

अन्ततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनाँक 26 जनवरी 2015 का सबक

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इन्सान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

आज सब सफ़ेद पोशाक और ऊपर से गुलानारी दुपट्टे ओढ़े अच्छे लग रहे हो। जानते हो आज के दिन सबकी सुन्दरता क्यों निखर कर सामने आती है?

नहीं जी।

ऐसा एक तो इस धारण की हुई शहनशाही पोशाक के कारण और दूसरा चालीस दिन के तप के प्रभाव से होता है। यह दोनों मिलकर इन्सान की शोभा बढ़ाते हैं। जब इन्सान की शोभा बढ़ती है तो उसका सुन्दर लगना कोई अजूबा नहीं होता। याद रखो कुदरती प्रदत्त यह सुन्दरता और निखर आती है जब इन्सान इसके साथ-साथ अपने चेहरे पर मुस्कुराहट ले आता है। इस तरह उसका हृदय आनन्द और प्रफुल्लता से भरपूर हो जाता है। अतः सब से निवेदन है कि इस शहनशाही पोशाक की लाज रखो और इसी स्वभाव में ढल जाओ।

इस सन्दर्भ में आओ अब चालीसे के अन्तिम दिन यानि हवन वाले दिन सफेद वस्त्र व गुलानारी दुपट्टे को पहनने का महत्त्व समझते हैं।

हवन वाले दिन सभी सजनों के लिए अमीरी-ग़रीबी के भाव से विमुक्त होकर एक समान सफेद वस्त्र व गुलानारी दुपट्टे को धारण करने का विधान है ताकि वड-छोट, तेरी-मेरी, ईर्ष्या-द्वेष के भाव से रहित होकर सभी समानता के यानि एक भाव में रंग जाएं। इस तरह सभी आपस में शिष्टता अनुसार सभ्य व्यवहार करें ताकि मन से एक दूसरे के प्रति भिन्न-भेद का भाव समाप्त हो और सब एक दूसरे के मित्र व प्रिय बने रहें।

इसी सन्दर्भ में सभी पूर्वतः गुलानारी रंग के एकता व समता रूपी महत्त्व को तो जान ही चुके हैं, आओ अब सफेद रंग के वस्त्रों को धारने के महत्त्व को भी गहराई से समझते हैं-

सफेद रंग शुद्धता, सत्यता, शान्ति, पवित्रता, निर्मलता, पारदर्शिता, एकता व सादगी का प्रतीक है।

अतः सफेद वस्त्र धारण करने वाले के लिए अपना भाव निर्मल, ख़्याल स्वच्छ, बुद्धि प्रकाशित व विचारशक्ति द्वारा आचार-व्यवहार सत्य सम्पन्न रखना आवश्यक है।

इससे क्या होता है?

इससे अन्तःकरण को सदा विशुद्ध रखने की प्रेरणा मिलती है। याद रखो विशुद्ध अन्तःकरण की पारदर्शिता के कारण कोई भी विकृति घर नहीं कर पाती और मन, बुद्धि, चित्त व सूक्ष्म शरीर सहित अहंकार सम अवस्था में सधे रहते हैं।

यहाँ ध्यान से इसे फिर दूसरी तरह से समझो कि मन, बुद्धि, चित्त व सूक्ष्म शरीर सहित अंहकार सम अवस्था में कैसे सधे रहते हैं?

अगर हमारे अन्तःकरण की पारदर्शिता बनी रहती है।

अन्तःकरण की पारदर्शिता कैसे बनी रह पाती है?

अगर हम अपना भाव निर्मल, ख़्याल स्वच्छ, बुद्धि प्रकाशित व विचार शक्ति द्वारा आचार-विचार सत्य सम्पन्न रखने की ताकत रखते हैं।

ये ही हृदय की निर्विकारी, निर्द्वन्द्व, निर्मल व नित्य भाव में स्थित अवस्था कहलाती है जिसमें उस आत्मतुष्ट व्यक्ति के लिए निपुणता व अफुरता से ध्यान स्थित रहना सहज होता है और मन को परमेश्वर में लीन रखना कोई कठिन कार्य नहीं रहता।

याद रखो इन्सानियत में बने रहने हेतु इन नियमों का सुदृढ़ता से पालन करने वाला श्वेत वस्त्रधारी आत्मज्ञानी, सभ्य, सज्जन, विनम्र, आज्ञाकारी, अच्छे स्वभाव और आचरण वाला सच्चरित्रता का प्रतीक होता है। ऐसा निर्विकारी सजन ही कुलीन यानि ऊँचे कुल/वंश का कहलाता है क्योंकि उस सजन के मन में परस्पर सम्बन्धों का लिहाज़, स्नेह व सहानुभूति की भावना होती है और वह सत्यनिष्ठ, स्पष्ट व शिष्ट भाषा बोलने वाला होता है। यह उसके सुसंस्कृत, संस्कारी व शिष्टाचारी होने की पहचान होती है। ऐसा निष्कामी व परोपकार प्रवृत्ति वाला व्यक्ति ही अपने व्यावहारिक जीवन में समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार सजनतापूर्वक मानव-धर्म के नियमों का कड़ाई से पालन करता हुआ सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक दृष्टि से पर्याप्त विकसित अवस्था को प्राप्त कर समाज के लिए उपयोगी सिद्ध होता है।

इस सन्दर्भ में सबको स्पष्ट करना चाहते हैं कि सजन श्री शहनशाह महाबीर जी के द्वारे पर होने के नाते हम सब ऊँचे वंश के वंशज हैं। अतः उस ऊँचे वंश की मर्यादा में बने रहने में ही हमारी शोभा व हित निहित है। किसी भी परिस्थिति व कारण से उस मर्यादा का टूटना अन्तर्द्वन्द्व व तनाव का कारण बन सकता है जिसकी पीड़ा दुःखदाई हो सकती है। अतः इतने ऊँचे कुल से सम्बन्ध रखने के कारण

हमारे लिए बनता है कि हम अपने कुल के ही अनुरूप इन्सानियत वाला आचार-विचार अपना कर तद्नुकूल ही सबसे व्यवहार करें।

आप ही बताएं कि क्या ऐसा पुरुषार्थ दिखाने में सक्षम बनना हमारे लिए उचित नहीं है?

उचित है।

तो याद रखो अब हमारी रैहणी-बैहणी व व्यवहार से इन्सानियत का ही दर्शन होना चाहिए। इस हेतु नीचता के स्वभाव छोड़ कर अपना भाव-स्वभाव रूपी ताना-बाना अब निर्मल बनाने का निश्चय लो।

आओ अब गुलानारी रंग के दुपट्टे व सफेद रंग के वस्त्रों की जीवन उपयोगी महत्ता को समझते हुए हम भी इन रंगों के प्रभाव से अपनी-अपनी अन्दरूनी व बैहरूनी वृत्तियों का आत्मनिरीक्षण करें और समझें कि क्या हमारा ख़्याल स्वच्छ है, भाव निर्मल है, बुद्धि प्रकाशित है? क्या हम परस्पर निष्काम भाव से विचर पाते हैं?

मौन

अगर इन सबका उत्तर न में है तो अपनी-अपनी अन्दरूनी व बैहरूनी वृत्तियों की आत्मनिरीक्षण द्वारा सफ़ाई कर खुद पर इस तरह से नियन्त्रण रखें कि हमारी बुद्धि सदा विवेकशील बनी रहे और सत्य धारणा ही हमारे वर्त्त-वर्त्ताव की धरोहर हो। इस प्रकार असत्य और अज्ञान से विमुक्त हम सदैव अपने अन्तःकरण की पारदर्शिता व निष्कलंकता को सम अवस्था में बनाए रखने में सक्षम हों और इस प्रकार शास्त्रविहित कर्म सहजता से करने का पुरुषार्थ दिखा सत्यनिष्ठ व धर्मपरायण व्यक्ति कहलाएं। अन्त में याद रखो कि यही सुकर्म की राह पर अग्रसर रह आत्मउद्धार करने का एकमात्र साधन है।

अन्ततः यदि हम अपना आत्म उद्धार करना चाहते हैं तो हमें इस पोशाक को पहनने की महत्ता को समझ उसे जीवन में उतारना

होगा। हम उस ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि सच्चेपातशाह जी इस कार्य सिद्धि में सफलता प्रदान करने हेतु सबको सुमति बख़्शें। इसी सन्दर्भ में आओ अब अच्छा इन्सान बनने हेतु खड़े होकर सारे शुभ संकल्प लें।

शुभ-संकल्प

आओ 26 जनवरी के शुभ दिवस
समभाव-समदृष्टि के सबक के अनुसार
सजन-भाव अपनाएं और
नेक बन एक बनने का संकल्प लें।

इस हेतु आत्मिक ज्ञान के सूक्ष्मतया अमल द्वारा
अपनी वृत्ति, स्मृति व बुद्धि को निर्मल बना
अपने भाव-स्वभावों का ताना-बाना निर्मल बना लें
और उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल कहलाएं।

इस प्रकार सन्तोषी व धैर्यवान बन
सच्चाई-धर्म के रास्ते पर निर्भयता से अग्रसर हो जाएं
तथा सदाचारी बन मानव-धर्म अनुसार
एक दूसरे से आत्मीयता का व्यवहार करते हुए
निष्काम-भाव से परोपकार कमाएं और इस यत्न द्वारा
मानव जाति को आज की नैतिक पतन अवस्था से उबार लें।

याद रखो ऐसा बनने हेतु एकमात्र साधन है आत्मसंयम,
इसके प्रयोग द्वारा निज स्वरूप में बने रह निज बल से
इस संकल्प की सिद्धि सहजता से हो सकती है।

अब सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ की वाणी ध्यान से सुनोः-

1 महाबीर जी के मुख के शब्द

शब्दः– श्री साजन जी इक बात बताऊं

रखनी है लुका के रखनी है छुपा के।

साजन जी सुखरासी, जगत निवासी, सुन लौ बात हमारी।
हम है श्री राम पुजारी, हम हैं श्री राम पुजारी।
ओ ओ ओ ओ हो हो आ आ आ आ।
साजन जी सुखरासी, जगत निवासी, सुन लौ बात हमारी।
हम है श्री राम पुजारी, हम हैं श्री राम पुजारी।
जेहड़े हिन श्री राम पुजारी, दुःख दूर हो गये ओन्हां दे।

मगरों लाहवे उमरां दी बीमारी अजब है खेल खिलाड़ी,
हम है श्री राम पुजारी।
सतवस्तु दी पोशाक पहन लो, ओ पोशाक जगत तो न्यारी।
पोशाक ओ कोई विरला पावे जैं चरणों में उमर गुज़ारी,
हम हैं श्री राम पुजारी।
सन्तोष क्षमा दी पोशाक पहन लो,
ओ पोशाक श्री राम मतवाली।
पोशाक कोई विरला पावे, रोशनी फैले जगत ते सारी,
हम है श्री राम पुजारी।
पोशाक पहन लो पहनन वाले जैंदी हर बात निराली।
धुरों पोशाक आवे साजन जी, हीरे लालां दी चमक है सारी,
हम है श्री राम पुजारी।
सर्गुण विच पोशाक पहनावे पोशाक ओ चमक दिखावे।
रूप रंग न रेखा राहवे खुश होवे जगत भण्डारी हम हैं श्री राम पुजारी।

दोहाः- ओ पोशाक ख़रीद करे कोई, कोई विरला ख़रीदवान होवे।
हीरे जवाहर रत्न लाल चमके, जेहड़ा पावे ओ मालो माल होवे।

2 महाबीर जी के मुख के शब्द

दोहाः- श्री साजन जी चलो चलिये दरबार।
चरणों ऊपर सीस धरो श्री राम जी दा लवो प्यार।।

श्री साजन आया ए अक्खां तक ने रहियां गोदी विच चाया ए।

गोदी दे विच चाके साजन जी नूं करन प्यार।।
शक्ति ते लक्ष्मी देखन आईयाँ पहन के सिंगार।
प्यार करन रघुराई कैसी सभा ओ सुहाई है, सभा ओ सुहाई।।
प्यार करन ओ अति घना प्यार करन ज़रूर।
साजन जी ओ सारे जगत ते हैन कैसे मशहूर।
जो प्यार साजन जी ने पाया कैसा ओ हर्षाया है कैसा ओ हर्षाया।।
साजन जी नू देख के कैसी उठे उमंग।
सिंगार आप दा देख के पवे कलेजे ठण्ड।
साजन जी दी रौशनी हर जगह जरूर ए, कैसा मन भाया।।
चलो चलिए दरबार दे अन्दर शक्ति ते लक्ष्मी संग।
हकूमत दी कुर्सी ते बैठ गये कैसे हो रहे रंग।
कैसा है दीवान हेठां सभा लगे महान श्री राम हर्षाया।।

श्री रामचन्द्र जी कह रहे हैं
सुन लौ सुनने वालियो इक बात बतायें।
ओ बात है हीरा अनमोल हम तुम्हें सुनायें।।
महाबीर जी इक सुगात बक्षण।
नाले चानणा बख़्शण साजन जी नूं पोशाक बख़्शण।
सारी बख़्श दित्ती हिने राजधानी जैंदा आद न अन्त हिसाब बख़्शण।।

ध्वनिः- पोशाक दी महिमा सजनों हर जगह ओ जांवदी।
पोशाक है निराली कैसी रंगत ओ दिखांवदी।

अन्ततः सजनों अब सबने पूरी तैयारी के साथ पूरे चार दिनों के लिए चैत्र के यज्ञ पर आना है। इस नीति के प्रति कमज़ोर पड़ कर अपना यज्ञ खण्डित नहीं करना। अगले सप्ताह से ध्यान कक्ष में क्रमशः पौने दो महीने के पाठ की महत्ता, आत्मसंयम व गृहस्थ-आश्रम के विषय में समझाया जाएगा। जान लो कि आत्म उन्नति के लिए गदे का यज्ञ, पौने दो महीने का पाठ, अखण्ड हवन व चैत्र का यज्ञ एक कड़ी में बँधे हुए हैं। अतः सबने इनसे सम्बन्धित नीति-नियमों को सही ढंग से निभाना है। मान-अपमान, लोक-लाज व किसी के पंजे में आकर इन नीति नियमों को नहीं तोड़ना। इस तरफ़ से मज़बूती

लेनी है। अब कोई इनकी पालना में कमज़ोर न पड़े अन्यथा जो ड्यूटी मिली हुई है वह छूट जाएगी। अतः अपनी ड्यूटी के प्रति प्रतिबद्ध हो जाओ। इस हेतु सबको समयानुसार ही जना दो कि ड्यूटी की पालना के प्रति ये मेरे नीति-नियम हैं और मैं किसी भी कारणवश इन नीति-नियमों की पालना में कमज़ोर नहीं पड़ सकता अर्थात् अपनी ड्यूटी से विचलित नहीं हो सकता। ऐसा करने में घबराओ व शर्माओ नहीं।

जान लो कि इससे सबको एक शुभ सन्देश जाता है और ड्यूटी पर आने वाले नए युवा सजनों को ड्यूटी के प्रति सजग बने रहने की प्रेरणा मिलती है। अन्यथा वे भी हमको देखकर पथभ्रष्ट हो जाते हैं। अब सबने इन नीतियों की पालना करनी हैं। यह सोग मुक्त मानसिकता में मज़बूत बने रहने के लिए अति आवश्यक बात है। अतः सोग हो भी तो सोग मुक्त बने रहने की हिम्मत दिखाओ। इस हेतु जीवन में कुछ भी अच्छा हो या बुरा, उस हर्ष-सोग में मत उलझो। याद रखो यदि उस सोग में आपकी मानसिकता उलझ गई तो सारा वातावरण ख़राब हो जाएगा क्योंकि आप वैसी ही दुःख भरी बातचीत करने लगोगे और इसके विपरीत यदि आप सोग में भी सोग मुक्त बने रहे तो इस प्रयत्न से स्वतः ही सोग से मुक्ति प्राप्त हो जाएगी।

इस सन्दर्भ में यह भी याद रखो कि विभिन्न युग पुरुष जब जीवन की हर अवस्था में सोग मुक्त बने रहने का पराक्रम दिखा सकते हैं तो हमारे लिए भी ऐसा पराक्रम दिखाना कोई कठिन कार्य नहीं है। अतः उनके जीवन से प्रेरणा लें, आओ सब सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ की तरफ़ हाथ कर सोग मुक्त बने रहने का निश्चय लेंः-

हम जीवन में कुछ भी घटित होने पर,
सदा सोग मुक्त मानसिकता में बने रहेंगे।

हम जीवन में कुछ भी घटित होने पर,
सदा सोग मुक्त मानसिकता में बने रहेंगे।

हम जीवन में कुछ भी घटित होने पर,
सदा सोग मुक्त मानसिकता में बने रहेंगे।

याद रखो जो ऐसा कर दिखलाएगा वही वीर यानि बहादुर कहलाएगा। आओ अब सब इस हेतु उस ईश्वर से शान्ति-शक्ति माँगें:-

हमें शान्ति दो, हमें शक्ति दो
हमें शान्ति दो, हमें शक्ति दो
हमें शान्ति दो, हमें शक्ति दो
हमें शान्ति दो, हमें शक्ति दो
हमें शान्ति दो, हमें शक्ति दो
हमें शान्ति दो, हमें शक्ति दो
हमें शान्ति दो, हमें शक्ति दो

ध्यान दो जो इस शान्ति-शक्ति द्वारा जीवन की हर अवस्था यानि सुख-दुःख में अपने मन-मस्तिष्क की सम अवस्था बना लेगा वह ही जीव मुक्ति को पा जाएगा। हमारी ईश्वर से प्रार्थना है कि इस कार्य-सिद्धि हेतु हम सबको बल-बुद्धि प्रदान करें और इस प्रकार सब विजयी हों।

अन्ततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इन्सान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

पौने दो महीने के पाठ की महत्ता

जैसा कि सब सजनों को विदित ही है कि दिनाँक 18 दिसम्बर से 26 जनवरी तक गदे का महायज्ञ चल रहा था। आशा है यज्ञ की नीति अनुसार सभी सजनों ने इस दौरान बताई गई युक्ति व सबक अनुसार आत्मनिरीक्षण कर, आत्मनियन्त्रण द्वारा, आत्मसुधार करने का भरपूर यत्न किया होगा और इस तरह अन्दरूनी व बैहरूनी वृत्ति में समता व एकता वाला भाव अपनाकर एक चाल अपना ली होगी। सजनों अब सब ने इसी यत्न में मज़बूत रहना है। हमारे मन-वचन-कर्म में किंचित मात्र भी भिन्न-भेद उत्पन्न न हो यानि मन-मस्तिष्क सदा एक रस व स्पष्ट बना रहे और हम सब के प्रति सजन-भाव अपनाते हुए परउपकारी प्रवृत्ति अपनाएँ। यही इन चालीस दिन की नीति-रीति को पढ़-समझ कर जीवन में वर्त-वर्ताव में लाने का सही तरीका है।

याद रखो जो भी इस तरह युक्तिसंगत यत्न करके सफल हो जाता है वह अपने भाव-स्वभावों की सफ़ाई कर मानवता धर्म अनुरूप इस जगत में सहजता से विचर सकता है और अपने आचार-विचार व व्यवहार द्वारा इन्सानियत का दर्शन करा सकता है। फिर वह न किसी का बुरा सोचता है न बुरा बोलता है और न ही बुरा करता है क्योंकि उसके मन से बुराई व वैर-भाव का समूलतः नाश हो जाता है और मन-चित्त शान्त हो जाता है। याद रखो जिस का मन शान्त हो जाता है उसके आस-पास का वातावरण भी शान्त हो जाता है। अतः सजनों इन्सानियत के भाव-स्वभाव को धारे रखने की क्षमता को और सुदृढ़ करने हेतु सब ने कदम-कदम पर अपना आत्मनिरीक्षण करते रहना है ताकि अन्दर किंचित मात्र भी विघ्नकारी प्रवृत्ति या अन्तर्द्वन्द्व न रह जाए। इस सन्दर्भ में सजनों सब को पता है कि चालीसे के यज्ञ के दौरान अन्दर रही लेश मात्र कमी को भी दूर करने के लिए सच्चेपातशाह जी ने शाम को पाँच से साढ़े पाँच या साढ़े पाँच से छह बजे के मध्य किए जाने वाले पौने दो महीने के पाठ के रूप में हमें एक अनमोल दात बक्षी हुई है। इस दात का युक्तिसगंत प्रयोग करके हमारा दिल-दिमाग हर प्रकार के अन्तर्द्वन्द्व व तनाव से मुक्त हो मुकम्मल शान्त हो सकता है और हम अपनी सालाना परीक्षा यानि चैत्र के यज्ञ पर फ़र्स्ट का नतीजा सुना सकते हैं। सब की जानकारी के लिए एक बार पुनः इस नीति की युक्ति व महत्ता को सविस्तार स्पष्ट कर रहे हैं, ध्यान से सुनोः-

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार गदे के यज्ञ की नौमाही परीक्षा के दौरान भजन-बन्दगी में आई कमज़ोरी को दूर कर एक निगाह एक दृष्टि होने के लिए सब सजनों को चैत्र के यज्ञ से पहले अपने हृदय से हर प्रकार का अंतर्द्वन्द्व समाप्त कर, मुकम्मल शान्ति स्थापित करने हेतु पौने दो महीने निम्नलिखित मन्त्र का जाप करना है:-

'श्री राम ओ रोम रोम में रम रिहा, हर जनचर में
जड़ प्रकाशे चेतन प्रकाशे
श्री राम ओ रोम रोम में रम रिहा, हर बनचर में
साडा है सजन राम-राम है कुल जहान□

इस मन्त्र का युक्ति अनुसार प्रत्येक नाम व अक्षर लिए हुए सजन ने शाम को पाँच और छः बजे के दरम्यान जहाँ भी हो यानि चाहे सत्संग में हो, दफ़्तर में हो, गाड़ी में हो, घर में हो या कहीं और हो, हृदय में बड़े प्रेम से जाप करना है। वचनानुसार आधा घण्टा इस मन्त्र के जाप की समाधि में हो जाना है। आधे घण्टे के पाठ की समाप्ति पर यह पढ़ना है:-

'मैं तूं जगत तूं आप ही आप हो
मेहर करो, मेहर करो, मेहर करो'

इस मन्त्र के भावार्थ को समझना है। इस मन्त्र के भावार्थ के अनुसार सर्व एकात्मा के भाव से युक्त होकर जनचर-बनचर, जड़-चेतन में सर्वव्यापक भगवान का अनुभव करते हुए सबके साथ मैत्रीपूर्ण यानि सजनतापूर्ण व्यवहार करना है।

सच्चेपातशाह जी के वचनानुसार जो सजन अफुर होकर इस मन्त्र के भावार्थ को समझते हुए एकात्म भाव से इस मन्त्र का जाप करेगा उस पर आने वाली विपत्ति टल जाएगी और सूली का कण्डा बन जाएगा अर्थात् भजन-बन्दगी की सजनों में जो कमी है वह कमज़ोरी इस मन्त्र द्वारा दूर हो जायेगी और कण्डा भी नहीं रहेगा। इस तरह एक जीव का पुरुषार्थ अपने सारे परिवार को बचा सकेगा।

सच्चेपातशाह जी का आदेश है कि इस मन्त्र द्वारा सब सजन अपनी कमज़ोरी दूर करके एक दृष्टि एक निगाह हो जावें ताकि सालानी परीक्षा तक कोई कमज़ोरी न रहे और सब सजन पास हों। समभाव-समदृष्टि द्वारा यह मन्त्र कमज़ोरी को दूर करके चक्षुओं को दिव्य रूप देखने की शक्ति प्रदान करेगा। अतः सबको अभी से चेतावनी है

कि एक निगाह एक दृष्टि हो जाओ। इस हेतु अब सजनों दिन-रात चैन न हो ताकि इस मन्त्र के जाप द्वारा इन चक्षुओं की कमज़ोरी दूर हो और चैत्र के यज्ञ पर हनुमान जी की करामात से जो प्रभु का सारा दरबार सभा में उतरेगा, दिव्य दृष्टि द्वारा हम उस छवि व अलौकिक दृश्य को देख सकें। इस तरह सजनों मर्यादा पर अटल रहते हुए इस मन्त्र के जाप द्वारा अपनी कमज़ोरियों को चैत्र के यज्ञ तक बिल्कुल दूर करके समभाव समदृष्टि में परिपक्व हो जाना है। याद रखो सजनों इस यत्न द्वारा जिस सजन की एक निगाह एक दृष्टि हो जाएगी वास्तव में वही आनन्द प्राप्त कर सकेगा।

इसी संदर्भ में सजनों सच्चेपातशाह जी हमें जागृति में लाने हेतु पुनः सजन अर्जुन का उदाहरण देकर समझा रहे हैं कि 'जब अर्जुन को नौमाही इम्तहान में श्री कृष्ण जी ने दिव्य रूप दिखाया तो वह घबरा गया यानि फेल हो गया फिर भगवान श्री कृष्ण जी ने उसे शक्ति प्रदान की जिससे वह परिपक्व हो गया। 'इसी प्रकार सब सजनो को दाता जी ने गदे के यज्ञ पर यह मन्त्र बख़्शा है। इस मन्त्र के द्वारा हमारे नेत्रों की कमज़ोरी दूर हो जायेगी। यह शक्ति हमको बल देगी जिससे उस तेज को इन नेत्रों द्वारा हम सम्भाल सकेंगे और हमारे चक्षु उस छवि को देखकर बन्द नहीं होंगे अर्थात् कमज़ोरी नहीं दिखावेंगे। अतः सजनों समभाव-समदृष्टि में परिपक्व हो जाओ और उस अलौकिक दृश्य को देखो। याद रखो जो सजन अब भी हार खा गया तो उसको पछतावे के अलावा और कुछ नहीं मिलेगा।

अंततः सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसारः-

झोला आना जे आना जे ओ ज़बरदस्त।
जेहड़ा मन्त्र महाराज जी ने बख़्शया है।
ओ मन्त्र प्रेम नाल सजनों चलाना होसी।
सूली दा फिर किवें न होवे कण्डा।
अपना करो सजनों बचाव।
फिर कईयाँ जीवां नूं बचाना होसी।

इस प्रकार सजनों महाराज जी कदम-कदम पर हमारी रक्षा कर रहे हैं। हमें चाहिए कि हम उनके वचन प्रवान करें और जो आने वाली विपत्ति है जिसकी पहले ही वे हमें सूचना दे रहे हैं, इस मन्त्र का पूर्ण रूप से जाप करके अपना बचाव करें। याद रखो यह मन्त्र हमको आने वाले झोले से ही नहीं बल्कि जन्म-मरण के झोले से भी सदा के लिए मुक्ति प्रदान करेगा और हम सतवस्तु की जनता बन कर सतवस्तु का नज़ारा देखेंगे।

अंत में याद रखो कि जैसे चरित्रवान इन्सान बनाने हेतु बच्चे को पहले प्यार से समझाया जाता है, अगर वह न समझे तो मार से समझाया जाता है, तीसरी सूरत में भय देकर समझाया जाता है ताकि वह अपने हित की बात को समझे और उसी प्रकार खुद को ढालने के प्रति दृढ़ संकल्प हो जाए। इसी प्रकार पहले आप सजनों को भी प्यार से समझाया गया, अब झोले का भय देकर कुरस्ते से हटा निष्काम रास्ते पर लाने का यत्न हो रहा है ताकि किसी को भी कर्म फल की मार न भुगतनी पड़े। इसलिए हम सब के लिए बनता है कि इस शुभ कार्य को समर्पण भाव से करने का निश्चय लें और सफलता प्राप्त करें।

इस सन्दर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें कह रहा हैः-

'अच्छी ख़रीद करो इन्सानों, मन्दी ख़रीद न करनी जे।
जे मन्दी ख़रीद कर बैठे हो, तां नतीजा बुरा निकलना जे।

अतः ख़रीद अच्छी करो इन्सानों, रोवन दा दिन कदे वी न आवे।

अर्थात् जो ख़रीद कर चुके हो उसका फल तो कर्म फल की मार के रूप में भुगतना ही पड़ेगा परन्तु उससे सबक ले आगे से अब सावधान हो जाओ और इस मन्त्र के जाप द्वारा अपने मन को मायावी विकृतियों से खाली कर निज आनन्द स्वरूप से भरपूर कर लो। इस संदर्भ में सजनों याद रखो कि परिस्थिति अनुसार जीवन में हर्ष भी आएगा यानि सुख भी आएगा और शोक यानि दुःख भी

आएगा परन्तु हमें हर परिस्थिति में अपनी मानसिकता को हर्ष-शोक रहित रखने का दृढ़ संकल्प लेना है। इस तरह दुःख-क्लेश सहते हुए यानि आत्मसंयम रखते हुए उससे उबरना है। याद रखो इसी यत्न से हमारी बुद्धि जाग्रत अवस्था में रह सम अवस्था को प्राप्त कर सकती है और हम अपनी विवेक शक्ति का इस्तेमाल करते हुए सच्चाई-धर्म के रास्ते पर चल सकते हैं।

इस सारी बातचीत से सजनों स्पष्ट होता है कि अपने संकल्प को स्वच्छ, जिह्वा को स्वतन्त्र व दृष्टि को कंचन करने हेतु जिस चालीस दिन के विधान को अपनाकर सजनों ने अपने भाव-स्वभाव को सजनता व समता अनुरूप ढालने का प्रयत्न किया उनके इसी प्रयत्न को यानि आचार-व्यवहार को सुदृढ़ता प्रदान करने हेतु कड़ी के रूप में यह पौने दो महीने का पाठ अफुरता से करने का विधान रखा गया है। याद रखो सजनों जो इस रहस्य को समझ कर तद्नुरूप ढलते हुए मज़बूत हो जाता है व घर सतयुग बना लेता है, वह दिव्य दृष्टि का सबक प्राप्त कर लेता है। दिव्य दृष्टि होने के उपरान्त फिर आत्मबोध करना उसके लिए कोई कठिन कार्य नहीं रहता। तात्पर्य यह है कि जिसका अंतःकरण निर्मल व मन शान्त हो गया उसके लिए भक्ति-शक्ति को धारण कर जीवन के प्रमुख लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करना सुगम हो जाता है। मन की शांति आत्मतुष्टि का प्रतीक होती है। आत्मतुष्ट व्यक्ति मुकम्मल संतोषी होता है। संतोषी ही धीर यानि धैर्यवान होता है और धैर्यवान आत्मविश्वासी होता है। याद रखो एक आत्मविश्वासी ही रोने-झुखने पर फ़तह पा स्वतन्त्रता पूर्वक सच्चाई-धर्म के रास्ते पर बने रह आनन्दमय जीवन व्यतीत कर सकता है।

अतः सजनों अब सबने सम्भलना है और मानव धर्म अनुरूप सजनता पूर्ण जीवन जीते हुए अपना नैतिक, व्यक्तिगत, पारिवारिक व सामाजिक रूप से सुधार करना है। इस सन्दर्भ में सबने अपने भाव-स्वभावों को सतयुग अनुसार मज़बूती प्रदान करने हेतु यानि अपना-अपना घर सतयुग बनाने हेतु गहराई से आत्मनिरीक्षण

करना है और किसी के भी भाव-स्वभाव में किसी प्रकार की भी विकृति घर न कर पाए उसके लिए आत्मसंयम रखना होगा। आत्मसंयम क्या होता है और खुद पर उसके विधिवत् नियन्त्रण द्वारा हम यथार्थ में एक अच्छे व नेक इन्सान के रुप में कैसे बने रह सकते हैं अगले सप्ताह से उस पर बात होगी। सभी आत्मसंयम के सबक को ध्यान से सुनना व समझना ताकि आत्मसंयम की ताकत से गृहस्थाश्रम में सभी एकता व एक अवस्था में बने रह शान्तिपूर्वक सत्यनिष्ठा व धर्मपरायणता से आनन्दमय जीवन जीने के योग्य बन सकें। याद रखो कि सपरिवार परमार्थ की राह चलते हुए भौतिक व आध्यात्मिक उन्नति कर यह अपना जीवन लक्ष्य व यश-कीर्ति प्राप्त करने की बात है।

इसी सन्दर्भ में सभी सजनों की सूचनार्थ इन्सान को परोपकारी प्रवृत्ति में ढालने के लिए माह माघ यानि दिनाँक 26 फरवरी 2015 को 'अखण्ड हवन" का आयोजन किया जाएगा। इस दिन सभा के प्रत्येक सजन ने धर्मार्थ हेतु अपनी हैसियत यानि क्षमता व सामर्थ्य अनुसार मालिक के प्यारों अर्थात् समाज के जरूरतमन्द सजनों की सहायतार्थ अपनी आय में से कुछ अवश्य निकालना है ताकि व्यक्तिगत स्वार्थ भावना से उबर सब निष्काम भाव से सर्व जनहितकारी भी बनें।

इसी तरह प्रतिवर्ष की भान्ति इस वर्ष भी माह चैत्र, राम नवमी के शुभ अवसर पर यानि दिनाँक 24 मार्च से दिनाँक 28 मार्च 2015 तक 'राम नवमी' के यज्ञ/वार्षिक-उत्सव' का आयोजन किया जाएगा। यह आयोजन चार दिन तक चलेगा। सबकी जानकारी हेतु इस आयोजन का मुख्य उद्देश्य प्रत्येक सजन को आत्मनिरीक्षण द्वारा गत वर्ष में की गयी प्रगति के विषय में सही तरीके से आंकलन करा, आत्मसंयम अपनाने के लिए प्रेरित करना है ताकि वह अपना जीवन बनाने हेतु आत्मसुधार कर जीवन के वास्तविक लक्ष्य को प्राप्त कर सके।

अन्ततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इन्सान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

अभी तक हमने ब्रह्मचर्य आश्रम के अंतर्गत धार्मिक शिष्यवृत्ति, वेदाध्ययन यानि आत्मिक ज्ञान प्राप्ति व सात्विक आहार के सेवन के महत्त्व को समझा। इसी युक्ति द्वारा ही ब्रह्म के साक्षात्कार की साधना का विधान है। यह साधना निर्विघ्न फलीभूत हो उसके लिए आत्मसंयम के पालन के प्रति सदैव जाग्रत अवस्था में बने रहना आवश्यक है ताकि हम ब्रह्मचर्य व्यवस्था में सुदृढ़ता से बने रह निर्भयता व निपुणता से गृहस्थ-आश्रम में प्रवेश करने की योग्यता प्राप्त कर लें। यहाँ फिर दोहरा रहे हैं कि गृहस्थ होने से पहले का अविवाहित जीवन वैदिक आश्रम-व्यवस्था में ब्रह्मचर्य आश्रम कहलाता है। जो व्यक्ति अपने जीवन में ब्रह्मचर्य के नियमों की पालना कुशलता से करने में सक्षम होता है वही ब्रह्म होने की अवस्था यानि 'विचार ईश्वर है अपना आप' के भाव को आत्मसंयम द्वारा जीवन में यथा उतार सफलता व शांति को प्राप्त कर सकता

है। याद रखो ब्रह्मज्ञानी ही श्रेष्ठता का प्रतीक होता है व श्रेष्ठ समाज के निर्माण में योगदान देने में सक्षम होता है क्योंकि वह कान्तियुक्त व्यक्ति आध्यात्मिक शक्ति के आधार पर इतना पराक्रमी, प्रतापी व प्रभावशाली हो जाता है कि उसके आचार-व्यवहार द्वारा अन्य सभी को उसके परमात्म स्वरूप की झलक प्राप्त होती है। कहने का आशय यह है कि वही अपने असलियत स्वरूप में स्थित बना रह आत्मज्ञान द्वारा आत्मबोध कर परस्पर आत्मीय व्यवहार दर्शा सकता है। इस प्रकार वही ब्रह्म व जगत सम्बन्धी सत्य जानने वाला, गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने से पहले, निज पर विधिवत् आत्मसंयम रूपी अंकुश रखने में प्रवीणता प्राप्त करना आवश्यक समझता है ताकि वह भूलकर भी किसी प्रभाव के कारण गृहस्थ आश्रम में ब्रह्म भाव के विपरीत आचार-व्यवहार अपना द्वि-द्वेष जैसे विकारी भाव न अपना बैठे। हमसे भी ऐसी भूल न हो इसके लिए आओ अब आत्मज्ञान को यथा आत्मसात् करने व संयमित जीवन जीना सुनिश्चित करने हेतु आत्मसंयम को सविस्तार समझते हैं:-

आओ जानें और जनाएं,
संयम क्या है और संयम से क्या होता है?

संयम तो है वश में रखने की क्रिया,
हाँ हाँ हाँ हाँ,
हाँ जी बुरी बातों से बचने की क्रिया।
सच तो यह है संयम ही है,
मानव को मानवता प्रदान करने की क्रिया।।

संयम तो ऐसी शक्ति है,
जो मन को वश में रख सकती है।
जितनी भी चित्त-वृत्तियाँ हैं,
सब का नाश भी कर सकती है।।

इन्द्रियनिग्रह करने हेतु,
संयम ही काम आता है।
धारणा, ध्यान समाधि का साधन,
संयम ही कहलाता है।।

संयम में रहने वाले सजन का,
अंतःकरण शुद्ध हो जाता है।
संकल्प-विकल्प नहीं सताते,
दृढ़ निश्चयी हो जाता है।।

निर्मल हो जाती है बुद्धि,
उच्च हो जाता है ख्याल।
फिर निर्मल वाणी होते ही,
सबसे पाता है वह प्यार।।

संयमित प्रयत्न ही योग साधना में,
सफलता की कुंजी है।
संयमित आचार, विचार, व्यवहार ही तो,
मानवता की पूंजी है।।

सुनो सुनो जी, सुनो सुनो संयम अपनाने से क्या होगा ?

स्वतन्त्र हमारी बुद्धि होगी,
स्वतन्त्र ही ख्याल।
स्वतन्त्र हमारी जिह्वा होगी,
स्वतन्त्र ही विचार।।

मानव मर्यादा का पालन करने हेतु
खुद के शासक खुद ही होंगे
खुद ही होंगे, खुद ही होंगे
खुद के शासक खुद ही होंगे।।

श्रेष्ठ मानव की पहचान
वाह भई वाह, वाह भई वाह
निर्मल बुद्धि स्वच्छ ख्याल
क्या है कमाल, क्या है कमाल।।

सजनता का प्रतीक वही है
हाँ जी हाँ, हाँ जी हाँ
हर सजन का मीत वही है
हाँ जी हाँ, हाँ जी हाँ।।

अभी तक आपने जो जाना उससे अवश्य ही आपको एक मानव के जीवन में संयम की महत्ता समझ में आ गई होगी और यह भी समझ में आ गया होगा कि संयम को अपनाने के लिए आत्मनिरीक्षण करना यानि अपने भावों की सकारात्मकता व नकारात्मकता के विषय में परख कर, आत्मनियन्त्रण द्वारा अपने दोषों पर विजय पाना अति आवश्यक है। याद रखो इसी तरह आत्मसुधार व आत्मोद्धार हो सकता है और मानव ख़ुद का शासक ख़ुद बन सकता है।

आत्मसंयम शब्द दो शब्दों के योग से बना है यथा आत्म + संयम।

यहाँ आत्म का अर्थ है आत्मा से सम्बन्धित अर्थात् स्वयं का और संयम का अर्थ है ख़ुद को ख़ुद के वश में रखना यानि सम्यक् या हम कह सकते हैं कि आत्मबल द्वारा निःस्वार्थ भाव से ख़ुद पर उचित रूप से नियन्त्रण रखना ताकि हमारे मन-मस्तिष्क की व शारीरिक शुद्धता एकरस बनी रहे व उस अनुकूल हृदयगत वातावरण में हम यथार्थ रूप से व स्पष्टता से जीवन जी सकें। इसलिए हमारे लिए बनता है कि आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त कर अपने स्वरूप व बल दोनों को पूर्णतया जानें और आत्मीयता यानि अपनेपन के भाव से हर प्राणी के प्रति परमात्म-दृष्टि रखें। यह शुद्ध चरित्र यानि सदाचारी बनने हेतु नितान्त आवश्यक है।

याद रखो कि हमें इस क्रिया के कुशलतम प्रयोग द्वारा ब्रह्मनिष्ठ बनना यानि जगत में विचरते हुए अपना ध्यान सदा ब्रह्म में लीन रखना सुनिश्चित करना है ताकि हमारे हृदय का वातावरण सदैव निर्मलता को प्राप्त रहे और हम जीवन में जो भी करें वह निष्काम भाव से यानि फल की इच्छा से रहित होकर परमात्मा के प्रति समर्पण भाव से करें। तभी हम सर्वव्यापक ब्रह्मशक्ति का आभास कर सदैव अटल सत्य पर स्थिर बने रह लौकिक वस्तुओं के उपभोग आदि से प्राप्त दुःख-सुख की अपेक्षा अनन्त आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि हम भौतिक वस्तुओं के उपभोग द्वारा दुःख-सुख या हर्ष-शोक में फँसे रहेंगे तो हमारा मन-मस्तिष्क कदाचित् संतुलित अवस्था को यानि सम अवस्था को धारण नहीं कर पाएगा। इसके विपरीत आत्मसंयम द्वारा सर्वव्यापक भगवान का आभास कर आत्मभाव अपनाने पर ही मन-मस्तिष्क शान्त हो सम अवस्था को प्राप्त हो पाएगा।

इस सन्दर्भ में हमें यह भी याद रखना है कि संयम लक्ष्य नहीं, साधन है, मन को बुरे या ग़लत कामों की ओर जाने से रोकने का ताकि मन की एकाग्रता भंग न हो। इससे चित्त उस अवस्था को प्राप्त होता है जिसमें बाह्य वृत्तियों का निरोध होने से वह किसी विषय से तन्मय हो जाता है। इस स्थिरचित्त अवस्था में मन में चंचलता व उग्रता उत्पन्न नहीं होती और हम विवेकशक्ति द्वारा सत्य-असत्य की परख करने के योग्य बन ध्यान से केवल सत्य धारणा सुनिश्चित कर सकते हैं। इसलिए हम कह सकते हैं कि संयम प्राणियों और इन्द्रियों के विषयों में अशुभ प्रवृत्ति का त्याग करने की शक्ति है तथा स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक भोजन, कार्यों व बातों से अलग रहने या परहेज़ करने की बात है। इसके अतिरिक्त संयम की शक्ति द्वारा व्यवहार में अनुचित बातों से स्वयं को रोका जा सकता है। संयम ही एक व्यक्ति के लिए क्रोध में न आकर शान्त रहने का बल है। आत्मसंयम द्वारा ही हम अपनी चित्तवृत्तियों का निग्रह या निरोध कर जितेन्द्रिय बन सकते हैं एवं आत्मतुष्टि का अनुभव कर सकते हैं।

हम कह सकते हैं कि अगर हम सांसारिक बंधनों यानि दोषों में फँस रोगों, कर्मभोगों, भर्त्सना, व्यभिचार, पराजय व विनाश से बच, जीवन में विजयी होना चाहते हैं तो हमें स्वच्छन्द प्रवृत्ति यानि मनमत का संयम शक्ति द्वारा दमन करना सुनिश्चित करना होगा। यहाँ स्वच्छन्द प्रवृत्ति से तात्पर्य मनमत के कारण अन्दर उठने वाले संकल्प-विकल्पों, वाद-विवाद व तर्क-वितर्क-कुतर्क के दमन से है। याद रखो इन्हीं के कारण आत्मज्ञान को सुनने-समझने के बावजूद उसे व्यवहार में लाने की दिलचस्पी हमारे अन्दर नहीं पनपती और सत्य ज्ञान धारणा में विघ्न उत्पन्न होता है। यही हमारी पराजय का कारण है। अतः शारीरिक, मानसिक व आत्मिक स्वस्थता के लिए संयम पूर्वक सात्विक आहार और सात्विक ज्ञान धारणा के प्रति सचेत रहना अति अनिवार्य है क्योंकि इसकी विपरीतता वाद-विवाद में फँसने व पराजय या अपमान का हेतु बनती है। ऐसा किसी के साथ न हो इस हेतु जान लो कि यह मात्र आत्मसंयम के प्रतिबन्ध द्वारा ही सम्भव है।

याद रखो आत्मसंयमी यानि अपनी इन्द्रियों और मन को वश में रखने वाला व्यक्ति ही आत्मबोध द्वारा अपनी योग्यता और शक्ति पर दृढ़ विश्वास रखते हुए अपना सुधार कर ख़ुद पर ख़ुद शासन करने की योग्यता प्राप्त कर सकता है और अपने निज यथार्थ स्वरूप को विकृतियों से बचाए रख सकता है।

अतः हमें आज की परिस्थितियों व अनैतिक आचार-व्यवहार से उबरने के लिए अपने व्यवहार, प्रवृत्तियों, योग्यताओं-अयोग्यताओं व अभिप्रेरणाओं आदि को स्वयं ही आत्मविश्लेषण द्वारा समझने का प्रयत्न करना होगा व इस प्रकार पाई गई कमजोरियों पर आत्मनियंत्रण रखते हुए, आत्मसुधार कर खुद पर पकड़ मजबूत करनी होगी ताकि हम अच्छे स्वभावों में ढलें और ब्रह्म के साक्षात्कार से मिलने वाला आत्मिक सुख व आनन्द प्राप्त कर सकें।

याद रखो आत्मसंयम अपनाकर इन्सानियत यानि मानवता में बने रहना अति आवश्यक है। यही हमारा लक्ष्य है। इसी लक्ष्य प्राप्ति से

ही एकता व शांति पनप सकती है, अन्यथा आगे बढ़ना कठिन हो जाएगा। अतः इस शुभ कार्य में बाधक मत बनो यानि तर्क-वितर्क करना बंद कर दो और सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ की वाणी के प्रति श्रद्धा व विश्वास रखते हुए, ईश्वरीय हुक्म को मान यथा अमल में लाना आरम्भ कर दो। अपने हित के लिए व सबके हित के लिए हमारी यह विनती स्वीकार लो। याद रखो इसी हुक्म पालना में ही हम मानवों की आन-बान व शान है और यही हकीकत में मानव होने की पहचान है। हम पुनः कह रहे है कि संयमित जीवन जीना आरम्भ कर खुद को, परिवार को व कुल समाज को नैतिक पतनता की गर्त में जाने से बचा लो। अंततः संयमित जीवन जीने के लिए, ध्यान दोः-

सम्भलना है, सम्भालना है,
खुद को, परिवार को और समाज को -
संयम द्वारा हाँ संयम द्वारा।

आओ हम सब मिलकर संयम अपनाएं,
सब रोगों की एक है औषधि हम सब संयम अपनाएं।

आहार-विहार के दोषों से, सब रोग निकट हैं आते,
दुष्कर्मों के फलस्वरूप हम स्वयं हैं पीड़ा पाते।

दैहिक, दैविक, भौतिक तापों से हम मुक्ति पाएं,
जन-जन की पीड़ा को हर सुख और शान्ति लाएं।

संयम द्वारा ही हम मन को वश में रख सकते,
इन्द्रिय निग्रह करके बुरी बातों से बच सकते हैं।

संयम द्वारा हो सकती है अन्तःकरण की शुद्धि,
संयम अपनाने से ही निर्मल रहती है बुद्धि।

निष्काम भाव से सेवा कर हम धर्मपरायण बन जाएं,
जन-जन को आनन्दित कर हम पर उपकारी बन जाएं।

खानपान संयमित शब्द भी हों संयमित,
आचार भी हों संयमित विचार भी हों संयमित।

अपना प्रारब्ध हम स्वयं ही बनाएं।
अपना प्रारब्ध हम स्वयं ही बनाएं।

आओ संकल्प लें -
सम्भलना है, सम्भालना है।

ख़ुद को, परिवार को और समाज को –
संयम द्वारा, हाँ संयम द्वारा ।

स्पष्ट है कि अपनी प्रारब्ध सुखदाई बनाने हेतु हमें समय रहते ही खुद सम्भल कर अर्थात् अपने मन को वश में रखकर, परिवार को और समाज को सम्भालना होगा अर्थात् अपने पर, उपकार कर, परोपकार कमाने का पुरुषार्थ दिखाना होगा।

अन्ततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनाँक 15 फरवरी 2015 का सबक

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इन्सान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

अभी तक आत्मसंयम द्वारा एक अच्छा इन्सान बन निज उद्धार हेतु जो भी जाना उसको ध्यान में रखते हुए आओ सब मिलकर यह संकल्प लें:-

संयम हो अपना मज़बूत इतना,
किसी से न हो लेना या देना।
जो भी हमें इस जग से मिला है,
आओ वह सब जग को लौटा दें।।

न तन था ये अपना, न धन था ये अपना,
जिसमें हम सब लिपटे पड़े हैं।
हँसी आ रही है करनी पे अपनी,
करना था कुछ पर क्या कर रहे हैं।।

जीवन मिला था जीने की खातिर,
भ्रम जाल में फँस क्यों मर रहे हैं।
दुख-सुख की पीड़ा से हो कर के आतुर,
खुद ही खुद से क्यों डर रहे हैं।।

लेने की आदत ने लालच दिखाया,
लालच दिखा के मोह में फँसाया।
देंगे जो वापस तो संतोष होगा,
तभी तो यह मन ख़ामोश होगा।।

धैर्य अपना निर्विकार था रहना,
चित्त में आनन्द का एहसास था करना।
अधीरता ने है चंचलता में फँसाया,
रोना सिखाया झुखना सिखाया।।

यह तेरा है मेरा है जब तक करेंगे,
लड़ते रहेंगे, लड़ाते रहेंगे।
जितनी भी भावी, सन्तानें होंगी,
द्वि भाव की राह पर ही चलेंगी।।

इन्सानो अब तो होश में आओ,
संभलो सम्भालो सजन भाव अपनाओ।
सीखो सिखाओ संयम से रहना,
संयम में रह समभाव अपनाओ।।

संयम हो अपना मज़बूत इतना,
किसी से न हो लेना या देना।
जो भी हमें इस जग से मिला है,
अब तो वह सब जग को लौटा दें।।

न लगाव हो, न झुकाव हो,
ख्याल का, ओजी ख्याल का, दृश्यों की ओर।
मानवता के उत्थान हेतु,
मोड़ लो, मोड़ लो, मोड़ लो।।

ख्याल साजन जी की ओर,
श्री साजन की ओर, हाँ ईश्वर की ओर।
जी मोड़ लो ख्याल, श्री साजन की ओर,
श्री साजन की ओर, हाँ ईश्वर की ओर।।

अभी तक संयम के विषय में हमने जो भी जाना उससे स्पष्ट होता है कि संयम का स्वतः स्फूर्त (अपने आप उत्पन्न) फल है -व्यक्तित्व की पूर्णता। संयमित व्यक्ति आत्मनियंत्रण द्वारा प्रतिकूल परिस्थितियों में भी आत्मिक शक्ति और साहस के बल पर सफल होना जानता है। आत्मसंयम व नियमन उसे निश्चल बनाता है और चंचलता का अभाव शान्ति-शक्ति प्रदान करता है। शान्ति-शक्ति आत्मतुष्टि की आनन्ददायक अवस्था होती है और ऐसा धैर्यवान आनन्दमय व्यक्ति परोपकार की भावना से ओत-प्रोत हो निष्काम भाव से हर संभव प्रयत्न द्वारा दूसरों को भी सुखी व आनन्दमय बनाने की चेष्टा करता है। उसका यही प्रयत्न उसकी व्यक्तिगत गुणवत्ता में क्रमशः वृद्धि कर उसे अक्षय उन्नति व समृद्धि का भागी बनाता है और जीवन लक्ष्य-प्राप्ति हेतु प्रोत्साहित कर उसको सिद्ध करने का पुरुषार्थ प्रदान करता है। आओ अब इसी विषय में और अधिक जानते हैं:-

आत्मसंयम अपनाने से प्राप्त होने वाले लाभ

मन

संयम रूपी महान तप मन की एकाग्रता के लिए किए जाने वाले प्रतिबन्ध का सर्वोत्तम साधन है। इस साधन द्वारा मानव मनमत यानि मन की पराधीनता से मुक्त हो संकल्प-विकल्प के चंगुल से स्वतंत्र हो जाता है। फलतः न तो मानव का संकल्प झुखता है और न ही वह रोता है। इस प्रकार संयमित व्यक्ति के लिए हठी मन की दुष्प्रवृत्तियों को उपशम कर आशा-तृष्णा का नाश करना सहज हो जाता है और वह आत्मविश्वासी आत्मनियन्त्रण द्वारा चरित्र निर्माण के चरमोत्कर्ष को छूने में सफ़ल हो जाता है।

इन्द्रियाँ

इन्द्रियनिग्रही - ऐसे व्यक्ति की इन्द्रियाँ कभी भी चंचल नहीं होती यानि वह जितेन्द्रिय मानव व्यसनों, निद्रा व कलह में अपना समय नष्ट नहीं करता। अन्य शब्दों में ऐसा व्यक्ति कभी भी अपनी जिह्वा द्वारा मिथ्या या निरर्थक वचन नहीं बोलता। न ही कभी गाली-गलौज व निंदा-चुगली करता है और न ही बुरी बातों के कनरस में फँसता है। इसी तरह अपनी दृष्टि की कंचनता को बरकरार रखते हुए वह जो भी देखता है व पढ़ता है वह आचार की दृष्टि से नीतिसम्मत ही होता है। अपनी गंधेन्द्रिय व स्पर्शेन्द्रिय का सदुपयोग करने हेतु वह इस प्रकार की गंध व स्पर्श से बच कर रहता है जो उसके भावों को उत्तेजित कर कामुक व विकारी बनाएं।

तभी तो ऐसे संयमी व्यक्ति का आचार-विचार व व्यवहार सदाचारिता अनुकूल अनुशासित, सत्ययुक्त, कोमल, शिष्ट, शालीन व विनम्र होता है।

बुद्धि

एक संयमित व्यक्ति अंतर्निहित बौद्धिक विचारशक्ति द्वारा अपनी इच्छाओं व आवश्यकताओं में अंतर समझने में कामयाब हो जाता है। इस तरह उसके लिए विवेकशक्ति के प्रयोग द्वारा सत्य-असत्य व भले-बुरे के अंतर को समझ, अपने मन में पल-प्रतिपल उठने वाले आवेगों, अंतर्द्वन्द्व, अंतर्विरोध, उपद्रव, विद्रोह आदि का दमन कर वासनाओं का शमन करना सरल हो जाता है। इसी कारण उस संयमित व्यक्ति की वृत्ति-स्मृति व बुद्धि निर्मल हो जाती है।

चित्त

संयम द्वारा चित्त की वृत्तियों का निरोध होता है। फलतः चित्त स्थिर हो जाता है और द्वि-द्वैत, राग-द्वेष, वड-छोट, वैर-विरोध, अपना-पराया, आदि जैसे हानिकारक या बुरे विकारी भावों से मुक्ति मिल

जाती है। फलतः त्याग, दया भाव व करुणा की भावना हृदय में जाग्रत हो जाती है जो मनुष्य को निज धर्म में स्थिर रखने वाले कर्मों का साधन सिद्ध होती है।

भाव

संयम द्वारा दुर्भावों का नाश होता है। परिणामस्वरूप सात्विक भाव अर्थात् सजन-भाव हृदय में उजागर होता है। तभी तो उसके लिए अहिंसा, सत्यवचन, क्षमा, शील, संतोष व धैर्य जैसे मानवीय गुण अपनाकर सदा निर्विकार, निष्पाप अवस्था में बने रहना सहज हो जाता है। इस तरह मानव मन-वचन-कर्म द्वारा निष्काम कर्म करने के योग्य बन जाता है। हम कह सकते हैं कि फिर नियम, निश्चय आदि द्वारा वह जो भी करता है सदा आत्मभाव अनुसार निष्कामता की सीमा व मर्यादा में बने रहकर ही करता है।

धारणा

संयम अपने आप में दोषों, पापों या बुराइयों से अलग रहने का परहेज़ है। यही नहीं इसी द्वारा खाने-पीने आदि पर नियन्त्रण रखने का बल प्राप्त होता है और केवल सात्विक आहार व सात्विक ज्ञान धारणा का सेवन सुनिश्चित करना सहज हो जाता है। फलतः मानव की शारीरिक-मानसिक-आत्मिक स्वस्थता पूर्णतः बनी रहती है और सर्व रूपेण बल व तेज में वृद्धि होती है।

सद्‌गुण प्राप्ति

एक आत्मसंयमी सजन सदा आत्मतुष्ट यानि संतोषी बना रहता है। कहने का तात्पर्य यह है कि भौतिकता की चकाचौंध उसे प्रलोभित नहीं कर सकती और वह किसी पदार्थ की अनावश्यक अपेक्षा व इच्छा न रखते हुए सदा अपनी हैसियत में ही विचरने में आनन्द मानता है। वह जीवन में जो भी करता है निस्वार्थ भाव से जनहित को ध्यान में रखकर ही करता है।

दृष्टिकोण

एड्ड संयमी व्यक्ति का दृष्टिकोण सकारात्मक हो जाता है यानि वह प्रतिकूल परिस्थिति यथा सुख-दुःख, अमीरी-ग़रीबी, मान-अपमान व रोग-शोक आदि में भी व्याकुल व अधीर नहीं होता अपितु धीरतापूर्वक अनुकूल बने रह किसी भी वस्तु का सत्यता से परीक्षण करने में यानि यथार्थ को अपनाने में दक्ष हो जाता है। फलस्वरूप उसके लिए किसी भी कार्य के वांछित परिणाम प्राप्त करना सहज हो जाता है।

ख़्याल

एक संयमित व्यक्ति का ख़्याल मायावी दृश्यों को देखकर इधर-उधर नहीं भटकता अपितु अफुर रहता है। इस तरह ऐसे व्यक्ति की इन्द्रियाँ व ख़्याल विषयी जगत के सम्पर्क में आकर भी व्यभिचारी नहीं होता अर्थात् ब्रह्मचर्य यानि ब्रह्म आचरण के नीति-नियमों का पालन करते हुए उस ब्रह्मचारी में विषय-विकारों का त्याग करने की सामर्थ्य आ जाती है और वह निरासक्त निर्भयता से सच्चाई-धर्म की राह पर चलने का पुरुषार्थ दिखा सकता है।

आत्मिक ज्ञान

एक आत्मसंयमी व्यक्ति अंतर्मुखी यानि आत्मकेन्द्रित होता है। अतः बाह्य स्रोतों से ज्ञान प्राप्त करने के स्थान पर वह आत्मिक स्रोत यानि 'शब्द गुरु' से जुड़ उसी से ज्ञान प्राप्त करता है और इस तरह 'विचार ईश्वर है अपना आप' के भाव पर सुदृढ़ हो जाता है। हम कह सकते हैं कि उस आत्मज्ञानी की शक्तियाँ एकत्रित हो असीमित हो जाती हैं और वह आत्मबल के बलबूते पर आत्मा और परमात्मा के शाश्वत सम्बन्ध को जान अपनी अजर-अमर अवस्था को पहचान लेता है और जनचर-बनचर, जड़-चेतन सबके साथ आत्मीयता यानि सजनता का व्यवहार करते हुए समभाव में स्थित हो जाता है और इस तरह कुशलता पूर्वक अपने जीवन का संचालन करता है।

कर्मठता

आत्मसंयम द्वारा एक व्यक्ति आलस्य का परित्याग करने में सक्षम हो जाता है यानि वह उद्यमी व अनुशासित हो प्रत्येक कार्य समय पर सम्पन्न कर लेता है।

अंतःकरण की विशुद्धता

एक आत्मसंयमी व्यक्ति वैराग्य, अभ्यास, एकाग्रता और लगन के बल पर अपने अंतःकरण की विशुद्धता साध लेता है परिणामस्वरूप सजनता का यानि एकता, एक अवस्था का भाव उसके हृदय में उजागर होने लगता है और वह जनचर-बनचर, जड़-चेतन के प्रति एक निगाह-एक दृष्टि रखते हुए, दिव्य दृष्टि के सबक को प्राप्त कर हर हाल में अपने ख़्याल व ध्यान को एक दर्शन में जोड़े रखने के प्रयत्न में सफल हो जाता है। इस प्रयत्न द्वारा उसके स्वभावों का घटता-बढ़ता टेम्परेचर सम होता जाता है व कर्त्तापन के अभिमान से मुक्त हो अकर्ताभाव से समस्त कार्य करने में समर्थ हो जाता है। इस प्रकार वह जगत में विचरते हुए भी उसके विषयों से निर्लिप्त रहता है।

चरित्र

एक आत्मसंयमी व्यक्ति का चरित्र दूसरों के लिए आदर्श होता है। अन्य व्यक्ति भी उससे प्रेरित होकर वैसा बनने के लिए प्रयत्नशील होते हैं। इस प्रकार स्वार्थ भावना से रहित हो कर जीवन संचालित करने वाला हिम्मती व पराक्रमी मनुष्य, स्वतः ही दूसरों की भलाई या हित के निमित्त उन्हें सदाचारी बनाने हेतु, परोपकारी सिद्ध होता है और यश-कीर्ति का पात्र बनता है।

अंततः हम कह सकते हैं कि आत्मसंयम द्वारा एक व्यक्ति निरीक्षण, परीक्षण, विश्लेषण व नियन्त्रण करने की क्रिया में पारंगत हो जाता है। उसके लिए न केवल अपनी शरीर रूपी मशीनरी का संचालन व

सदुपयोग करना सहज होता है अपितु वह तो अपनी भाव, भावना, करनी, वृत्ति, स्मृति, स्वभाव व बुद्धि को निर्मल बनाकर आत्मिक बल द्वारा अपनी मानसिक प्रवृत्तियों, योग्यताओं व क्षमताओं का कुशलतापूर्वक प्रयोग करना भी जानता है। जान लो कि ऐसे व्यक्ति के लिए घर, परिवार व समाज में अनुशासन व्यवस्था कायम कर मानव-धर्म अनुरूप आचरण व व्यवहार करना सुगम होता है। तभी तो ऐसा सदाचारी संयमित प्रयत्न द्वारा व्यक्तिगत जीवन में सफलता प्राप्त करने के साथ-साथ पारिवारिक व सामाजिक स्तर पर चारित्रिक उत्थान की भूमिका निभाने में भी सहायक होता है। इस तरह ऐसा उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल सजन सात्विक धारणा द्वारा अपने शरीर को स्वस्थ व मन-मस्तिष्क को शान्त रखते हुए अपनी प्रारब्ध तो सुखदाई बनाता ही है साथ ही सबको आनन्द की अनुभूति कराने में भी सफलता प्राप्त कर लेता है।

अतः याद रखो आत्मसंयमी ही नेक इंसान कहलाता है व श्रेष्ठता का प्रतीक होता है। ऐसा बुद्धिमान व्यक्ति ही अपने लालन-पालन के दौरान सुदृढ़ता से ब्रह्मचर्य आश्रम के नियमों के अनुसार उत्तम स्वभाव, आचार-व्यवहार अपना पाता है और सबके साथ सजनतापूर्वक व्यवहार करने में दक्ष होता है। उसके जीवन-चरित्र से आत्मीयता अनुसार मानवीय गुणों का दर्शन होता है। ऐसा सच्चरित्र उत्तम मनुष्य जब ब्रह्मचर्य आश्रम से गृहस्थ-आश्रम में प्रवेश करता है यानि विवाहित जीवन का शुभारम्भ करता है तो वह निपुणता से गृहस्थी का प्रबन्ध व संचालन करने की समझ रखता है। तभी तो वह नेक इंसान नेक नीयती से सबके प्रति अपना कर्त्तव्य सच्चाई व धर्म से निभाते हुए अपने परिवारजनों को भी जीवनकाल में सच्चाई-धर्म के रास्ते पर बने रहने के योग्य बना पाता है। हमारी भी गृहस्थी झंझट बन कर न रह जाए इसके प्रति जागरूक रहने हेतु अब आगे सतयुग अनुसार सुख-शान्ति से गृहस्थ-जीवन व्यतीत करने की बात होगी। हम गृहस्थ आश्रम के उन वचनों को अपने

जीवन में लागू कर कामयाब इंसान बन सकें, इस हेतु हमें आत्मसंयम के इन दोनों पाठों को अच्छी तरह से पढ़-समझ कर अमल में लाना होगा। ध्यान दो यदि हम आत्मसंयम अपनाने के प्रति युक्तिसंगत यत्नशील नहीं होते तो हमारे द्वारा अब तक की हुई सारी मेहनत व्यर्थ हो जाएगी। ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि आत्मज्ञान धारण करने के लिए मात्र कक्षा में नियमित रूप से आकर केवल सुनना ही काफ़ी नहीं है अपितु उसे सुन-समझकर आचार-विचार व व्यवहार में लाना उससे कहीं अधिक आवश्यक व महत्त्वपूर्ण है। अतः सबने इसके प्रति सतर्क होना है, कमज़ोरी नहीं दिखानी। याद रखो यदि इसके प्रति एक बार दृढ़ निश्चयी हो जाएंगे तो अवश्य ही चैत्र के यज्ञ यानि वार्षिक परीक्षा में हमारा नतीजा अच्छा निकलेगा। फिर इन उदासीन चेहरों पर प्रफुल्लता छा जाएगी और सारा वातावरण खुशी व आनन्द का बन जाएगा।

अतः उदासी व दुःखमय अवस्था से उबरने हेतु यह यत्न अवश्य करना। इस सन्दर्भ में एक दिन हम सबसे यह भी पूछने वाले हैं कि सबसे दुःखी इन्सान कौन है? इसलिए व्यक्तिगत स्तर पर अपने जीवन में अब तक प्राप्त दुःखों की गणना कर लेना और फिर कक्षा में पूछने पर बताना। इस क्रिया द्वारा हम सबको यह प्रमाणित करना चाहते हैं कि हमसे और कई गुणा दुःखी इन्सान इस संसार में भरे पड़े हैं जो अपने दुःखों को व्यक्त करने का साहस तक नहीं जुटा पाते क्योंकि कोई उनकी सुनने वाला नहीं होता है। अंततः देखना, इस द्वारा यह सिद्ध हो जाएगा कि हम उन करोड़ों दुखियों से कई गुणा अधिक सुखी हैं। अतः सुखमय अवस्था में आने के लिए सत्यता से अपने-अपने दुःखों व ईश्वर प्रदत्त सुख-सुविधाओं की गणना करना आरम्भ कर देना और अंत में अपने आप को सबसे दुःखी सिद्ध कर देना। हम आपके उसी दुःख से आपको उबार कर सुखमय अवस्था में ले आएंगे। याद रखना यदि यह क्रिया करते समय किंचित् मात्र भी कोई दुःख का भाव अन्दर रह गया यानि

दुःखों की गणना में आने से छूट गया तो फिर उसका विकास हो जाएगा और वह हमारे मन-वचन-कर्म में उतर हमें तनावग्रस्त कर देगा। अतः हमेशा के लिए दुःखों से छुटकारा पाने के लिए बड़ी सावधानी व बुद्धिमत्ता से यह आत्मनिरीक्षण करना। क्या ऐसा करने के लिए सब तैयार हो?

हाँ जी।

तो इसके लिए हिम्मत जुटानी होगी। क्या यह हिम्मत जुटा लोगे सारे ?

हाँ जी।

याद रखना यदि सबने सत्यता से यह क्रिया कर ली तो फिर देखना कि कैसे आपके अन्दर अच्छा इन्सान बनने के प्रति उत्साहवर्धन होगा क्योंकि हम यह साबित कर देंगे कि और कई आपकी अपेक्षा ज्यादा दुःखी हैं। यदि कोई और दुःखी नहीं नज़र आया तो हम खुद को समक्ष रख कर यह सिद्ध कर देंगे कि आप हमसे ज्यादा सुखी हो। आप में और हममें अन्तर केवल इतना है कि आप उन दुःखों में लिप्त होकर रोते-झुखते रहते हो और हम सच्चेपातशाह जी द्वारा बख़्शी युक्ति द्वारा उस सुख-दुःख से निर्लिप्त बने रह पाते हैं। अतः दुःख निवारण के लिए तैयार होकर आना। यदि ठीक से जैसा कहा है वैसे तैयार होकर आए तो उस मेहनत का फल जिस रूप में चाहोगे उसी रूप में मिल जाएगा।

आओ अब सब सजन श्री शहनशाह महाबीर जी की शक्ति को नमन कर उनसे शान्ति-शक्ति प्रदान करने की प्रार्थना करते हैं:-

हमें शान्ति दो, हमें शक्ति दो
हमें शान्ति दो, हमें शक्ति दो
हमें शान्ति दो, हमें शक्ति दो

हमें शान्ति दो, हमें शक्ति दो
हमें शान्ति दो, हमें शक्ति दो
हमें शान्ति दो, हमें शक्ति दो
हमें शान्ति दो, हमें शक्ति दो

याद रखो जब भी यह क्रिया करते हो तो ध्यान से किया करो क्योंकि यही वह पावन उद्‌गम स्थल है जहाँ से निकल कर यह शक्ति सारे वातावरण में व्याप्त हो रही है।

अन्ततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

दिनाँक 22 फरवरी 2015 का सबक

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इन्सान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

इस प्रार्थना में जो भी लिखा हुआ है, सबने वह सब याद रखते हुए तद्नुरूप ही अपने आचार-विचार व व्यवहार को ढालना है। तात्पर्य यह है कि इस समभाव-समदृष्टि के स्कूल में जो भी पढ़ाया जाता है उसे आत्मसात् करके अब एक अच्छे व नेक इंसान की तरह जीवनयापन करना आरम्भ कर दो। इसी में सुख और आनन्द निहित है क्योंकि इसी प्रयत्न द्वारा आपकी प्रारब्ध सँवर सकती है। इस बात को हमेशा याद रखना है और इस हेतु हर घड़ी, हर पल यानि कदम-कदम पर अपने ख़्याल पर पहरा रखते हुए आत्मनियन्त्रण रखना है। इस तरह सदा सतर्क रहना है कि जो प्रार्थना अभी हमने ईश्वर के निमित्त की है उस प्रार्थना में सच्चाई हो, हकीकत हो और फिर वही सच्चाई और हकीकत हमारे विचारों व व्यवहार द्वारा प्रदर्शित हो। आओ अब आज का सबक पढ़ते हैं।

गृहस्थ आश्रम

जैसा कि दिनाँक 28 सितम्बर 2014 के सबक में हमने जाना कि मनुष्य जीवन को सुचारु रूप से चलाने के लिए चार आश्रमों में यथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व सन्यास में विभाजित किया गया है। इसके अंतर्गत ब्रह्मचर्य आश्रम पर अब तक विस्तार से बातचीत हो चुकी है। अब घर सतयुग बनाने हैं इसलिए गृहस्थ आश्रम का सबक शुरू होने जा रहा है। इसके अंतर्गत अब तक जो पूर्वतः बात हो चुकी है आइए एक बार उसकी पुनरावृत्ति कर लेते हैं।

प्रश्न- गृहस्थ आश्रम मनुष्य जीवन के चार आश्रमों में से कौन सा आश्रम है ?

उत्तर-दूसरा।

प्रश्न- विवाह करके पारिवारिक जनों के साथ रहने वाले दम्पति क्या कहलाते हैं?

उत्तर-गृहस्थी।

प्रश्न- इस गृहस्थी में परिवार के मुख्य व्यक्ति को क्या कहते हैं?

उत्तर-गृहस्वामी।

प्रश्न- जिसकी सुशीलता, बुद्धिमता और कार्यकुशलता के कारण घर में सुख-समृद्धि होती है उसे क्या कहते हैं ?

उत्तर-गृहस्वामिनी अर्थात् गृहलक्ष्मी। यहाँ सभी गृहस्वामिनियों ने अपना आत्मनिरीक्षण करना है कि क्या वे गृहस्थ का प्रत्येक कार्य बुद्धिमत्ता से करती हैं और अपनी सुशीलता द्वारा बच्चों के आगे अच्छे भाव-स्वभावों का प्रदर्शन करती हैं ताकि वे भी अच्छे मानव के रूप में ढलें।

प्रश्न- एक विवाहित जीवन बिताने वाले गृहस्वामी का मुख्य कर्त्तव्य क्या है?

उत्तर- सत्यता से धन-उपार्जन कर अपने घर-परिवार की जीवन उपयोगी समस्त आवश्यक सामग्रियों का प्रबन्ध करना तथा इस प्रकार परिवारजनों के पालन-पोषण का दायित्व निभाना।

इस संदर्भ में ध्यान दो कि सत्यता से प्रत्येक कार्य करने का बहुत महत्त्व है। याद रखो अगर सत्य ख़्याल की पकड़ से छूट गया तो जीवन का परम पुरुषार्थ छूट जाएगा। फिर गृहस्थाश्रम नहीं सुधर सकता। अतः इसके प्रति व्यक्तिगत स्तर पर सभी ने अपना आत्मनिरीक्षण करना है कि परस्पर व्यवहार व धनोपार्जन करते समय सत्य आपकी पकड़ से छूटता तो नहीं।

प्रश्न- गृहलक्ष्मी का मुख्य कर्त्तव्य क्या है?

उत्तर- सृष्टि-रचना के विकास हेतु सद्गुण सम्पन्न सन्तान उत्पन्न करना।

प्रश्न- सन्तान का सदाचारी होना किन तथ्यों पर निर्भर करता है?

उत्तर- गर्भधारण, गर्भावस्था व जन्म के उपरान्त किए पालन-पोषण के दौरान माता-पिता द्वारा आहार-विहार, आचार-विचार तथा चेष्टा में अपनाई शुद्धता के अनुरूप ही सन्तान का सदाचारी होना निर्भर करता है।

अतः यदि नव दम्पति सद्गुणी सन्तान उत्पन्न करना चाहते हो तो आपको अभी से अपनी मानसिकता सद्-विचारों से भरपूर करनी होगी। सतर्क रहना होगा कि कोई दुर्विचार आपकी मानसिकता को न छू पाए। यदि मात्र इतना कर पाए तो निश्चित ही जो सन्तान उत्पन्न होगी वह अच्छी होगी। याद रखना यदि इस समय चूक गए तो बाद में प्रयत्न करने पर भी चरित्रवान सन्तान प्राप्त नहीं कर पाओगे। इस समय की भूल अजीवन दुःख देगी। इसलिए बेहतरी इसी में है कि हर अनुचित भाव-स्वभाव त्याग कर सद्-विचारों में ढलने का निश्चय लो। इस हेतु सात्विक धारणा द्वारा अपना आहार-विचार, आचार-विचार व चेष्टा सात्विक रखो।

प्रश्न- घर सतयुग कैसे बन पाता है?

उत्तर- जब गृहस्थ जीवन में गृहस्वामी एवं गृहलक्ष्मी दोनों जीवन के परस्पर कर्त्तव्यों की नीतिसंगत पालना करने में दक्षता प्राप्त कर लेते हैं।

ध्यान दो आज से लेकर चैत्र के यानि रामनवमी के यज्ञ तक गृहस्थाश्रम के प्रत्येक पहलू के प्रति यही दक्षता आपको प्रदान करने का प्रयत्न किया जाएगा। जो सजन इस सारी बातचीत को दिलचस्पी में आकर सुनते हुए अमल में ले आएगा वह निश्चित ही घर सतयुग बनाने में निपुण हो जाएगा यानि हर प्रकार की निर्भरता समाप्त हो जाएगी।

आओ अब विस्तार से जानते हैं कि गृहस्थ आश्रम क्या है?

ब्रह्मचर्य अर्थात् विद्याध्ययन आदि के उपरान्त गृह व्यवस्था का सुचारू ढंग से संचालन करने हेतु विवाह करके जिस आश्रम में प्रवेश किया जाता है उसे गृहस्थ आश्रम कहते हैं। धर्म-शास्त्रों के अनुसार गृहस्थ के लिए करने योग्य गृहकर्मों के विधि-विधान बताने वाले वैदिक कर्त्तव्यों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर उनका पूर्णतया पालन करना ही इस आश्रम का प्रमुख दायित्व है।

इससे स्पष्ट होता है कि विवाह ब्रह्मचर्य और गृहस्थ आश्रम के मध्य की वह महत्त्वपूर्ण कड़ी है जिसके द्वारा जीवन का सरलता व सुगमता से संचालन करने हेतु, युवक और युवती को, परस्पर एक सूत्र में बाँध कर, उनके सम्बन्धों को अधिक स्पष्ट, व्यवस्थित और सुसंयमित बनाने का प्रयत्न किया जाता है। यहाँ आधुनिक युग के वातावरण को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक गृहस्थी के लिए यह समझना अनिवार्य है कि विवाह वासना-तृप्ति का साधन नहीं हैं अपितु जीवन की जटिल गंभीरताओं को सुलझाने व उसे आनन्दमय बनाने के लिए संयुक्त प्रयत्न है। इस प्रयत्न के अंतर्गत पति-पत्नी पूर्ण स्वस्थ व गतिशील बने रहकर, एक दूसरे के समान बल और

सहयोग से, अपने-अपने क्षेत्र के अनुकूल कार्य करते हुए, स्वधर्म यानि गृहस्थ-आश्रम का संचालन करते हैं।

गृहस्थ-आश्रम में स्त्री घर की रानी होती है और पुरुष राजा। उनके जीवन का आधार वह विशुद्ध, सच्चा, पवित्र व आत्मीय प्रेम होता है, जिसके अंतर्गत वे दोनों एक हृदय यानि एक भाव हो, ईश्वरीय आदेशों की पालना के प्रति निष्काम भाव से समर्पित हो एक रस एकता के सूत्र मे बंधते हैं। फलतः न तो पुरुष और न ही स्त्री की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का हनन होता है अपितु दोनों एकरूप होकर, अपने पारिवारिक व सामाजिक जीवन को उन्नति व समृद्धि की ओर ले जाने का प्रयत्न करते हैं। उनके हृदयों का इस प्रकार मिलन अभूतपूर्व आनन्द का सृजन करता है। यही सच्चा गृहस्थ धर्म कहलाता है जिसके अन्तर्गत समस्त सदस्य परस्पर एकरसता और एकभाव से जीवन जीते हुए आत्मीय सुख को प्राप्त होते हैं।

कहने का आशय यह है कि प्रत्येक दम्पति को एक दूसरे के विश्वास पात्र बन राजा-रानी की तरह अनुशासित रह सद् आचार-विचारों से युक्त होकर परस्पर सजनता अनुकूल व्यवहार करना ही शोभा देता है। इस संदर्भ में अपनी प्रजा यानि घर के सदस्यों को कुरस्ते से बचा सदाचार के मार्ग पर अग्रसर करने हेतु, राजा-रानी दोनों को, सत्ता के लालचवश अहम् के वशीभूत हो, अपने मन-वचन-कर्म यानि भाव-स्वभावों द्वारा कोई अनुचित करनी नहीं करनी होती। दोनों को परस्पर स्वधर्म से परिचित हो प्रजा के हित को ध्यान में रखते हुए अपने-अपने कर्त्तव्यों की पालना इस ढंग से करनी होती है कि वे सब बदी से बचे रह, नेकी की राह पर चलें और मानव-धर्म निभाने के योग्य बनें।

याद रखो गृहस्थ-जीवन का संचालन कुशलता से तभी हो सकता है यदि पति व पत्नी दोनों अपने व्यक्तिगत अधिकारों का त्याग कर निष्कामता से परिवार के समस्त सदस्यों के प्रति अपना फ़र्ज़ अदा यानि कर्त्तव्य पालन हँस कर करें। यहाँ समझने की बात यह होती है कि एक दूसरे पर अपना प्रभुत्व जमाने हेतु व्यक्तिगत अधिकारों की

छीना-झपटी व टकराव में किसी का भी अधिकार सुरक्षित नहीं रहता क्योंकि अधिकार अन्धा होता है। वह केवल अपना ही स्वार्थ देखता है और दूसरे के हित की ज़रा भी परवाह नहीं करता जिससे नतीजा बुरा निकलता है। इसके विपरीत कर्त्तव्यपालन में सबके अधिकार अपने आप ही सुरक्षित रहते हैं क्योंकि कर्त्तव्य प्रकाश रूप होता है, वह सबके प्रति सजनता निभाते हुए पर-हित के लिए त्याग करता है चाहे उसके लिए कितने भी कष्ट-क्लेश क्यों न सहने पड़ें। इससे सभी को प्रसन्नता प्राप्त होती है और उनके प्राप्य अधिकार अपने आप मिल जाते हैं। कर्त्तव्यशील अपने हितों का त्याग करके सबकी रक्षा करता है और अपनी संतानों को चारित्रिक उत्थान के मार्ग पर अग्रसर करता है। इसके विपरीत कर्त्तव्यशून्य सबके अधिकारों पर प्रहार करके उनका संहार करना चाहता है और अपनी संतानों को चारित्रिक पतन के मार्ग पर चढ़ा उनकी नैतिक हिंसा कर देता है। याद रखो नैतिक हिंसा शारीरिक हिंसा से बदतर होती है और इस हिंसा का शिकार हुए व्यक्ति की अध्यात्म यानि आत्मिक ज्ञान के प्रति रुचि नहीं रहती और इस प्रकार वह जीवन जीने के योग्य ही नहीं रहता। ध्यान से सुनो वर्तमान परिस्थितियों में ऐसी ही नैतिक हिंसा का शिकार हुए बाल-युवाओं के नैतिक उत्थान हेतु इस समभाव-समदृष्टि के स्कूल का शुभारम्भ हुआ है ताकि आने वाली संतानों के भाव-स्वभावों को बाल्यावस्था से सतयुगी आचार-संहिता के अनुकूल ढाल एक आदर्शतम सुसंस्कृत व सभ्य समाज की परिकल्पना को साकार किया जा सके।

अतः परिवार के प्रति अपने दायित्व की महत्ता को समझते हुए सब पति व पत्नियों ने इस तरफ से सतर्क रहकर अपने-अपने कर्त्तव्यपालन द्वारा घर के राजा-रानी बन सब पर एक छत्र यानि बिना किसी हस्तक्षेप के शासन करना है। यही कलह-क्लेश से बच पारिवारिक एकता व शान्ति स्थापित करने का मूल है।

इस संदर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें क्या समझा रहा है आओ ध्यान से सुनें:-

श्री साजन जी के मुख के शब्द

ओ इन्सान जगत वालियों होश विच आना पड़ेगा।
नाम गृहस्थियों का आपको चलाना पड़ेगा।
अमर हो गये गृहस्थी, रोशन हो गये गृहस्थी।
आप हो कैसी ओ हस्ती,
हां हां आप हो कैसी ओ हस्ती ओ दिखाना पड़ेगा।
त्रेते विच श्री राम पधारे, द्वापर विच आये कृष्ण प्यारे।
कलुकाल विच आये दस पातशाह सारे, हां हां दस पातशाह सारे।
ओन्हां दे नाम विच ग्रसो ते ग्रसाना पड़ेगा ग्रसाना पड़ेगा।
युग युग जैं कीते शीशे तैयार, ओन्हां दे इन्सानों हो जावो यार।
उस शीशे विच अपना प्रतिबिम्ब दिस्से हां हां अपना प्रतिबिम्ब दिस्से।
जन्म दे रोंदियां नूं हसाना पड़ेगा हसाना पड़ेगा।
गृहस्थी हो गये निष्कामी, गृहस्थी हो गये ब्रह्मज्ञानी।
सार आत्मपद दी ओन्हां जानी, हां हां आत्मपद दी जानी।
सर्व सर्वत्र आपको दिखाना पड़ेगा, दिखाना पड़ेगा।
गृहस्थी जीवन अपना बना गये, जीवन बना गये ओन्हां दे प्यारे।
कई जन्मां दी हरी होई बाज़ी जित के दिखा गये ओ नज़ारे।
आप को ओही दिखाना पड़ेगा, दिखाना पड़ेगा।

ध्वनिः– श्री रामचन्द्र जी दी महिमा, कोई विरला ही ओ गावे।
महिमा कोई कोई गावे, कोई विरला महिमा विच आवे।
श्री रामचन्द्र जी दी महिमा, कोई विरला ही ओ गावे।

अन्ततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इन्सान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

गृहस्थ आश्रम के मुख्य पात्र व उनके एक दूसरे के प्रति इन्सानियत अनुरूप कर्त्तव्य

गत सप्ताह गृहस्थ आश्रम के विषय में बताए गए सबक से यह ज्ञात होता है कि गृहस्थ-जीवन का प्रमुख उद्देश्य, सद्‌गुणों के माध्यम से, सदाचार का पालन करते हुए, विभिन्न परिस्थियों में समन्वय एवं संतुलन स्थापित कर, जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करना है। इसी के साथ-साथ हमने यह भी जाना कि सुखद गृहस्थ जीवन की नींव पति-पत्नि के मधुर एवं आत्मिक सम्बन्धों की एकरसता के अतिरिक्त घर के समस्त पारिवारिक सदस्यों यथा बुजुर्गों व बच्चों के प्रति अपने संसारी व पारमार्थिक कर्त्तव्यों का पालन कुशलता से करते हुए उन्हें भी सच्चाई-धर्म के मार्ग पर अग्रसर करने पर निर्भर करती है। हम समझ सकते हैं कि परिवार के प्रत्येक सदस्य द्वारा गृहस्थ-जीवन के संचालन में अपनी अतुलनीय भूमिका के योगदान

को भली-भान्ति समझने व उस भूमिका से जुड़े अपने उत्तरदायित्वों का पूर्ण जागृति में रह निर्वाह करने पर ही यह कार्य कुशलता से सम्पन्न हो सकता है। आइए इस संदर्भ में अब एक परिवार के मुख्य सदस्यों की भूमिका व उससे जुड़े विभिन्न कर्त्तव्यों के विषय में क्रमशः जानते हैं:-

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसारः-

जीव-जन्तु प्रभु जी तेरे उपजाये, फुरने दे स्त्री-पुरुष नज़र आये।।
सब स्त्रियाँ इक पुरुष हर थाईं, बेअन्त बेअन्त बेअन्त गुसाईं।।

इस तथ्य से यह सत्य सिद्ध होता है कि शारीरिक रूप से चाहे कोई पुरुष है या स्त्री पर उसकी सुरत जो है अन्दर का अपना ख़्याल वह स्त्री भाव में नज़र आता है। इसलिए पति-पत्नी के लिए बनता है कि वे इस सत्य अनुसार एक दूसरे को बराबर समझें और दोनों ही अपने स्त्री रूपा सुरत को सदा अपने पति परमेश्वर के संग जोड़े रखें ताकि अहम् भाव न सताए और दोनों एक रूप हो कर विचरें। इस प्रकार अपने हृदय वेद-विदित आत्मिक ज्ञान प्राप्त करें व आत्मस्वरूप में बने रह उसी विधान/नीति अनुसार उसे वर्त-वर्ताव में लाते हुए कुशलता से अपने जीवन कर्त्तव्यों का मिलकर पालन करें।

याद रखो सुरत और शब्द के इस अटूट सम्बन्ध में शरीर का कोई सवाल नहीं होता। इसलिए उनके लिए बनता है कि शरीर का जगत में विचरने हेतु इस्तेमाल करते हुए भूल कर भी उनका ख्याल शरीर व जगत के स्वार्थमय विषयों में न उलझें और सदा नित्यभाव में बने रह एक-दूसरे के मित्र व प्रिय बने रहें और वैसा ही आदर्श स्थापित कर अपनी संतानों के प्रति भी सजनता दिखाएं। कहने का तात्पर्य यह है कि इस नश्वर जगत में विचरने हेतु अपने मन को उसी पति परमेश्वर में लीन रखते हुए उसी के हुक्म की पालना के लिए सदा तत्पर बने रहना सुनिश्चित करने पर ही हमारा ख़्याल शरीर व जगत के बंधन से मुक्त अफुर अवस्था में सधा रह सकता है व विश्राम को प्राप्त हो सकता है।

फलतः सत्य धारणा द्वारा हमारा मन, बुद्धि, चित्त व अहंकार पूर्णतया सचेतन अवस्था में बना रहता है व हम सत्य का आत्मीयता से वर्त्त-वर्त्ताव करने में प्रवीणता प्राप्त कर सकते हैं। तभी हम 'विचार ईश्वर है अपना आप' के तथ्य अनुसार अपने जीवनकाल में संतोष व धैर्य द्वारा सम अवस्था में बने रह सच्चाई-धर्म के रास्ते पर चल सकते हैं और निष्कामता से परोपकार करते हुए आवागमन के चक्कर से छुटकारा पा सकते हैं। यह अपने असली घर पहुँचने का सरल तरीका है। अतः इस क्रिया को गृहस्थाश्रम की नींव समझते हुए अपनाना है।

यह होगा एक अच्छे इंसान की तरह निर्द्वन्द्व, निर्वैर व निर्भय अपने यथार्थ यानि ईश्वरीय स्वरूप में बने रह, समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार, सजन-भाव के वर्त-वर्ताव के द्वारा, आत्मतुष्ट रहते हुए, नेक नीयती यानि सत्यता से, एक धीर व्यक्ति की तरह, परमार्थ के रास्ते पर सुदृढ़ता से चलते हुए, जगत से निर्लिप्त बने रह, आनन्द से जीवन जीना। याद रखो समभाव-समदृष्टि के सबक अनुसार सजन-भाव के वर्त्त-वर्त्ताव द्वारा अपने घर को सतयुग बना गृहस्थ आश्रम के फ़र्ज़ अदा सही ढंग से हँस कर निभाने की यही एकमात्र युक्ति है, जिसे परिवार के हर सदस्य को समझ कर अमल में लाना सुनिश्चित करना होगा। यही सदाचार अनुसार जीवन जीने की एकमात्र कुंजी है। इसी प्रयत्न द्वारा घर स्वतः सतयुग बन सकता है।

आओ अब गृहस्थ-आश्रम की भूमिका ठीक से निभाने हेतु परिवार के भिन्न-भिन्न पात्रों के बारे में समझते हैं:-

पुरुष - पुरुष वह है जो वीर, बलवान, कर्मठ, वीर्य यानि शक्ति सम्पन्न, तेजोमय व पराक्रम से सम्पन्न होता है व अपनी तथा अपने आश्रितों की रक्षा करने की क्षमता रखता है। पुरुष की सबसे बड़ी विशेषता उसकी विचारशक्ति है जिसके द्वारा वह समस्त कर्मों का भली-भान्ति सम्पादन करता है। पुरुष घर का स्वामी व शासक

होता है। भरण करने के कारण उसे भर्त्ता और पालन करने के कारण पति नाम से जाना जाता है। स्त्री के लिए पति वह होता है जिससे उसका शास्त्ररीति से विवाह होता है। विवाह उपरान्त पति को अपनी ही पत्नी में अनुराग रखते हुए उसके साथ मित्रवत् सच्चा प्रेम एवं सद्व्यवहार करना चाहिए। ऐसा विशुद्ध प्रेम करने वाला पति ही पत्नीव्रत धर्म का पालन करते हुए उसके हृदय को जीत उस पर राज कर सकता है। याद रखो यही सुदृढ़ परिवार की आधारशिला है।

पति परिवार की सुरक्षा, खुशी, देखभाल, विकास एवं एकता के लिए उत्तरदायी होता है अर्थात् वह अपने गृहस्थ जीवन का संचालक होता है। अपने इसी उत्तरदायित्व के कारण उसे परिवार का मुखिया समझा जाता है। जहाँ अपने परिवार के लिए रोटी, कपड़ा व मकान की आधारभूत जरूरतों को पूरा करना उसका मुख्य दायित्व होता है वहीं पारिवारिक सदस्यों का नेतृत्व करना उसकी सबसे महत्वपूर्ण व पवित्र जिम्मेदारी होती है। अतः एक पुरुष को याद रखना चाहिए कि वह आचार-विचार व व्यवहार द्वारा अपनी पत्नी व बच्चों के समक्ष सदाचरण का आदर्श कीर्तिमान स्थापित करे जिसका अनुकरण कर समस्त परिवार आनन्दमय जीवनयापन करते हुए यश-कीर्ति का सहभागी बने।

कर्त्तव्य

पुरुष को चाहिए कि वह पत्नी को अर्धांगिनी/गृहलक्ष्मी/साझेदार के रूप में स्वीकारे और संरक्षक की भावना से उसके सम्मान और गौरव की रक्षा करे।

पति को चाहिए कि वह अपनी बुद्धिमत्ता से पत्नी और अपने पारिवारिक सदस्यों के मध्य में ठीक प्रेम बनाए रखते हुए उन सबके स्वभावों का मेल कराए।

पति को चाहिए कि वह बच्चों की पालना के साथ-साथ घर को ठीक-ठाक रखने व उसकी व्यवस्था करने में अपनी पत्नी की सहायता करे।

पति को दयालु, समझदार एवं क्षमावान होना चाहिए और अपनी धर्मपत्नी व बच्चों के साथ सहृदयता, कोमलता एवं प्यार से पेश आना चाहिए।

पति को चाहिए कि वह भूलकर भी पत्नी व बच्चों को शारीरिक व मानसिक यातना या कष्ट न पहुँचाए। इससे गृहस्थ-आश्रम की नींव कमज़ोर हो जाती है।

पुरुष के लिए आवश्यक है कि वह काम-काज में निपुण होने के साथ-साथ घर की अर्थव्यवस्था को मितव्ययता से चलाने का सुचारु रूप से प्रबन्ध करे। इस हेतु पति को चाहिए कि वह नेक कमाई के द्वारा ही अपने परिवार का भरण-पोषण करे तथा भविष्य में आकस्मिक आने वाले खर्चों के लिए कुछ बचत अवश्य करे ताकि किसी पर आश्रित न होना पड़े। इसी तरह पुरुष को अपनी नेक कमाई में से कुछ हिस्सा बुजुर्गों व मालिक के प्यारों के लिए अवश्य निकालना चाहिए।

पति को चाहिए कि वह स्वयं तो सात्विक आहारी बना ही रहे साथ ही परिवारजनों को भी सात्विक आहार के सेवन करने के प्रति सुदृढ़ रखे।

पुरुष के लिए आवश्यक है कि वह पारिवारिक संरक्षण का दायित्व अगर कुछ कष्ट-क्लेश सहकर भी पूरा करना पड़े तो उसे पूरा करने में न ही सकुचाए और न ही उससे पीछे हटे।

स्त्री - गृहस्थ-आश्रम का मूल स्त्री है, सन्तान की उत्पत्ति व वृद्धि का साधन स्त्री है तथा सुख का मूल कारण स्त्री है। अतः स्त्री से ही धर्म फल प्राप्त कर लोक और परलोक दोनों पर विजय पाई जा सकती है। स्त्री त्याग, दया, ममता, विनय, शीलता, क्षमा, सेवा, धीरता

इत्यादि गुणों की प्रतिमा है। स्त्री की विशेषता उसकी प्रज्ञा (विशिष्ट बुद्धि, ज्ञान, एकाग्रता) है जिसके द्वारा वह सभी विषयों में सामंजस्य (अनुकूलता, एकरसता) स्थापित करती है और पुरुष की विचारबुद्धि को नियमित करती है। परिवार की उन्नति तथा कल्याण के निमित्त आत्मनियन्त्रण व आत्मसमर्पण उसका नारीत्व है जिसमें वह मातृत्व व गृहिणीत्व आदि के कर्त्तव्यों का पालन करती हुई पति के कार्यों में भी सहायता करती है।

किसी पुरुष के लिए वह स्त्री जिसके साथ उसका विवाह हुआ हो पत्नी कहलाती है। पुरूष के जीवन में स्त्री प्रेरणा एवं शक्ति बन कर आती है। वह पुरूष के परिवार में जहाँ संतान रूपी खुशियाँ प्रदान करती है, वहीं वह पुरूष के धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष सम्बन्धी कार्यो में बराबर की सहायिका होती है।

स्त्री के पास सबसे मूल्यवान धरोहर उसका सतीत्व होता है। सतीत्व की रक्षा उसके जीवन का सर्वोच्च ध्येय होता है। अन्य शब्दों में पतिव्रता का आदर्श उसके जीवन का सर्वोत्तम आदर्श होता है। इस संदर्भ में जो स्त्री पति के सिवा अन्य किसी पुरूष को नहीं जानती वही पतिव्रता स्त्री कहलाती है। याद रखो जो स्त्री उत्तम गुणों से युक्त होकर हर परिस्थिति में पति की सहधर्मिणी बन कर विचरती है वह यश और कीर्ति दोनों को प्राप्त करती है।

पत्नी का सर्वप्रथम कर्त्तव्य घर में ऐसा शान्तिपूर्ण वातावरण बनाना है जिसमें वह, उसका पति व परिवारजन निर्विघ्नता से समस्त कार्य कर सकें व एकता और प्रसन्नता से आनन्दपूर्वक रह सकें। अतः अपनी जिम्मेदारी को समझते हुए एक पत्नी को घर में ऐसी परिस्थितियों एवं वातावरण का सृजन करना चाहिए जिससे परिवार की भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति होने के साथ-साथ सुख व शान्ति में भी वृद्धि हो सके। इसी प्रकार घर के कार्यों का भली-भान्ति प्रबंध कर उनका संचालन करना भी पत्नी की ही जिम्मेदारी होती है।

कर्त्तव्य

स्त्री को चाहिए कि वह पति को परमेश्वर के रूप में स्वीकारे और उसकी चित्तवृत्ति पहचान कर उसके अनुकूल यथोचित व्यवहार अपनाए। इस हेतु वह जिस वातावरण में भी आज तक पलती रही उसको भूलने की कोशिश करे और जिस परिवार में गई है वहाँ के वातावरण के अनुसार अर्थात् उस परिवार के चाल-चलन को पकड़ कर अपने आप को तद्नुकूल ढाल ले।

स्त्री को चाहिए कि वह परिवारजनों का मन जीतकर पति के परिवार का एक अभिन्न अंग बनकर विचरे।

स्त्री को चाहिए कि गृहस्थ-कार्य में कुशलता के साथ-साथ जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में संतोषी, धैर्यवान व मृदुभाषी बनी रहे। इस संदर्भ में कुदरत ने उसे सहनशीलता का स्वभाव बख्शा है, अतः उसके लिए आवश्यक है कि वह उस कुदरती स्वभाव में ही बनी रहे यानि छल-कपट, ईर्ष्या-द्वेष आदि जैसे विकारी भाव न अपनाए। जो स्त्री इस स्वभाव में बनी रहती है वह हकीकत में अपने सुख-दुःख में भागी पति की अर्धांगिनी होती है।

इस संदर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है:-

'गृहस्थ-आश्रम में रैहदियां होयां घर वाले, परिवार वाले, कुल संसार वाले कोई ऐसी-वैसी बात कहें, तो सोचो, तोलो, कोई अंदर सट तो नहीं लगी, आप नूँ देखो कि अंग-अंग मेरा साबुत है, फिर हृदय में महाराज दे अग्गों प्रार्थना करो कि महाराज जी एन्हां नूं सुमति बख्शो। ऐ सजन वी मंदी खरीद न करें।'

स्त्री को चाहिए कि वह अपने पति को खान-पान, बोलचाल, हसन-खेडन और हार-श्रृंगार इत्यादि की तरफ से जैसे भी पति सजन प्रसन्न होवे वैसे ही उन्हें प्रसन्न रखे। इसी प्रकार प्रसन्नता से पति सजन को व्यवसाय पर भेजे तथा व्यवसाय से लौटने पर भी उनका प्रसन्नता से स्वागत करे।

सच्चे पातशाह जी कहते हैं 'स्त्री घर बोड़े, स्त्री घर तारे, स्त्री घर ऊपर लै जावे, स्त्री नीचे लै आवे। सब कुछ स्त्री को अख्तयार है।' स्त्री जो चाहे पति सजन से करवा सकती है क्योंकि गृहस्थ की पालना स्त्रियों से ही आरम्भ होती है।

सच्चे पातशाह जी यह भी कहते हैं कि 'स्त्री झुखती ज्यादा है, रोती ज्यादा है।' पति कम झुखता है। स्त्री का रोना-झुखना ही पति को रुलाता है और उसे भी झुखने का स्वभाव देता है। अतः प्रत्येक स्त्री ने रोने-झुखने वाला स्वभाव छोड़कर घर तारक बनना है, घर को डुबोने वाला नहीं।

सच्चेपातशाह जी के आदेशानुसार प्रत्येक स्त्री पति आज्ञा पर चले और पति चोर न बने। स्वार्थी और परमार्थी दोनों खर्च पति की आज्ञा से ही करे क्योंकि ये पति की अमानत है इसे छेड़ना नहीं।

पत्नी को चाहिए कि वह पति की हैसियत में विचरने में ही अपना व अपने परिवार का हित माने तथा इस हेतु घर का खर्च बड़ी बुद्धिमत्ता से चलाए। उसके लिए यह भी आवश्यक है कि वह दूसरों की देखा-देखी अपनी अनावश्यक इच्छाओं की पूर्त्ति हेतु पति को कुकर्म-अधर्म के रास्ते पर चलने के लिए न उकसाए।

स्त्री-पुरुष के परस्पर कर्त्तव्य

अभी तक हमने जाना कि कर्त्तव्य अलग-अलग होते हुए भी पुरुष और स्त्री एक ही शरीर के दाहिने और बायें अंगों के कार्यों की भान्ति एक दूसरे के पूरक हैं यानि एक जान है और एक ही शरीर की स्थिति, समृद्धि, पुष्टि और तुष्टि के कारण हैं। निःसंदेह अपने-अपने क्षेत्र में दोनों की ही प्रधानता और श्रेष्ठता है पर दोनों की ही श्रेष्ठता एक ही 'परम-श्रेष्ठ' की पूर्त्ति में संलग्न है। अतः दोनों के लिए ही मिलकर अपने-अपने पृथक कर्त्तव्यों का पालन करते हुए जीवन के उस परम और चरम लक्ष्य की प्राप्ति के प्रति पुरुषार्थ करना बनता

है। उनका यह पुरुषार्थ सफल हो इस हेतु उनके लिए परस्पर एक दूसरे के प्रति अपने कर्त्तव्यों को भली-भांति समझना आवश्यक होता है ताकि वे आत्मिक मिलन का आनन्द प्राप्त कर सकें।

इस संदर्भ में सब को सावधान करते हुए हम यह कहना चाहते हैं कि प्रचलित कलियुगी चलन में फँस आत्मिक मिलन के आनन्द के स्थान पर शारीरिक मिलन के आनन्द को भोगने के रस में मत फँस जाना। याद रखो वह आनन्द हकीकत में आनन्द नहीं है अपितु वह तो क्षणभंगुर सुख में ग्रसित हो कर विषयासक्ति में फँसना है यानि दुःख को प्राप्त होना है। यह अविचार में फँस चिन्ता व तनाव में उलझना है यानि परेशानी मोल लेना है। अतः हमें इस सत्य को समझना है कि हम इस जगत में आत्मस्वरूप आए हैं और हमें अपने स्वरूप के अनुरूप ही इस शरीर रूपी साधन का प्रयोग करते हुए जगत में विचरना है।

आओ अब आगे बढ़ते हुए पति-पत्नी के परस्पर कर्त्तव्यों के विषय में जानते हैं:-

पति-पत्नी को चाहिए कि वे शादी होते ही एक-दूसरे को अच्छी तरह समझ लेवें अर्थात् स्त्री और पुरुष दोनों ही विचार से एक दूसरे की, और एक दूसरे के परिवारों के विचारों और व्यवहार में कहाँ-कहाँ असमानताएँ हैं उनको जानें, समझें और उनमें एकमतता लाने के लिए रास्ता निकालें।

पति-पत्नी मन, वचन व कर्म से एक दूसरे का मान-सम्मान और यश-कीर्ति बनाए रखें, ऐसा करने से दोनों के विचारों में अधिकाधिक समता होती जाएगी। जिससे दोनों के जीवन में इच्छाओं का सामूहिक रूप से और स्वेच्छा से सम्मान होगा और उनकी पूर्ति सुलभ हो जाएगी।

दोनों एक दूसरे में गुणों की खोज करें यानि परस्पर कमियों या नुक्सों को न देखें। न ही बात-बात पर एक दूसरे को टोक-टोक कर

हताश करें। इस प्रकार पति-पत्नी में गुण खोजे और पत्नी-पति में गुण खोजे। इस तरह परस्पर गुणों को निखारने में एक दूसरे को प्रोत्साहन दें।

पारिवारिक-परिस्थिति को देखते हुए परस्पर रैहनी-बैहनी, खान-पीन, बोल-चाल, हँसन-खेडन आदि की तरफ से एक दूसरे का ध्यान रखें।

पति-पत्नी की आपसी वाणी और कर्म एक दूसरे के प्रति सुखदायी होना चाहिए ताकि पारिवारिक संगठन व एकता मज़बूत बनी रह सके।

एक दूसरे की निन्दा किसी पारिवारिक या अन्य सज्जन से न करें और न ही सुनने में रुचि लें क्योंकि इस स्वभाव के परिणाम कई दफ़ा अति गम्भीर होते हैं। यहाँ तक कि कई बार बसी बसाई गृहस्थी भी इस कारण उजड़ जाती है। अतः इस नकारात्मक व धिक्कारने योग्य अवगुण को त्याग कर परस्पर यह खेल खेलना बंद कर दो।

याद रखो पति-पत्नी दोनों के लिए चरित्रवान बनना आवश्यक है ताकि उनका विचरना देखकर उनके घर वाले, समाज वाले प्रसन्न हों और उन्हें गृहस्थ जीवन के कर्त्तव्य पालन का आदर्श मानते हुए उनका यशगान करें। इस हेतु पति को चाहिए कि वह पत्नी-व्रत धर्म बनाए रखे, और पत्नी को चाहिए कि वह पतिव्रत धर्म पर अटल रहे। भूल कर भी पत्नी को किसी पराए पुरुष का ध्यान न आवे और न ही पति को पराई स्त्री का।

दोनों आपस में निस्वार्थ और अटूट विश्वास की भावना से विचरें। दूसरों की बातों में आकर कभी भी एक-दूसरे के प्रति उनका विश्वास न डोले और न ही स्वार्थ उपजे।

क्योंकि स्वस्थ व निरोगी सन्तानोत्पत्ति के लिए स्त्री और पुरुष दोनों का शारीरिक-मानसिक रूप से स्वस्थ व आत्मिक रूप से बलवान होना आवश्यक है। अतः सर्वांगीण स्वस्थता बनाए रखें। याद रखो परिवार बढ़ोतरी के लिए पति-पत्नी का निष्कामता से कामुकता रहित सम्भोग करने का विधान है।

पति-पत्नी को चाहिए कि वह ऐसे विचारों को पकड़े जो उनके आपसी सम्बन्ध के साथ-साथ बच्चों, व बुजुर्गों के साथ जो उनका परस्पर संबंध है उसके लिए भी उन्नतिदायक व सुखदाई साबित हो। इस हेतु जीवन के सत्य को अपनाते हुए सबके सामने ऐसा आचार-विचार व व्यवहार दिखाएं जिससे आपकी श्रेष्ठता झलके।

इस संदर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें कह रहा है किः-

'पति-पत्नी ठीक तो बच्चे ठीक और बुज़ुर्ग प्रसन्न।'

गृहस्थ धर्म के अनुसार पति और पत्नी को भौतिक सम्बन्धों व सुखों के साथ-साथ परस्पर हार्दिक सम्बन्धों को भली भान्ति कायम रखने का पुरुषार्थ दिखाना होता है अर्थात् दोनों के हृदयों में एक दूसरे के प्रति ऐसा निष्काम विशुद्ध प्रेम होना चाहिए जिससे आन्तरिक सुख की प्राप्ति तो हो ही, साथ ही निजी चेतन सत्ता का ज्ञान भी बना रहे। ऐसा करने से गृहस्थ-धर्म की पालना हँस कर होती है।

पति-पत्नी को न तो अपना काम कल पर छोड़ कर आलस करना है और न ही आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने व उसका विधिवत् प्रयोग करने में संकोच करना है, किसी भी बात पर संदेह होने पर तुरंत अपनी शंका का निवारण कर लेना है ताकि एक दूसरे के प्रति शक की भावना न पैदा हो जाए।

अन्ततः याद रखो कि विवाह द्वारा युवक और युवती जब गृहस्थ-आश्रम में प्रवेश करते हैं तो दो आत्माएँ अलग-अलग शरीर रूपी चोला पहने एक दूसरे से नज़दीकी से मिले रहने की चेष्टा करती

हैं। इस संदर्भ में विचारवान व विवेकशील दम्पति ही इस चेष्टा में सफल हो इस मिलन का सत्य-सुख प्राप्त करते हैं और गृहस्थ-आश्रम के कर्त्तव्यों को भली-भांति सम्पादित करते हुए भावी यानि वानप्रस्थ व सन्यास आश्रम का जीवन आनन्द से व्यतीत कर पाते हैं। अन्यथा अंतिम स्वास के समय अत्यंत पीड़ा भुगतनी पड़ती है। उस समय कोई अच्छाई तो कोई बुराई करके हमारे ख्याल को मोहपाश में फँसाने का यत्न करता है। इस तरह रोता-झुखता हमारा ख्याल बंधनमान हो काल के मुख का ग्रास बन जाता है और हम जन्म-मरण की पीड़ा से त्रस्त् फिर रोने-झुखने के लिए इस संसार में रूप बदल कर आ जाते हैं।

यह अत्यंत कठिन स्थिति होती है जैसा कि सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में लिखा भी हैः-

जरजरी भूत नूं उतरन नही देंदा कोई पार, जरजरी भूत नूं
जिन्हां पिच्छे तूं कूड़ कमत्तो, ओ करदे ने हाल बेहाल
चारे पासे बाल बच्चे हाल सुनावन, हृदय रहे ओहदा साड़
तृष्णा पयी सतावे, सर्पनी जलावे, रही ए फुकारे मार
कोई मारे तीर कोई मारे ताने, उमरा बैठा ए बिगाड
जिन्हां पिच्छे उमर झगड़ियाँ विच गुज़ारी, ओ यमां दा घर रहे दिखाल
खिड़ खिड़ हस्सन मखौल उड़ावन, चारे पासे पैंदी है धिक्कार
हुण वी सम्भल तूं मूर्ख बंदिया, भज लै राम बलधार
जन्म अपना सँवार, जन्म अपना सँवार
दासी हुण हथ जोड़ पुकारे, ओन्हुं शान्ति बक्षो बलधार बेड़ा करो ओहदा पार।।

ऐसा किसी के साथ न हो इस हेतु सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के इस संदेश को ध्यान से पढ़ोः-

श्री साजन जी के मुख के शब्द

शब्दः- गरूड़ ते भगवन चल पड़े, दरबार पहुंचदियाँ ऊपर फुल वर्षे।

वर्षे बेशुमार फुल्लां दी झड़ी हो गई,
हेठां संस्था बैठी सी उठ के खड़ी हो गई हथ जोड़ उठ के खड़ी हो गई।

कव्वाली

वक्त दे मुताबिक सजन ओ वक्त दे मुताबिक सजन,
ओ सब कोई प्यार करता है।
सब कोई प्यार करता है, ओ सब कोई प्यार करता है।
वक्त दे मुताबिक ओ सजन, सब कोई प्यार करता है।
ओ जदों वृद्ध अवस्था आवे हां हां जदों वृद्ध अवस्था आवे,
फ़र्ज़ अदा से डरता है।

जदों वृद्ध अवस्था आवे फ़र्ज़ अदा से डरता है।
फ़र्ज़ अदा है ओ जीत, बाज़ी जित लई उस अपनी।
जीत सदा ही जीत सजनों जीत सदा ही जीत।
फ़र्ज़ अदा करो इन्सान, फ़र्ज़ अदा है बड़ा महान।
इस बात दा विचार जेहड़ा सजन करदा है।

फ़र्ज़ अदा दी महिमा है महान, फ़र्ज़ अदा करो इन्सान।
ओ बेख़ोफ़ा बेख़तरा ही विचरदा है,
ओ बेख़ौफा बेख़तरा ही विचरदा है।
फ़र्ज़ अदा जेहड़ा करे इन्सान, बुद्धि लई उस अपनी पहचान।
इन्सानां विच्चों अक्लवान, उस जीवन अपना बना ही लिया, पा लिया आत्मिक ज्ञान।

आत्मिक ज्ञान उस ने पा लिया, ओहदी जोत जगे निर्वाण।
ओहदा रूप रंग न रेखा राहवे, ओ पहुंच गया परमधाम।
परमधाम ओ पहुंच गया, बेअन्त है ओहदा नाम।
जेहड़ा खुश हो के करे फ़र्ज़ अदा,
ओहदे ते खुश किवें न होवन परवरदिगार।

ओ महाराज जी दे दर्शन पांदा है, ओ जीवन सफ़ल बनांदा है।
जैं जीवन सफ़ल बना लिया अपना, ओ फिर नहीं पछोतांदा है।

ध्वनि-

स्वार्थी मतलब दे, मतलब दे हिन यार, स्वार्थी मतलब दे।
मतलब जेहड़े वेले निकल गया, फिर करदे नहीं ओ प्यार।
स्वार्थी मतलब दे, मतलब दे हिन यार, स्वार्थी मतलब दे।

शब्दः- ओहदी जोत जगे मन मन्दिर।
ओहदी जोत जगे जग अन्दर।

अतः पति-पत्नी दोनों ने याद रखना है कि एक दूसरे से विशुद्ध आत्मीय प्रेम रखते हुए व गृहस्थाश्रम के समस्त कर्त्तव्य निभाते हुए उन्होंने न केवल अपनी प्रीत उस ईश्वर के साथ जोड़े रखनी है अपितु समभाव व सजन-भाव अपनाकर उस ईश्वर के साथ आजीवन सम्बन्ध भी निभाना है। इस हेतु सतर्क रहना है कि सांसारिक सम्बन्धों में उलझ कर हमारा ख़्याल उन्ही के मोहपाश में बन्धनमान न हो जाए क्योंकि यदि ऐसा होता है तो यह मृत्यु को प्राप्त होने की बात होगी। इसके विपरीत यदि उस ईश्वर के साथ निष्काम भाव से प्रेम करने में सफल हो जाते हैं तो यह जीवन यानि अजरता-अमरता को प्राप्त होना होगा। अतः जो भी मरना चाहता है वह जगत से कामनायुक्त प्रेम कर यानि नश्वर सम्बन्धों में अटक कर आवागमन के चक्रव्यूह में फँस दुःख भोग सकता है और जो अमरता को प्राप्त होना चाहता है वह अपने ख़्याल को ईश्वर के साथ जोड़ कर इसी जन्म में अपने जीवन का उद्देश्य प्राप्त कर सकता है।

इस परिप्रेक्ष्य में याद रखो वह शब्द रूपी ईश्वर अपने घर परमधाम में अपनी सुरत का यानि हमारा इंतजार कर रहे हैं। अतः हमारे लिए बनता है कि इस जगत में विचरते समय हम अपने ख़्याल को वहीं स्थिर रखें और आनन्दमयी जीवन जीने उपरान्त अपने शहनशाही घर लौट जाए। याद रखो यदि हम अपने ख़्याल को उस घर में

स्थिर रखते हुए जगत में विचरते हैं तो कभी भी अतृप्त व असन्तुष्ट नहीं हो सकते। इसका अर्थ है कि हम जगत में निर्लिप्तता से विचर सकते हैं। अतः सबने आत्मा-परमात्मा को एक मानते हुए 'विचार ईश्वर है अपना आप' के सत्य पर मज़बूत बने रहना है। किसी की अधीनता नहीं स्वीकारनी अपितु स्वतन्त्र होकर विचरना है क्योंकि अधीनता से बड़े-छोटे का सवाल उत्पन्न हो जाता है और हम शारीरिक व मानसिक रूप से कमज़ोर इन्सान की तरह कुछ भी अपने आप करने के योग्य नहीं रहते। हमें तो समबुद्धि होना है। याद रहे समबुद्धि ही वह ताकतवर इन्सान होता है जो कभी भी किसी के छलावे में आकर भ्रमित नहीं होता और सदा स्पष्टता से निज असलियत स्वरूप में बना रहता है। वह तो सीधा निष्काम रास्ते पर बढ़ते हुए अपने घर परमधाम पहुँच विश्राम अवस्था को प्राप्त हो वही का होकर रह जाता है।

अन्ततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इन्सान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

गत सप्ताह के पाठों में हमने गृहस्थाश्रम क्या है और गृहस्थ आश्रम के मुख्य पात्रों व उनके कर्त्तव्यों के अन्तर्गत पति व पत्नी के परस्पर कर्त्तव्यों के विषय में विस्तार से जाना। तो क्या सब अब तक बताए सबक के अनुसार अपना गृहस्थाश्रम सतयुग बनाने के लिए तैयार हो?

हाँ जी।

तो रामनौमी यज्ञ के आरम्भ होने से पहले आपके गृहस्थाश्रमों में सुधार आ जाना चाहिए। इसी से गृहस्थ को सुधारने के प्रति आपकी नेक नीयती समझ में आएगी। याद रखो नेक नीयती से ही गृहस्थाश्रम के विषय में अब तक बताए पाठों को अमल में लाना है। इसी श्रृंखला को आगे बढ़ाते हुए आओ अब गृहस्थ आश्रम के सबसे महत्त्वपूर्ण दायित्व यथा सद्गुणसम्पन्न सन्तानोत्पत्ति व उसके लालन-पालन जैसे महान कार्य को अफुरता से सम्पन्न करने की

तथा घर के बुज़ुर्ग सजनों के प्रति अपने कर्त्तव्य पालन की महत्ता को समझते हैं:-

यह तो सब जानते ही हैं कि वंश वृद्धि एवं सृष्टि के विकास के लिए उस ईश्वर ने प्रत्येक प्राणी को प्रजनन क्षमता यानि अपने जैसे जीव उत्पन्न करने की विशेष क्षमता प्रदत्त कर, उसके जीवन को खुशहाली व समृद्धि से भरपूर करने का अनमोल उपहार प्रदान किया है। पति-पत्नी कुदरत प्रदत्त इस योग्यता का बुद्धिमत्ता से प्रयोग करते हुए सर्वगुण सम्पन्न संतान के रूप में वांछित फल प्राप्त कर सकें इस हेतु उन्हें संतान के गर्भधारण से लेकर उसके सच्चरित्र वयस्क बनने तक समुचित पालना-पोषणा का कार्यभार सम्भालना होता है। इस प्रकार उनकी संतान श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान तथा ज्ञानवान होने के साथ-साथ नव-निर्माण के लिए पूर्णतः सक्षम एवं स्वतन्त्र हो, इस हेतु उनके लिए इस क्रिया के हर पहलू के प्रति सूक्ष्मतया जानकारी रखना आवश्यक होता है।

याद रखो इस महान कार्य को कुशलता से सम्पन्न करने से पूर्व प्रत्येक दम्पत्ति का शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य ठीक होना चाहिए। यह कार्य सिद्धि केवल आत्मिक ज्ञान की पढ़ाई व गुढ़ाई कर यानि आत्मज्ञानी बन उसी सत्य ज्ञान अनुसार गुणों को संयमित ढंग से व्यवहार में उतारने से सहजता से हो सकती है। इस प्रकार इन्द्रियनिग्रह द्वारा ख़्याल की अफुर अवस्था बनती है जिसके परिणामस्वरूप संतान उत्त्पत्ति हेतु परस्पर संसर्ग कामवासना से मुक्त होता है व गर्भाधान यानि गर्भ का बीज सकारात्मकता के भाव से भरपूर होता है। इस विधि से गर्भाधान की क्रिया सम्पन्न करने वाले दम्पतियों का ही बच्चा सर्वांगीण रूप से स्वस्थ होता है व नैतिक तौर पर सच्चरित्रता के रास्ते पर चलने की रुचि रखता है। याद रखो ऐसी सदाचारी संतान ही माता-पिता के लिए यश-कीर्ति का हेतु होती है। इस विषय में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें समझा रहा है कि -

स्त्री दी खाद, पति दा बीज बोया

इस संदर्भ में जिस प्रकार बीज और खाद रूपी आहार की किस्म के अनुसार वृक्ष फलता-फूलता है, ठीक उसी प्रकार पति के बीज और स्त्री की खाद की गुणवत्ता के अनुरूप ही सुन्दर, स्वस्थ, पराक्रमी व सच्चरित्र संतान की उत्पत्ति होती है। यहाँ स्पष्ट कर दें कि गर्भधारण, गर्भावस्था व जन्म के उपरान्त किए पालन-पोषण के दौरान माता-पिता द्वारा आहार-विहार, आचार तथा चेष्टा में अपनाई शुद्धता के अनुरूप ही संतान का सदाचारी या दुराचारी होना निर्भर करता है।

यहाँ हम नव दम्पत्तियों से पूछना चाहते हैं कि आप सदाचारी संतान चाहते हो या दुराचारी ?

सदाचारी।

तो आप को क्या करना होगा?

आहार, विहार, आचार और चेष्ठा में शुद्धता अपनानी होगी।

याद रखो सदाचारी संतान प्राप्ति दुर्लभ उपलिब्ध होती है यानि किस्मत वाले माता-पिता को ही ऐसी संतान प्राप्त होती है और उसके प्राप्त होने पर गृहस्थाश्रम स्वतः ठीक हो जाता है। तात्पर्य यह है कि जो माता-पिता अपने आहार, विहार, आचार और चेष्टा में शुद्वता अपनाने के प्रति सतर्क नहीं रहते और बच्चों की पालना-पोषणा में कमी करते हैं, वे अपनी किस्मत आप बिगाड़ कर असहनीय दुःख को प्राप्त होते हैं। इस तथ्य को जानने के पश्चात् हर युवक व युवती के लिए आवश्यक हो जाता है कि वह सुखी एवं शान्तमय विवाहित जीवन के लिए, ब्रह्मचर्य आश्रम के नीति-नियमों का पूर्णतया पालन करने के साथ-साथ गृहस्थ आश्रम के कर्त्तव्यों का समुचित ज्ञान लेकर ही गृहस्थ-आश्रम में प्रवेश करें।

इसके अतिरिक्त इस विषय में हर दम्पति के लिए यह जानना आवश्यक है कि सर्वगुण सम्पन्न संतान हेतु अपने जीवन के हर क्रियाकलाप में नेक नीयती से सात्विकता अपनाना आवश्यक है ताकि वंशानुक्रम स्थानान्तरित करते समय प्राणी की माता का रज तथा पिता के वीर्य कण अर्थात् वह धातु जिससे संतान उत्पन्न होती है, शक्ति, तेज तथा कान्ति से भरपूर हो। यह आने वाली संतान की सुन्दरता, स्वस्थता, पराक्रम और सच्चरित्रता के लिए नितान्त आवश्यक है। आइए इसी संदर्भ में अब बच्चे की उचित तरह से पालना-पोषणा करने हेतु माता-पिता के अनमोल दायित्व को भी समझें:-

बच्चा

किसी प्राणी के शिशु को बच्चा कहते हैं। जन्म उपरान्त शिशु अबोध, नासमझ, भोला व अनुभवहीन होता है। उसमें गम्भीरता का अभाव होता है। वयस्क होने से पूर्व उसे पर्याप्त समझ नहीं होती और अगर उसके अन्दर सत्यज्ञान का वर्धन न किया जाए तो वह अज्ञानता को प्राप्त हो अनैतिक आचार-व्यवहार अपनाकर चारित्रिक हानि कर बैठता है। अतः माता-पिता के लिए अल्पवयस्क बच्चों की भलाई या कल्याण के लिए लालन-पालन के दौरान उनके शारीरिक, मानसिक और सामाजिक विकास का उचित ध्यान रखना व इसके प्रति सतर्क रहना आवश्यक होता है ताकि वे वयस्क होकर उत्तम पुरुष कहलाएँ।

इस संदर्भ में माता के रूप में बच्चों की समुचित पालना-पोषणा करना माँ का एक मात्र विशेषाधिकार होता है। यहाँ उसके लिए याद रखने की बात यह होती है कि वह प्रशिक्षण जो बच्चा अपनी माता से सर्वप्रथम प्राप्त करता है वह उसके भविष्यगत विकास के लिए मज़बूत नींव सिद्ध होता है। अतः अपने कर्त्तव्य का बोध कर एक माँ के लिए अपना धात्री-कर्म ठीक से निभाने हेतु समय पर ही बच्चों के पालन-पोषण आदि के विषय में पूरी जानकारी प्राप्त करना

आवश्यक होता है ताकि वह उनकी बाल-बुद्धि का आत्मिक ज्ञान अनुसार विकास कर उनके समबुद्धि होने में सहायक बनें। इस उद्देश्य पूर्त्ति हेतु बाल्यावस्था से ही बच्चों के स्वभावों का विकास सही ढंग से करना है। इसके अतिरिक्त माता-पिता ने यह भी ध्यान रखना है कि वयस्क होने से पूर्व बच्चों का विवाह वर्जित है। वही अल्पवयस्क जो ब्रह्मचर्य आश्रम के नियमों की पालना विधिवत् करने में सक्षम हो उसी को विवाह का अधिकारी मानना है। इस संदर्भ में वर्त्तमान युग के हालात देखते हुए सबको सतर्क करना चाहते हैं कि अल्प वयस्क बालक/बालिका के साथ यौन-सम्बन्ध स्थापित नहीं करना चाहिए। यह पाप है व मानव धर्म विरुद्ध है।

बच्चों के प्रति कर्त्तव्य

बच्चे प्रकृति की अद्भुत देन होते हैं। अतः लिंग की समानता के सिद्धान्त के दृष्टिगत संतान के रूप में उत्पन्न हुई लड़की एवं लड़के के मध्य कोई भेद-भाव न करते हुए दोनों के साथ समान आचरण व व्यवहार करना है।

बच्चों को पढ़ाना, प्रशिक्षित करना व अनुशासित बनाना माता पिता की सांझी ज़िम्मेदारी है। अतः प्रत्येक माता-पिता ने इस उद्देश्य पूर्त्ति हेतु उन्हें अपना पूरा समय देकर उनकी भौतिक, नैतिक, सामाजिक व आध्यात्मिक उन्नति में सहायक सिद्ध होना है।

माता-पिता के लिए आवश्यक है कि वे काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार जैसे विकारी भावों को अपने मन में पनपने का अवसर न दें। इस तरह इनके दुष्प्रभावों से ग्रसित हो अपने मन-वचन-कर्म द्वारा बच्चों के सामने दुर्व्यवहार करने से बचें। इसके प्रति सावधानी लेना अति आवश्यक है।

माता-पिता बच्चों का पालन प्रेम, वात्सल्य व सहनशीलता से करें। इस हेतु अपने घर का वातावरण संस्कारिक एवं आध्यात्मिक बनाएँ यानि अपने बच्चों को अच्छे उपदेशों/संस्कारों का प्रशिक्षण दें। इस

तरह गृहस्थ-आश्रम का वातावरण हर समय शान्तमय बनाए रखें। घर में गाली-गलौज एवं गर्ज कर ऊँची आवाज़ में वार्तालाप न करें अपितु हाँ-जी व अच्छा-जी का ही वर्त-वर्ताव करते हुए एक दूसरे के प्रति आदर भाव बनाए रखें।

माता-पिता का फ़र्ज़ है कि वे बच्चों की शारीरिक, मानसिक व बौद्धिक उन्नति हेतु स्वयं आत्मिक ज्ञान प्राप्त कर उन्हें भी उस ज्ञान को आत्मसात् कर सद्मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करें। इस हेतु आरम्भ से ही उन्हें समभाव-समदृष्टि का पाठ पढ़ाएँ व अपने आचार-विचार व व्यवहार द्वारा उनके सामने सजनता का आदर्शतम रूप प्रस्तुत करें। इस तरह उनके संस्कार अच्छे हो जाएंगे और वे कुरस्ते पर चढ़ने से बच जाएंगे। इस तरह भौतिक व आत्मिक दोनों ज्ञान प्राप्ति के प्रति बच्चों को बाल्यावस्था से ही पुरुषार्थी बनाएँ। इस संदर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित वचनों को सदैव याद रखें -

'माता-पिता का फ़र्ज़ अदा जो है उच्च पदवी है। इसी से आत्म पद की प्राप्ति हो सकती है।'

माता-पिता अन्दरूनी व बैहरूनी वृत्ति की स्वच्छता बनाए रखें ताकि उनके बच्चे तथा पारिवारिक अन्य सजन उनके घर के रख-रखाव, उनकी बातचीत व आपसी व्यावहारिक एकता से प्रभावित हों और उन सबके अंदर भी ये सद्गुण अपनाने की इच्छा उत्पन्न हो।

माता-पिता को बच्चों की संगति पर कड़ी निगाह रखनी है। बच्चों को भयभीत न करें या उन्हें मारें नहीं अपितु समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुकूल कदम-कदम पर अपनी जाँचना यानि आत्मनिरीक्षण करना सिखाएं ताकि वे आत्मनियन्त्रण द्वारा आत्मसुधार कर सकें।

माता-पिता को चाहिए कि बच्चों के युवा होने पर उनके आचार-विचार व व्यवहार को परखते हुए जीवन में उन्हें स्वतन्त्रता से निश्चय व निर्णय लेने योग्य बनने दें। इससे युवाओं के ख़्याल में

स्वतन्त्रता का प्रवेश होगा और ज्यों-ज्यों वे अपनी विचार-शक्ति द्वारा अपनी ज्ञानेन्द्रियों का प्रयोग स्वतन्त्रता से करना आरम्भ करेंगे त्यों-त्यों उनकी बुद्धि विकसित होगी। इस प्रकार वे अपने आप को मानसिक व शारीरिक रूप से स्वस्थ महसूस करने लगेंगे और उनके अंदर कार्य करने की क्षमता, प्रसन्नता और प्रफुल्लता बढ़ेगी। इस प्रकार वे विवेकशक्ति का भरपूर इस्तेमाल करते हुए सत्य-असत्य के पारखी बनेंगे और नकारात्मक परिस्थितियों से अप्रभावित होने के कारण अपने जीवनकाल में सच्चाई-धर्म के रास्ते पर बने रहना सहज हो जाएगा।

माँसाहार व अन्य नशीले पदार्थों के सेवन से स्वयं बचें व बच्चों को भी बचाए रखें। सात्विक आहार का सेवन स्वयं करें व वही बच्चों को खिलाएं। इस संदर्भ में याद रखें कि आहार ही शरीर है व शरीर ही आहार है। यह भी याद रखें कि केवल सात्विक आहार ही मनुष्य शरीर की स्वस्थता का हेतु होता है।

अंततः बच्चों का मित्र बनकर उनका उचित मार्गदर्शन करें।

बुजुर्ग

घर के श्रेष्ठ, आदरणीय, बुद्धिमान, अनुभवी व शील स्वभाव वाले वृद्ध सजनों को बुजुर्ग कहते हैं। बुजुर्ग अवस्था मनुष्य के जीवनकाल की चार अवस्थाओं यथा बाल, युवा, प्रौढ़ एव वृद्ध में सबसे अंतिम अवस्था होती है। इस अवस्था में शारीरिक धातुओं व इन्द्रियों के क्षीण होने के कारण शरीर दुर्बल और जीर्ण तथा समस्त शारीरिक अंग शिथिल हो जाते हैं। अतः घर के ये सदस्य अपनी शारीरिक देखभाल व आवश्यकताओं की पूर्त्ति स्वयं नहीं कर पाते। उनकी इस अवस्था को देखते हुए दम्पतियों के लिए बच्चों की तरह उनका विशेष ख़्याल रखना आवश्यक हो जाता है।

कर्त्तव्य

बुज़ुर्गों की आवश्यकताओं व इच्छा-अनिच्छा का ध्यान रखते हुए उनसे अच्छा वर्त्ताव करें व उनकी सेवा हर प्रकार से हँस कर प्यार से करें ताकि घर में कोई कल्पना न होवे। अगर बुज़ुर्गों को क्रोध आ भी जाए तो हुक्म को पकड़ना है, अन्दर खेद न आवे। हमें ऐसी चाल चलनी है कि घर में कोई झगड़ा न हो अपितु घर के बुज़ुर्गों से आसीस ही मिले। हो सके तो अपनी व्यस्त दिनचर्या में से कुछ समय उनके साथ अवश्य बिताएं ताकि वे अपने आप को उपेक्षित व हीन न महसूस करें।

इस संदर्भ में गुरुवाणी के शब्दों यथा 'जासो पर नूं आसवे घर नूं' को ध्यान में रखते हुए याद रखो कि आज हम बुज़ुर्गों के साथ जैसा वर्त्ताव करेंगे वैसा ही हमें भुगतना पड़ेगा। अतः बुज़ुर्गों के प्रति अपने फ़र्ज़ अदा को हँसकर पूरा कर इस तरफ से यश कमावें।

अंततः याद रखो गृहस्थाश्रम समस्त पारिवारिक सदस्यों की आत्म उन्नति तथा सद्‌गुणों के विकास के लिए साधन स्वरूप है। जो दम्पति इस आश्रम के नियमों का पालन करते हुए संतोष, धैर्य धारण कर सच्चाई-धर्म की राह पर निर्भयता व स्वतन्त्रता से समत्व भाव से विचरने का उच्चतम आदर्श स्थापित कर पाते हैं उनके लिए निष्काम भाव से परोपकार करते हुए भक्ति-शक्ति धारण करना कोई कठिन कार्य नहीं रहता। आशय यह है कि उनके लिए मुक्ति प्राप्त करना सहज हो जाता है क्योंकि ब्रह्मचर्य आश्रम के नीति-नियमों की पालना द्वारा प्राप्त आत्मिक ज्ञान को वह सहजता से गृहस्थ आश्रम में विचरते हुए व्यवहार में ला पाते हैं। इस तरह वे संतुष्ट, शान्त व आनन्दमय, इंसानियत अनुरूप जीवन जीने का अपने बच्चों के समक्ष आदर्श स्थापित कर व उन्हें समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार सजन-भाव की व्यवहारिकता में कुशल बना खुद स्वतन्त्र बने रहते हैं। इस प्रकार वे सहजता से समस्त संसारिक बंधनों से मुक्त हो जाते हैं।

अंततः सजनों याद रखो
गृहस्थ धर्म विच रह के, अपने आप नूं पकड़ो
फिर फ़र्ज़ अदा तुसां हँस के करो
उस ईश्वर दे घर है सब कुछ
उस ईश्वर दा द्वारा आ के फड़ो।।

इन शब्दों के अनुसार गृहस्थ आश्रम में रहते हुए सबने कदम-कदम पर अपने आपको पकड़ना है और इस तरह आत्मनियन्त्रण कर अपने ऊपर अधिकार कर लेना है। इस हेतु जीवन में जो भी करना है वह नेक नीयती से करना है। याद रखो औरों की गलतियाँ पकड़ने व उसी में उलझे रहने वाला मानव कभी भी निज भाव-स्वभाव पर पकड़ रख अपना सुधार नहीं कर सकता।

अन्ततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इन्सान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

गृहस्थाश्रम ठीक निभाने का ढंग व उसके लाभ-

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित समभाव-समदृष्टि की युक्तिनुसार सजन-भाव की पढ़ाई करते हुए हमें गृहस्थ आश्रम में सतयुगी आचार-संहिता को किस प्रकार अपनाना है आइए जानें:-

1. गृहस्थ आश्रम में विचरते हुए हम सब सजनों ने अपने रिहायशी मकान को साफ़ सुथरा रखना है। हर एक चीज़ घर में तरीके से पड़ी हो और घर चमकता हुआ नज़र आए।

2. गृहस्थ आश्रम में विचरते हुए हम सब सजनों ने अपने शरीर रूपी मकान को साफ सुथरा रखना है। अपनी हैसियत के अनुसार जो कपड़ा भी हम पहनें वह साफ सुथरा और उजला हो।

3. गृहस्थ आश्रम में विचरते हुए अपनी हैसियत के अनुसार खुराक

भी खानी है ताकि हमारी सेहत ठीक रहे, क्योंकि सेहत के बिना हमारी भजन बन्दगी नहीं हो सकती।

4. गृहस्थ आश्रम में विचरते हुए सजनों हम सब ने अपने बाल बच्चों को भी साफ़ सुथरा रखना है और उनको जी करके बुलाना है। आवो जी, बैठो जी, खावो जी ताकि उनके संस्कार अच्छे हो जाएँ और वे भी इसी तरह से बोलें। इस संदर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें समझा रहा है:-

आओ जी, बैठो जी, खाओ जी वे सजनों,
सजनों वे साडा सजन जी होवे बोल।
जी जी दा होवे वर्त्त-वर्त्ताव, अपनी जिह्वा नूं बुलाओ जी,
जी जी दा पहरेवा सजनों पाओ।।

याद रखो जी आदरसूचक शब्द है जिसके वर्त्त-वर्त्ताव से वड-छोट का भाव नहीं पनपता और सभी का समान रूप से सम्मान होता है।

5. गृहस्थ आश्रम में विचरते हुए सजनों हमने साग को कड़ाह समझना है। इस तरह साग भी एक दिन कड़ाह हो जाएगा और उजड़या घर बस जाएगा अर्थात् पति-पत्नी व सबने अपनी हैसियत में ही संतुष्ट रहते हुए प्रसन्नचित्त बने रहना है।

याद रखो इन नीतियों को अमल में लाकर ही हम अपने आचार-व्यवहार में आए बिगड़ाव को सुधार सकते हैं और हमें देखकर हमारे बच्चे सदाचार के मार्ग पर सहजता से अग्रसर हो सकते हैं।

6. गृहस्थ आश्रम में विचरते हुए बच्चों को प्यार से समझौता देना है। मारना नहीं बल्कि कड़ी निगाह से समझाना है। अगर वे फिर भी न समझें तो छठी बार मार सकते हैं। जितना बच्चे का कसूर होवे उतनी सज़ा देनी है। याद रखो सजनों अगर हम सजनों की दृष्टि ठीक हो गई तो हमारे बच्चे अपने आप ठीक हो जाएंगे। गृहस्थ आश्रम में विचरते हुए बच्चों के अन्दर यह बात बिठानी है कि हमारा

रास्ता सच्चाई-धर्म का है और वे भी इसी रास्ते पर चलें। इस तरह वे सीधे रास्ते पर चलेंगे और कुरस्ते से बच जावेंगे।

7. गृहस्थ आश्रम में विचरते हुए सजनों जब कोई सजन, चाहे वे परिवार के हों, बालक हों, वृद्ध हों, ग़रीब हों या अमीर हों उसे जय सीता राम, नमस्ते या सत् श्री अकाल बुलाते ही दृष्टि उस सजन के हृदय की तरफ़ देखें और उसमें अपनी असलियत प्रकाश को देखें। बातचीत करते समय ख़्याल उसी प्रकाश में ठहरा रहे। बातचीत करने से मुस्कुराहट आएगी बदन प्रफुल्लित होगा, हृदय खिड़ेगा और मुख चमकेगा।

8. गृहस्थ आश्रम में विचरते हुए सजनो काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार को भी जीतना है। इस तरह गृहस्थ आश्रम में रहते हुए आहिस्ता-आहिस्ता अपनी इन्द्रियों पर कंट्रोल करके काम पर फ़तह पानी है।

9. गृहस्थ आश्रम में विचरते हुए सजनों हमने सच घर में वर्त्तना है और दुनियां में फैलाना है क्योंकि सच चानणा है और झूठ अंधेरा है। इस हेतु सजनों कदम-कदम पर विचार शब्द पकड़ कर नित्यप्रति अपनी जाँचना तुलना करनी है।

10. गृहस्थ आश्रम में विचरते हुए सजनों अपनी सुरत यानि अन्दर के ख़्याल को कंचन रखना है। इस हेतु नितोनित अपने भाव-स्वभावों को पकड़ते जाना है और खालस सोना होना है।

यहाँ सावधान रहना है कि बताए गए चलन को प्रति क्षण पकड़ना है। अगर हम खुद विचारपूर्वक प्रतिदिन इन नीतियों पर अमल करेंगे तभी ही अपने बच्चों को कुशलतापूक इस मार्ग पर चलाने मे सफल हो पाएंगे। यदि हम इसके प्रति कमज़ोर पड़ें तो हमारे नीतिविरुद्ध चलन से दुष्प्रभावित होकर अच्छे से अच्छे बच्चे के चाल-चलन में भी बिगाड़ आ सकता है। इस कार्य के प्रति कमज़ोर होना हमारी सबसे बड़ी भूल होगी। अतः हम सभी के लिए

आवश्यक है कि इस काम को अत्यन्त सतर्कता से करना सुनिश्चित करें।

11. गृहस्थ आश्रम में विचरते हुए सजनों संसारी फुरना व संसारी बातों के कनरस के साथ-साथ शास्त्र के ज्ञान का कनरस भी छोड़ना है।

12. गृहस्थ आश्रम में विचरते हुए सजनों सर्व ब्रह्माण्ड सजन भाव अपनाते हुए सर्वव्यापक भगवान के सत्य को आत्मसात् करना है। इस प्रकार ख़्याल ध्यान वल व ध्यान प्रकाश वल जोड़ना है। जहाँ ख़्याल हो वहाँ दृष्टि। हमें दिनचर्या के समय इस क्रिया का अभ्यास करना है।

13. सजनों गृहस्थ आश्रम का कार्य व्यवहार करते हुए 'जो प्रकाश महाराज जी का मन-मंदिर देखो वही जग अन्दर' देखना है क्योंकि यह सारा प्रतिबिम्ब मेरा ही है और वही मेरी असलियत है। सजनों वृत्ति है जे एहो कमाल, वृत्ति है जे एहो विशाल, इसी वृत्ति को धारण करना है। इससे एक ख़्याल हो जाएगा।

14. गृहस्थ आश्रम में विचरते हुए सजनों प्रत्येक पल हमारा ख़्याल और दृष्टि महाराज जी के साथ जुड़ी रहे। इस हेतु अपना तीन वक्त का अखण्ड पाठ नीति अनुसार ठीक पूरा करना है। कार्यव्यवहार करते हुए ध्यान महाराज जी की तरफ हो, शब्द चलता रहे। फुरना न ठहरे।

15. गृहस्थ आश्रम में विचरते हुए तथा समस्त कार्यव्यवहार करते हुए हमारा संकल्प प्रभु की तरफ हो। जिस तरफ संकल्प उसी तरफ दृष्टि। एक दृष्टि ओ एक दर्शन। याद रखो सजनों संकल्प झुखता है इन्सान रोता है। यदि हमारा ख़्याल महाराज जी के साथ जुड़ जाएगा तो रोना मिट जाएगा। अतः निगाह सदा उस चमत्कार के साथ जोड़े रखें।

हमारा ख़्याल और दृष्टि महाराज जी के साथ जुड़ी रहे, इस कथन से क्या तात्पर्य है?

मौन।

इसका अर्थ है कि ईश्वर ध्यान दृष्टि द्वारा हमारे ख़्याल में उतर जाए। इस क्रिया को ठीक तरह से क्रियावन्त करने पर ही विजय प्राप्त होगी अन्यथा समझो हार निश्चित है।

अब बताओ कि कौन झुखता है और कौन रोता है?

संकल्प झुखता है और इन्सान रोता है।

ख्याल किस अवस्था में भटकता है?

मौन।

जब हमारा ख़्याल ध्यान वल और ध्यान प्रकाश वल नहीं होता, तभी ख्याल दुनियां में भटकता है। परिणामस्वरूप हमारे लिए जो धारण करना उचित होता है, हम उससे वंचित रह जाते हैं और दृष्टि के माध्यम से सांसारिक फुरनों की धारणा शुरू हो जाती है। ऐसा होने पर शुद्ध धारणा रूकती है और अज्ञान धारणा का सिलसिला आरम्भ होता है। ध्यान दो खुद के संचालन में इतनी सी भूल हमारी बुद्धि को सम अवस्था से गिराकर अधम अवस्था में ले आती है। लेकिन अब हमें अचेतन अवस्था से निकलकर सचेत होने की आवश्यकता है। इस हेतु किसी दूसरे के सहारे मत रहो। स्वतन्त्रता से सम्भलने की चेष्टा करो ताकि अधम अवस्था से उबर पुनः उत्तम अवस्था को प्राप्त कर सको।

16 गृहस्थ आश्रम में विचरते हुए हमने अपने संकल्प कुसंगी को सजन और संगी बनाना है। इस तरह संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म के सवाल हल करके संकल्प पर फ़तह पानी है। फिर सम का कोई सवाल नहीं रहेगा। नौजवान युवावस्था आ जाएगी। उच्च बुद्धि उच्च ख़्याल, भक्ति प्रबल और शक्ति ताकतवर हो जाएगी।

17. गृहस्थ आश्रम में विचरते हुए सजनों समभाव-समदृष्टि की युक्ति के वर्ताव से हमने विचार सत् जबान एक दृष्टि एकता और एक अवस्था को धारण करना है और संकल्प पर फ़तह पाकर रोना बंद करना है।

18. गृहस्थ आश्रम में विचरते समय अपनी आत्मा की अजरता-अमरता को ध्यान में रख, सजनों जन्म-मरण, रोग-सोग, खुशी-ग़मी, मान-अपमान, अमीरी-ग़रीबी आदि परिस्थितियों में अटल रहते हुए, अपने ब्रह्म स्वरूप में एकरस स्थित व स्थिर रहना है। इस तरह एकात्मा के भाव से गृहस्थ में विचरते हुए न तो सुख में हर्षाना है न दुःख में घबराना है अपितु धीरता व वीरता से उनका सामना करना है।

19. गृहस्थ आश्रम में विचरते हुए युवावस्था की भक्ति यानि समभाव-समदृष्टि की युक्ति को अपनाते समय हमारी वृत्ति मौन की हो क्योंकि मौन का नतीजा है विश्राम। अतः गृहस्थाश्रम में विचरते हुए नादानी छोड़कर हमने खलबली को हटाना है और आत्मिक ज्ञान को प्राप्त करना है। तभी हम अन्दरूनी वृत्ति में आत्मस्वरूप के साथ जुड़कर प्रसन्नता को प्राप्त कर पाएंगे।

20. गृहस्थ आश्रम में विचरते हुए सजनों भूलकर भी घरेलू बातों की कचहरी नहीं लगानी अपितु संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म इन चार सवालों को धारण करके हल करना है। यह है सब सजनों की पढ़ाई जो गृहस्थाश्रम का फ़र्ज़ अदा करते हुए सब सजनों ने आत्मसात् करनी है और पास होना है। ये सवाल हल करने पर सजनों आप सम पर खड़े हो जाएंगे। तभी तो आपका घर सतयुग बन पाएगा। फिर आप देखेंगे कि जेहड़ा मन मंदिर प्रकाश ओही असलियत ब्रह्म स्वरूप है मेरा अपना आप। इस एक शब्द पर फिर पाँच साल गुढ़ना है। इस पर परिपक्व होने पर आपकी दिव्य-दृष्टि होगी और आप तीनों कालों की पहचान कर सकेंगे।

अभी हमने जाना कि मौन का नतीजा है विश्राम। इस संदर्भ में बताओ कि हमारे अंदर का मौन कब और क्यों भंग होता है?

मौन।

जब हमारे मन में संकल्प उठने आरम्भ होते हैं तो मौन भंग हो जाता है यानि मन में अशान्ति उत्पन्न हो जाती है और सोचने की क्रिया आरम्भ हो जाती है। यह उलझनवाली मानसिक दशा होती है। ऐसा होने पर व्यक्ति के लिए मन में उठने वाले संकल्प-विकल्पों के गुण-दोषों को समझना कठिन हो जाता है। यह चिंताजनक बात होती है। इस अवस्था में व्यक्ति स्पष्ट रूप से अपनी बात कहने के योग्य नहीं रहता। जब ऐसा होता है तो अन्दर-बाहर से हम किस रूप में बोलते हैं?

झुखने के रूप में यानि अन्दर-बाहर से झुखते हैं। इस तरह खुद भी रोते हैं और दूसरों को भी रुलाते हैं।

याद रखो संकल्प पर पकड़ रखने से हृदय विशुद्ध हो जाता है जो मन की शान्ति का प्रतीक होता है। अतः हमें सदा याद रखना है कि आत्मिक ज्ञान को आत्मसात् करके इन बेवजह उठ कर बढ़ने वाले संकल्पों से बचा जा सकता है यानि मन को स्वतन्त्र रखा जा सकता है। इसलिए नादानी छोड़कर आत्मिक ज्ञान को खुद प्राप्त कर वर्त्ताव में लाओ व परिवारजनों को भी ऐसा करने हेतु समझाओ। इस तरह अपना, अपने परिवार का व कुल समाज का बचाव करो।

हैरान-परेशान मत होवो। यदि इस मार्ग पर चलने से परिवार वाले रोकें तो भी बहादुरी से इस स्वतन्त्र व कल्याणकारी मार्ग पर डटे रहो। इसी में अपनी भलाई मानो।

21. गृहस्थ आश्रम में विचरते हुए सजनों विचार को पकड़ना है। विचार महाराज जी के मुख की वाणी है और विचार ही कुदरती आई हुई है। अतः सबके साथ विचरते हुए जो बात किसी के साथ करो

विचार कर करो और विचार से ही उत्तर दो। विचार के साथ कुल दुनियाँ में और जनचर बनचर जड़-चेतन में एक प्रकाश समझना है। इसी से जीत और फ़तह होगी।

22. गृहस्थ आश्रम में विचरते हुए हम सब सजनों ने आरम्भ से ही विचार ईश्वर आप नूं मानते हुए अर्थात् शब्द को गुरु मानकर, 'ईश्वर है अपना आप प्रकाश, ईश्वर है जे अजपा जाप' के सत्य को आत्मसात् करना है ताकि हम स्वार्थ यानि भौतिक ज्ञान के साथ-साथ परमार्थ यानि आत्मिक ज्ञान के प्रति भी समरूपता से जागरूक बने रह, स्वतन्त्रता, शान्ति व एकता से इस ब्रह्माण्ड में विचरने के योग्य बन सकें। यह आत्मतुष्टि के लिए अति आवश्यक है। याद रखो आत्मज्ञानी ही सभी के साथ आत्मीयता का व्यवहार करते हुए नेक व अच्छे इन्सान की तरह जीवन जीने में सफल हो सकता है।

23. गृहस्थ आश्रम में विचरते हुए सजनों हमें धर्म के रास्ते पर चलना है क्योंकि धर्म का रास्ता बड़ा महान है। इसी में ही हमारी जीत है। यही नहीं सजनों कुरस्ते पड़े सजनों को अधर्म का रास्ता छुड़ाकर हमने धर्म का रास्ता दिखाना है। धर्म क्या है कामना से रहित, निष्काम रास्ता। सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार :-

धर्म मत हारना रे, धर्म के ऊपर तन-मन-धन सब वारना रे।

इस प्रकार अपने गृहस्थ-धर्म को भली-भांति निभाते हुए सजनों हमने सोए हुए सजनों को जागृति में लाकर परोपकार कमाना है और यश-कीर्ति प्राप्त करनी है।

24. गृहस्थ आश्रम में विचरते हुए सजनों नाम ध्यान और निष्काम रास्ते को पकड़ उसी पर चलना है। इसी से असलियत का दर्शन कर पाओगे और संसार में अकर्ता भाव से विचरते हुए स्वार्थ की तरफ से सुखी हो परमार्थ की तरफ से प्रभु से मेल खा पाओगे।

25. गृहस्थ आश्रम में विचरते हुए सजनों हमनें उस ईश्वर के हुक्म की पालना निष्काम भाव से करते हुए उसका आज्ञाकारी सुपुत्र यानि कर्त्तव्यपरायण पुत्र बन कर दिखाना है।

अंततः याद रखो कि इन आखिरी पाँच विचारों को धारण करके जो पहले बीस बिन्दु बताए हैं उन्हें क्रिया में उतारना है। यदि ये आखिरी पाँच विचार अच्छी तरह से धारण हो गए तो व्यावहारिक क्रिया शत-प्रतिशत सही होगी। अन्यथा चाहे कितना ही यत्न कर लो नतीजा फेल का ही निकलेगा।

क्या हम समझ लें कि हम सब ऐसा निश्चित रूप से करेंगे?

हाँ जी।

तो सोचते मत रहो। माना कि कलियुग हमारे भाव-स्वभावों में गहराई से घर कर चुका है और इसी कारण हम अंधे ही नहीं अपितु बहरे भी हो गए हैं। तभी तो इतना प्रयत्न करने के बावजूद भी न तो कुछ अच्छा देखकर, न ही कुछ सुनकर, हमारे हृदय में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित विचार शब्द को धारने की इच्छा उत्पन्न हो रही है। पर यदि हम सजन श्री शहनशाह हनुमान जी पर पूर्ण विश्वास रखें और उनका हाथ पकड़ कर यानि उन द्वारा बख़्शी हुई युक्ति को समर्पण भाव से आत्मसात् कर उन द्वारा दर्शाए मार्ग पर बिना किसी तर्क-वितर्क के सीधा चलते जाते हैं तो कोई कारण नहीं कि हम अपने जीवन उद्देश्य को प्राप्त कर अपनी मंजिल को न पा पाएं। अतः आत्मिक ज्ञान को आत्मसात् कर अपनी बुद्धि को टिकाणे लाने का अदम्य पुरुषार्थ दिखाओ। जान लो कि यह कोई बड़ा काम नहीं है। काम करने से पूरा होता है, सोचने से नहीं। अतः नेकनीयती से आत्मसुधार के इस कार्य को करने में जुट जाओ। निश्चित ही युक्तिसंगत यत्न करने पर सफल हो जाओगे।

संक्षेपतः सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के इन अनमोल वचनों को अन्दर धारण करके हमने न केवल अपना गृहस्थ आश्रम भली-भान्ति चलाना है अपितु इस शरीर को भी पवित्र करना है और ख़ालिस सोना होकर प्रभु के साथ प्रभु होना है। इस तरह गृहस्थ आश्रम में रहते हुए इन वचनों पर चलकर सजनों हमने एकता दिखानी है और महाराज जी के साथ मेल खाना है। इस हेतु गृहस्थ आश्रम में विचरते हुए सजनों हमने 'सजन सदो, सजन सदाओ, सजन ही पहरेवा पाओ, सजन करो वर्त-वर्ताओ' के कथनानुसार जिह्वा से सबको सजन बुलाना है और अपने आप को पाना है। इस तरह सजनों सजन शब्द बुलाने से सारा ब्रह्मांड एक सजन हो जाएगा, मौत का भय नहीं रहेगा। फिर कोई संकल्प बाकी नहीं रहेगा और एक निगाह एक दृष्टि हो कर हमारी दिव्य दृष्टि हो जाएगी। इस तरह हम एक आत्मा होकर परमात्मा से मेल खाकर ज्योति स्वरूप जो अपना आप है उसकी पहचान कर सकेंगे और रोशन हो जाएंगे।

जानते हो जो रोशन हो जाता है उसके विषय में कैसे पता चलता है?

मौन।

जो रौशन हो जाता है उसका प्रकाश फैलता है। उसी प्रकाश से फिर वह जाना जाता है।

उस रोशन को पहचान करने की क्या युक्ति है?

मौन

ख़्याल ध्यान वल व ध्यान प्रकाश वल करके ही उस रोशन को पहचाना जाता है।

इसलिए कहा जाता है कि यह ग्रन्थ अनन्त व बेअन्त है। इसकी सार

पाना मुश्किल भी है और नहीं भी है। याद रखो बदी से बँधा हुआ बदनीयत ख़्याल इस ग्रन्थ के विचारों को नहीं पकड़ सकता यानि इसकी सार नहीं पा सकता पर नेक नीयती से जो यत्न करता है और अपने अंतःकरण को विशुद्ध कर लेता है वह सरलता से इसमें वर्णित युक्तियों को अमल में ला अपना जीवन सफल बना लेता है।

अन्ततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इन्सान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

आत्मनिरीक्षण

अभी तक गृहस्थ-आश्रम के विषय में हो रही बातचीत द्वारा हमने जाना कि पति-पत्नी, बच्चे व बुजुर्ग एक परिवार की वृद्धि, विकास व खुशहाली के सुदृढ़ स्तम्भ हैं। कर्त्तव्य पालन की दृष्टि से परिवार में इन चारों की भूमिका अतुलनीय है। इस सन्दर्भ में यदि हम गत सप्ताह के सबक का गहनता से अध्ययन करें तो निश्चित ही यह ज्ञात होगा कि चाहे पुरुष को ईश्वर ने विविध कार्य करने का आदेश दिया है पर उसका सारा शारीरिक, मानसिक श्रम व धार्मिक कार्य तभी लाभदायक हो सकते हैं जब वे अनुभूत सत्य के आधार पर किये जाएं। यही बात स्त्री पर भी चरितार्थ होती है, उसका पति की सेवा करना, बच्चे पैदा करना तथा उनका पालन-पोषण करना मनुष्य जाति के लिए तभी लाभदायक हो सकता है जब वह स्वार्थवश केवल अपने सुख के लिए बच्चों का पालन-पोषण न

करके, उन्हें मानव जाति का भावी सेवक भी बनाए। इसके लिए उन्हें सत्य-धर्म की राह पर चलने की मात्र शिक्षा ही न दे अपितु उनका इस नेक रास्ते पर मज़बूत बने रहना सुनिश्चित करने हेतु उन पर नज़र भी रखे। यानि उन्हें आरम्भ से ही, संतोष एवं धैर्य के गुणों से अलंकृत कर, निष्काम भाव से परोपकार करने के लिए प्रेरित भी करे। याद रखो इसी कर्त्तव्य निष्ठा में ही दाम्पत्य जीवन की सफलता का रहस्य छिपा हुआ है जिसे प्रत्येक युगल को ध्यान से समझने की आवश्यकता है।

इस सन्दर्भ में निश्चित ही प्रत्येक दम्पति ने अपने उत्तरदायित्वों के विषय में जानकारी प्राप्त कर अपने गृहस्थाश्रम का संचालन तद्नुरूप करना आरम्भ कर दिया होगा। निःसंदेह कई इस प्रयत्न में सफल हो रहे होंगे व कई राह में आने वाली कठिनाइयों का सामना करते हुए मज़बूती लेने का यत्न कर रहे होंगे और आप में से कई ऐसे भी होंगे जो स्वभावों की कठिन अवस्था के कारण इन पाठों को सुन-समझ कर भी जीवन में मुश्किल से हाथ आए इस सुनहरी अवसर का लाभ लेने में चूक गए होंगे। अतः ऐसे सजनों को एक बार फिर सचेत करते हुए आत्मनिरीक्षण द्वारा आत्मसुधार करने का अन्तिम मौका दिया जा रहा है। सबसे प्रार्थना है कि बताए हुए सबक के अनुरूप सत्यता से आत्मविश्लेषण करें व जहाँ भी गृहस्थ-धर्म के फ़र्ज़ अदा के प्रति स्वयं में कमी नज़र आए उसे आत्मनियन्त्रण द्वारा सुधार लें-

दम्पतियों के लिए आत्मनिरीक्षण-

1. क्या आप दोनों में से कोई आत्मज्ञान से वंचित तो नहीं?
2. क्या आप दोनों संयमित ढंग से जीवन जीने में कुशल व सफल हैं?
3. क्या आप दोनों गृहस्थ धर्म व गृहस्थ के कर्त्तव्यों से भली प्रकार परिचित हैं?

4. क्या गृहस्थ आश्रम में विचरते हुए आप परस्पर एक दूसरे के साथ समर्पित व निष्काम भाव से विचर रहे हैं या अपनी ही 'हौं-मैं' के अधीन हो पूरी तरह से स्वार्थपूर्ति में डूबे हुए कटुता पूर्ण जीवन जी रहे हैं?

5. क्या आप सात्विक धारणा व सात्विक आहार के सेवन के प्रति सचेत हैं?

6. क्या आप ब्रह्मचर्य आश्रम के अन्तर्गत बताई हुई आत्मज्ञान की शिक्षा को आत्मसात् करने में असक्षम तो नहीं?

7. क्या आप दुःख-सुख में एक दूसरे का तन-मन से प्रेमपूर्वक व निस्वार्थ भाव से साथ देते हुए परस्पर विश्वासपात्र बने रहते हैं?

8. क्या आप सम्माननीय और उम्र में बड़े व्यक्तियों के आदर-सत्कार के प्रति पूरी तरह से जाग्रत रहते हैं यानि दुःख-सुख में उनका साथ देते हैं?

9. कहीं एक दूसरे व जगत के आकर्षण के वशीभूत होकर आप बुजुर्गों व बच्चों की पालना के प्रति लापरवाह तो नहीं हो गए?

10. क्या आप बच्चों को चरित्रवान बनाने हेतु उनका लालन-पालन ब्रह्मचर्य आश्रम के नियमानुसार करने में सक्षम हैं यानि बच्चों के सात्विक आहार-विहार का पूर्ण रूपेण ध्यान रखते हैं?

11. क्या आप पति-पत्नी बच्चों की भौतिक व आध्यात्मिक शिक्षा व उनकी प्रगति के प्रति पूर्णरूपेण सचेत हैं?

12. क्या आप काम में व्यस्तता के कारण अपने परिवार के सदस्यों की उपेक्षा तो नहीं करते?

13. कहीं आपके सम्बन्धों में बच्चों की तरह अविवेकपूर्ण या अनुचित हठ करने का स्वभाव तो आड़े नहीं आता?

14. क्या गृहस्थाश्रम ठीक चलाने व जीवन-लक्ष्य प्राप्त करने का पुरुषार्थ मिलकर कर पाने में आप अपने आप को सक्षम पाते हैं यानि मनुष्य के जीवन के प्रधान उद्देश्य यथा धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष की सिद्धि हेतु उद्यम कर पाते हैं?

15. क्या आप के सम्बन्धों में वड-छोट, मान-अपमान, अमीरी-ग़रीबी, अपना-पराया आदि आड़े तो नहीं आता?

16. कहीं आप दोनों केवल अपने-अपने परिवार के सदस्यों को ही तो महत्ता नहीं देते यानि कहीं आप में से किसी के परिवारजनों का आपके निजी जीवन में आवश्यकता से अधिक हस्तक्षेप तो नहीं है?

17. क्या आप परमार्थी पढ़ाई में रुचि रखते हुए घर के सभी सदस्यों के साथ बैठकर उनको सच्चाई-धर्म के रास्ते पर अग्रसर कर उस पर बने रहने हेतु परमार्थ सम्बन्धित विषयों पर नित्य प्रति चर्चा करते हैं?

18. क्या आपसी विश्वास की कमी के कारण आप एक दूसरे को शक की नज़र से तो नहीं देखते?

19. क्या आप साग को कड़ाह समझ संतोष में बने रहते हैं यानि क्या आवश्यकता से अधिक इकट्ठा करने की होड़ ने आपके तन-मन को व्याकुल तो नहीं कर रखा?

20. क्या दूसरों की शान-ओ-शौकत देखकर आपके अन्दर उनको प्राप्त करने की लालसा यानि लालच तो नहीं पनपता और वैसा सब कुछ प्राप्त करने हेतु आप चोरी-चकारी या रिश्वतखोरी आदि जैसे भ्रष्टाचार व दुराचार तो नहीं अपना बैठे?

21. क्या जीवन की हर परिस्थिति में आप अपने शरीर, हृदय व दिमाग़ को ठीक रख पाते हैं यानि धैर्यवान बने रह पाते हैं?

22. कहीं आपका खान-पीन, हसन-खेडन, हार-श्रृंगार व बोलचाल सत्य के विपरीत तो नहीं है?

23. क्या आपसी व्यवहार के दौरान आप संकल्प स्वच्छ, दृष्टि कंचन व जिह्वा स्वतन्त्र रख पाते हैं?

24. क्या आप आपस में बातचीत के दौरान जी-जी व सजन शब्द का वर्त्त-वर्त्ताव कर पाते हैं और परस्पर सजन-भाव से विचरते हैं?

25. क्या आप परिवारजनों व घर में काम कर रहे सेवक इत्यादि व अन्य सगे- सम्बन्धियों के मध्य भिन्न-भेद का भाव तो नहीं रखते यानि मानव-धर्म अनुसार सबके प्रति समभाव रखते हैं?

26. क्या आप आत्मभाव के स्थान पर अन्य विकारी भाव तो नहीं अपना बैठे हैं?

27. क्या आप नित्य के स्थान पर नश्वर भाव से यानि रोते-झुखते हुए जीवन तो नहीं जीते?

28. क्या आप आपस में जय सीता राम करते समय सजन के हृदय की तरफ़ देखते हुए उसमें अपनी असलियत प्रकाश को देख पाते हैं और बातचीत करते समय आपका ख़्याल उसी प्रकाश में ठहरा रहता है व हृदय प्रफुल्लित होता है?

29. क्या गृहस्थ का फ़र्ज़ अदा ठीक से निभाते हुए आपका ख़्याल अफुर व मन शान्त अवस्था में बने रहते हैं? यानि कार्य-व्यवहार करते हुए क्या आप हथ कार वल व चित्त यार वल रख पाते हैं?

30. क्या आप निरन्तर ख़्याल ध्यान वल व ध्यान प्रकाश वल रख पाते हैं यानि एक निगाह, एक दृष्टि हो एक दर्शन में स्थित रह पाते हैं? याद रखो यदि आप ऐसा करने में सफल हो जाते

हो तो सब साँसारिक झंझट समाप्त हो जाएंगे और एकता एक अवस्था हो जाएगी। इस तरह परिवार में सुख आ जाएगा।

व्यक्तिगत आत्मनिरीक्षण

1. क्या आप दोनों पतिव्रत या पत्नीव्रत धर्म पर स्थिर हैं यानि क्या आप एक दूसरे के प्रति पूर्ण निष्ठा व विश्वास रखते हो ?
2. कहीं आप कामुक होकर किसी अन्य स्त्री/पुरुष पर कुदृष्टि तो नहीं डालते यानि व्यभिचारिता अपना कर अपने धर्म से तो नहीं गिर बैठे?
3. क्या एक दूसरे के प्रति नैतिक दृष्टि से गिरा हुआ आचरण अपनाकर कुकर्म-अधर्म तो नहीं कर रहे यानि अपयश तो नहीं कमा रहे?
4. कहीं किसी और स्त्री व पुरुष को बहकाकर या उसके बहकावे में आकर आप भोगविलास का जीवन तो नहीं अपना बैठे?
5. क्या आप आपस में सब बातें एक-दूसरे को स्पष्टता से बताते हैं या छिपाते हैं?
6. क्या किसी भी कारणवश आप पौरुष/सतीत्व बल से कमज़ोर तो नहीं पड़ते यानि क्या आप में पुरुष/स्त्री होने के समस्त गुण विद्यमान हैं?
7. कहीं आपका स्त्री होने के नाते स्त्रियों में स्वाभाविक रूप से पाए जाने वाले लज्जा रूपी गुण से विपरीत व्यवहार तो नहीं है?
8. क्या आप अपने परिवार का भरण-पोषण नेक कमाई द्वारा करते हैं?
9. क्या आप में परिवार के हित के लिए अपना सुख त्याग करने की शक्ति है?

10. क्या आपमें नेतृत्व की क्षमता है यानि क्या अपने संयमित आचार-व्यवहार द्वारा अपने परिवार के सदस्यों का आदर्श बनने में सफल हो पाते हैं?

11. कहीं आप में से कोई एक दूसरे पर प्रभुत्व जमाने का यत्न तो नहीं करता?

12. कहीं आप में से कोई एक दूसरे की बुराई यानि निन्दा-चुगली तो नहीं करता?

13. कहीं एक दूसरे से छोटी-छोटी बात पर क्रोधित होकर आप आपस में अपशब्दों का प्रयोग, गाली-गलौज व मारपीट का अशिष्ट व्यवहार तो नहीं करते?

बच्चों के लिए आत्मनिरीक्षण

1. क्या आप माता-पिता द्वारा दी गई शिक्षाओं का पालन करते हुए अपने संकल्प को स्वच्छ, जिह्वा को स्वतन्त्र व दृष्टिकोण को सकारात्मक रख पाते हैं?

2. क्या आप भौतिक शिक्षा के साथ-साथ आत्मिक ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं यानि क्या आप सात्विक आहार व सत्य ज्ञान धारणा के प्रति सचेत हैं?

3. क्या आपको माता-पिता से कुछ बातें छिपाने की आदत तो नहीं?

4. कहीं आप निरंकुश, आलसी व अनुशासनहीन बन दुराचारिता तो नहीं अपना रहे हैं?

5. कहीं आप मनमत पर चलकर फ़िजूल खर्च व धन का दुरुपयोग तो नहीं करते?

6. कहीं आप बातबात पर किसी के कुछ कहने पर यकदम

क्रोधित तो नहीं होते? इसी तरह कहीं आप झूठ बोलने, निन्दा करने, चोरी, ईर्ष्या-द्वेष करने व शिकवा-शिकायत आदि करने के स्वभाव में तो नहीं फँस गए?

7. कहीं विपरीत लिंग के प्रति आकर्षित होकर आप अपनी दृष्टि की कंचनता भंग तो नहीं कर रहे हैं?

8. कहीं आप अप्राकृतिक यौन सम्बन्धों या विवाह से पूर्व ही यौनसम्बन्धों में तो नहीं फँस गए हैं?

9. कहीं आपको माँसाहार व मादक द्रव्यों की लत तो नहीं पड़ गई है?

याद रखो आप यदि अभी से अपना आत्मनिरीक्षण करते हुए खुद पर पकड़ रखोगे तो निश्चित ही अच्छे बच्चे बन जाओगे।

बुजुर्गों के लिए आत्मनिरीक्षण

1. क्या आप बुजुर्ग बड़प्पन के भाव के स्थान पर छोटी-छोटी बातों पर क्रोधित हो कर घर के वातावरण को अशान्त तो नहीं करते?

2. क्या आप बुजुर्ग, पुत्र व पुत्र वधु पर नज़र रखते हुए उन्हें आर्थिक तौर पर स्वतन्त्रता प्रदान करते हैं?

3. क्या आप बुजुर्ग माता-पिता स्वतन्त्रता से अपने पुत्र व पुत्र वधु को महत्त्वपूर्ण विषयों पर निर्णय लेने देते हैं?

4. क्या आप बुजुर्ग बात-बात में उन्हें अपने मोह में फँसाने का प्रयत्न तो नहीं करते हैं?

5. क्या आप बुजुर्ग घर के सभी सदस्यों को परमार्थ के मार्ग पर चलने में सहायता प्रदान करते हैं? यानि क्या परिवार की भौतिक उन्नति के साथ आत्मिक उन्नति के प्रति सचेत हैं?

अन्त में सब अपनी जाँचना करो कि आप श्रेष्ठ, मध्यम व मन्द अधम पुरुष/स्त्री में से क्या हो? यदि इस सन्दर्भ में आपको आत्मनिरीक्षण करने पर अपने अन्दर कोई कमज़ोरी नज़र आ रही हो तो उसे सोच बनाने के स्थान पर तुरन्त दृढ़ संकल्प होकर आत्मसंयम द्वारा उसको सुधारने का निश्चय लो ताकि आगे से आपको नतीजा श्रेष्ठ पुरूष/स्त्री वाला प्राप्त हो। याद रखो श्रेष्ठ पुरूष सीधा चलता है। सीधी बात करता है जबकि मध्यम व मन्द अधम पुरूष छल कपट में फँसा होने के कारण अस्पष्ट होता है व अपनी करनी के दुष्परिणामों को भोगते हुए भी नहीं सम्भलता। इस तरह रोने-झुखने में फंस वह अपना दुर्भाग्य आप खरीदता है। अब आप ही बताओ कि इस द्वारे पर होने के बावजूद कोई बच्चा ऐसी मन्दी खरीद करे तो क्या अच्छा लगता है?

नहीं जी।

तो फिर आत्मनियन्त्रण द्वारा आत्मसुधार करने का दृढ़ निश्चय लो।

हम सब आत्मनियन्त्रण द्वारा अपना सुधार करेंगे।
हम सब आत्मनियन्त्रण द्वारा अपना सुधार करेंगे।
हम सब आत्मनियन्त्रण द्वारा अपना सुधार करेंगे।

अन्त में संक्षेपतः हम तो यही कहेंगे कि यदि आप वास्तव में उस ईश्वर की कृपा का आनन्द मानना चाहते हो तो पति-पत्नी आपस में एक दूसरे से निष्काम पूर्वक हार्दिक प्रेम करते हुए समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार सजन-भाव का वर्त्त-वर्त्ताव करने के प्रति दृढ़ निश्चयी हो जाओ और अपने घर को व्यवस्थित रखो। इस तरह मानव-धर्म अनुरूप सबसे आत्मीयता का व्यवहार करते हुए अपने बच्चों की पालना प्यार से व बुर्ज़ुगों की सेवा हँसकर करो। तभी आप दोनों दृढ़ता से परस्पर पुष्टि-तुष्टि करते हुए एक दूसरे के सहायक बने रह एक दूसरे से तादात्मय स्थापित कर सुखी रह पाओगे और एकता-एक अवस्था को धारण कर गृहस्थ आश्रम का वातावरण

शान्त बनाए रखते हुए सांसारिक कार्यव्यवहार सुचारु रूप से करते हुए परमार्थ का लक्ष्य भी सिद्ध कर पाओगे। निश्चित ही मानिए आपसी एकता, एक अवस्था से आत्मभाव अनुसार आत्मीयता से जीवन जीने से चहुँ ओर विलक्षण सौन्दर्य और माधुर्य निखर उठेगा और आप इससे सराबोर हो अखण्ड यश और कीर्ति के भागी बनोगे। याद रखो यही होगा घर को सतयुग बनाना और परोपकारिता की भावना से ओत-प्रोत हो सामाजिक शान्ति के निमित्त निष्काम भावना से प्रयत्न करना।

सारतः परिवारों में लड़ाई-झगड़ा, परस्पर निन्दा-चुगली अब बंद करो और परिवार के सभी सदस्य मिल बैठ कर गृहस्थाश्रम के सबकों को मिल कर पढ़ो, समझो व फिर आत्मविश्लेषण द्वारा अपना नतीजा उत्तम पुरुष का दिखाओ। इस तरह अपना घर सतयुग बना आनन्दमय जीवन बिताओ।

अन्ततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित।

प्रार्थना

मेरा समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई करने के पीछे मुख्य उद्देश्य है अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इन्सान की तरह जीवन जीने के योग्य बनना। मैं जानता हूँ कि यही युक्ति ही मेरे हृदय में शान्ति रूपा शक्ति द्वारा मुझे सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। इस हेतु मैं अपने इसी उद्देश्य सिद्धि के लिए सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

अब सब सजन सावधान हो जाएं और सत्यता से अपने भाव-स्वभावों का आत्मनिरीक्षण करने के लिए तैयार हो जाएं। इस हेतु ध्यान से सुनो कि सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार जो-जो कुदरती ग्रन्थ और पुस्तकें युग-युग में आ रही हैं उन ग्रन्थों में दो भक्तियाँ लिखी हुई है। एक तो है बाल-अवस्था की युक्ति और भक्ति और दूसरी है युवा-अवस्था की युक्ति और भक्ति। पर इन दोनों भक्तियों की कोई विरला सजन ही पहचान कर सकता है। सजनो अब ध्यान से सुनो, बाल-अवस्था की भक्ति है नाम चलाना और ध्यान लगाना। यह बुद्धि थोड़ी अनजानपने के कारण नचनी-टपनी होती है। इसी चंचलता के कारण मन शान्त, ख्याल विशुद्ध और ध्यान स्थिर नहीं हो पाता। अतः बुद्धिमान इस भक्ति-भाव को नहीं अपनाता। सजनों आगे सुनो, युवा-अवस्था की भक्ति है समभाव-समदृष्टि की युक्ति। इसके अन्तर्गत मृतलोक पर विजय प्राप्त करने के लिए, सजन-शब्द यानि अपने असलियत स्वरुप में स्थित रह, कदम-कदम पर विचार के

साथ, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव अपनाने हेतु खुद पर पकड़ रखनी होती है ताकि एक निगाह एक दृष्टि हो, जिह्वा स्वतन्त्र व संकल्प स्वच्छ रखना हमारे स्वभाव के अन्तर्गत हो जाए। यह होता है विचार शब्द द्वारा 'ईश्वर है अपना आप' का बोध होना व जगत में विचरते हुए यथा उसी की तरह परिवर्तन-रहित, मनोविकार-रहित, स्वार्थ-रहित, विवाद-रहित, व्याधि-रहित, भेद-भाव व वैर-विरोध-रहित, निर्विघ्न अपनी एकरस निर्विकारी परब्रह्म अवस्था में बने रहना। इस अवस्था में बने रहने पर ही मन, वेग-रहित यानि द्वि-द्वैत, छल-कपट, राग-द्वेष, हर्ष-शोक, तेरी-मेरी, ईर्ष्या आदि जैसे विकृति पैदा करने वाले भावों से रहित रहते हुए सदा निर्मल, शान्तमय व आनन्द से भरपूर रहता है।

इस प्रकार यह अवस्था मनुष्य के उच्च बुद्धि व उच्च ख़्याल होने की प्रतीक होती है जिसके अन्तर्गत मनुष्य का मन भक्ति-भाव द्वारा परमात्मा के प्रति परम अनुराग रखते हुए वैसा ही शक्तिशाली होने का एहसास कर सन्तोष को प्राप्त होता है। बस फिर तो उस मनुष्य के लिए संतोष, धैर्य और सच्चाई, धर्म के सवाल हल कर सम पर बने रहना सहज हो जाता है और इस प्रकार उसके मन में कोई संकल्प नहीं उठता यानि माया उसे नहीं सताती और वह निष्काम भाव से परोपकार करने के योग्य हो जाता है। याद रखो संकल्प का न उठना लक्षण है सतवस्तु का जिसके प्रभाव से आत्मतुष्ट मन में सदा अपने परमात्म स्वरूप का एहसास बना रहता है और आत्मज्ञान मजबूती से व्यवहार में विधिवत् उतरता जाता है। यह श्रेष्ठ उपलब्धि है। इसी श्रेष्ठ उपलब्धि हेतु समभाव-समदृष्टि की युक्ति को समझ उसे यथा जीवन में उतार कर एक अच्छा व नेक इंसान बनने के लिए ही वसुन्धरा परिसर में सजन श्री शहनशाह हनुमान जी की कृपा से समभाव-समदृष्टि का स्कूल खोला गया है। अतः सबको सुझाव है कि सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ अनुसार इस स्कूल में आत्मिक ज्ञान की पढ़ाई के रूप में बताई जाने वाली उनकी युक्तियों को अपने जीवन में उतार कर उनकी कृपा के पात्र बनो।

इसी संदर्भ में समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार, सजन-भाव अनुरूप व्यावहारिकता अपनाने हेतु गत वर्ष से जो पढ़ाई चल रही है, वह यत्न है सभी सजनों के हृदय में सजन-भाव के सबक को अमल में लाने के प्रति रुचि पैदा कर, आत्मनिरीक्षण की क्रिया द्वारा स्वयं में पाए गए मनोविकारों पर आत्मनियन्त्रण द्वारा शमन करते हुए, अपने अंतःकरण को शुद्ध व पारदर्शी बनाए रखने का। इस यत्न द्वारा हम निज सत्य स्वरूप का बोध कर, उसी दर्शन में स्थित रहते हुए, अंतर्निहित आत्मिक बल का आत्मविश्वास से भरपूर प्रयोग करते हुए न केवल नित्यता के भाव अनुरूप परम अर्थ हेतु एक अच्छे व नेक इंसान की तरह जीवन जीने में कामयाब हो सकते हैं अपितु तीनों कालों की जानने वाले बन अपने जीवन लक्ष्य को भी प्राप्त कर सकते हैं। याद रखो जब तीनों कालों का बोध हो जाता है तो भूत, भविष्य, वर्तमान में कुछ अंतर नहीं रहता। जीवन का हर पल तब वर्तमान होता है और ख्याल आत्मबोध द्वारा आत्मस्वरूप में ठहरा रहता है।

फलतः आत्मविश्वास जाग्रत होता है और इन्सान स्वतन्त्रता से जीवन में प्रत्येक कार्य करते हुए परम अर्थ को सिद्ध कर लेता है। अतः सब से प्रार्थना है है कि इस महान कारज की सिद्धि के लिए अपने अन्दर चाहना पैदा करने का यत्न करो और इसके प्रति कभी भी कमजोर न पड़ने का दृढ़ संकल्प लो। इसी सन्दर्भ में आइए, इसी उद्देश्य की प्राप्ति हेतु सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार हम सजनो के लिए जो क्रमबद्ध उन्नति करने का विधान है, आत्मनिरीक्षण करते हुए, उसको सार रूप से जानते हैं और अपना सालाना नतीजा लेते हैं।

1 क्या हम समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार सजन-भाव को व्यवहार में लाते हुए अन्दरूनी और बैहरूनी दोनों वृत्तियों का रोना-झुखना बंद करने में सक्षम हो चुके हैं या सुख की बातें करने के स्थान पर सदा दूसरों के आगे अपना दुखड़ा ही रोते रहते हैं ?

2 क्या परिस्थितियों के प्रभाव से हमारा संकल्प अभी भी झुखता है और हम हर समय रोते रहते हैं यानि अंतर्द्वन्द्व में उलझे रह सदा तनाव ग्रस्त रहते है ?

इस सन्दर्भ में यदि पहले प्रश्न का उत्तर न में और दूसरे का उत्तर हाँ में है तो समझ लेना है कि अभी तक हम जिह्वा स्वतन्त्र और अफुर अवस्था को धारण नहीं कर पाए।

3 क्या हमने अब तक अपनाए कलियुगी भाव-स्वभावों से छुटकारा पा, 'हौं-मैं' को मिटाकर, इस शरीर रूपी घर को सतयुग बना लिया है? इसी के साथ ही क्या हमने विराट दृष्टि पर खड़े होकर अर्थात् सर्वव्यापक भगवान को देखते हुए ब्रह्म-वृत्ति अर्थात् एक निगाह-एक दृष्टि, एक दृष्टि एक दर्शन को ठहरा लिया है?

4 क्या हम अपनी जिह्वा स्वतन्त्र, संकल्प स्वच्छ और दृष्टि कंचन करने में सफल हो चुके हैं?

5 क्या हम अपने गृहस्थ आश्रम को ठीक से चलाते हुए बुज़ुर्गों, बच्चों और गृहस्थ के फर्ज़-अदा के प्रति सजग है यानि गृहस्थ आश्रम की नीति नियमों के अनुसार बने रहते हुए हर एक के प्रति अपना कर्त्तव्य हँस कर निभाने में सफल हो पा रहे हैं?

6 क्या हम विचार शब्द तथा समभाव-समदृष्टि को परिपक्वता से धारण कर यथा अमल में लाने के योग्य बन चुके हैं?

क्या अभी पूछे गए सवालों के उत्तर रूप में अपने आचार-विचार व व्यवहार का फर्स्ट का नतीजा लेने व इस प्रकार उत्तम व्यक्ति कहलाने के योग्य बनने हेतु हम नित्य प्रति आत्मनिरीक्षण की क्रिया द्वारा अपनी कमज़ोरियाँ दूर करने के प्रति जागरूक बने रह, उचित सुधार कर पाए हैं?

अब सभी सजन प्रश्नों को ध्यान में रखते हुए, समभाव-समदृष्टि की युक्तिनुसार, सजन-भाव के वर्त-वर्ताव में निजी निपुणता के बारे में

जानने हेतु, अपना आत्मनिरीक्षण करते हुए नीतिनुसार अपना फ़ेल, पास व फ़र्स्ट निकलने का नतीजा लो। इस संदर्भ में जान लो कि अगर आपका इन सब सवालों का उत्तर न में है तो समझो कि आप फ़ेल हैं। अगर चार सवालों का उत्तर हाँ में है तो आप पास हैं और अगर सब सवालों का उत्तर हाँ में है तो आप फ़र्स्ट हैं।

इस विषय में यह भी जान लो कि अगर नतीजा फ़र्स्ट का है तो एक अच्छे व नेक इन्सान बने रहने हेतु आप काबिल-ए-तारीफ़ हैं।

अगर नतीजा पास का है तो सजन-भाव के व्यवहार में और गुढ़ने की आवश्यकता को समझो और थोड़ी और हिम्मत दिखा इस वर्ष के नतीजे में सुधार कर लो।

अगर नतीजा फ़ेल का है तो समझो कि आप अपने गृहस्थ-आश्रम को सतयुगी बनाने व जीवन लक्ष्य को प्राप्त करने में दिलचस्पी नहीं रखते जो अनुचित बात है। अतः समय पर ही, अपने आप को खुद समझाकर, खुद सम्भल जाओ ताकि साँसारिक विषयों में उलझे रहने के कारण आप तनाव के प्रभाव से, कठोर पीड़ा उठाने के भागी न बनो। याद रखो यदि ऐसा हुआ तो बाद में पछतावे के सिवाय कुछ भी हाथ नहीं लगेगा और आप के साथ-साथ आपके परिवारजन भी ईर्ष्या-द्वेष, वैर-विरोध, तेरी-मेरी आदि जैसे नकारात्मक दुष्ट भाव-स्वभाव अपना बैठेंगे। इस प्रकार दुराचार, भ्रष्टाचार व व्यभिचार जैसे बुरे भाव-स्वभावों के वर्त-वर्ताव से प्राप्त होने वाले नतीजों के कारण व्यक्तिगत स्तर पर आप अपने परिवार व समाज की नैतिक पतनता का कारण बनोगे। यह मानवता की हिंसा कर खुद का व सबका विनाश करने की बात होगी जिसके भयंकर परिणामों को भुगतते हुए जीवों को आप देख भी नहीं पाओगे व इस तरह अपयश के भागी बनोगे।

इस परिप्रेक्ष्य में हम जानते हैं कि कलियुग के प्रभाव के कारण इतनी भरी सभा में किसी को भी फर्स्ट का नतीजा प्राप्त नहीं हुआ होगा।

यदि ऐसा ही है तो भी घबराओ मत क्योंकि सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ आपके पास है। उसे अपना संगी बना लो और अपनी त्रुटियों को स्वीकार कर झुकाव में आ जाओ। याद रखो यदि ऐसा कर लिया तो निश्चित ही अगले वर्ष फर्स्ट का नतीजा प्राप्त करोगे। इस हेतु समय की महत्ता को समझते हुए आत्मनिरीक्षण द्वारा स्वयं में पाई गई कमियों पर आत्मसंयम द्वारा विजय प्राप्त कर लो और अपने भाव-स्वभावों को मानव-धर्म अनुसार ढाल लो। इस तरह पुनः समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई व गुढ़ाई दिलचस्पी से कर, अपने यथार्थ में बने रहने हेतु आत्मज्ञान द्वारा, मन-वचन-कर्म से आत्मभाव अनुसार, हर प्राणी के प्रति परमात्मा-दृष्टि व वृत्ति अपनाकर, अपने आत्मबल का भरपूर प्रयोग करते हुए, अब तक धारण किए हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म दोषों का निवारण कर श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान बन, सजन-भाव का वर्त-वर्ताव कर एक अच्छे इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनो। जान लो कि एकमात्र यही युक्ति ही आपके हृदय में शांति रूपा शक्ति द्वारा, आपको सदा हर विकृति व अमंगल से रक्षित रखने का अचूक हथियार है। अतः अपने इसी उद्देश्य सिद्धि हेतु सर्वव्यापक भगवान से बल, बुद्धि व सुमति प्रदान करने की प्रार्थना करो और एक सदाचारी इंसान की तरह जीवन जीने के योग्य बनने का संकल्प लो।

इस संदर्भ में अपने मन के भेद किसी के सामने खोलने की जरूरत नहीं है। न ही अपनी कमजोरियाँ किसी को बताने की जरूरत है पर उन्हें खुद समझने की जरूरत अवश्य है। अतः आत्मनिरीक्षण द्वारा इन्हें समझ कर, अपने मन पर अंकुश रखते हुए, इनका सुधार कर लो। इसके लिए जो युक्ति सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में दो पैगामों वाले कीर्तनों में लिखी है, उसे ध्यान से पढ़ो और समझदारी से उसको युक्तिसंगत अमल में लाना आरम्भ कर दो यानि वैसा चलन अपनाते हुए उसे अपने स्वभाव के अंतर्गत कर लो और संयमित ढंग से जीवन जीने के योग्य बनने के लिए कदम-कदम पर, नित्य प्रति

आत्मनिरीक्षण करो। याद रखो अगर इस साल ऐसा कर दिखाते हो तो अगले वर्ष नतीजा फर्स्ट का आएगा ही आएगा। इसलिए न ही घबराओ और न ही सोच में जाओ यानि हिम्मत मत हारो क्योंकि सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

सजन श्री शहनशाह हनुमान जी के मुख के शब्द

कवित्तः- हिम्मत दिखाई ओ जावो हिम्मत वधाई ओ जावो।
हिम्मत न हारनी ओ बेटा, हिम्मत बढ़ाई ओ जावो।
विचार पकड़ना सिखाई ओ जावो, सत बोलना समझाई ओ जावो।
सच होवे ज़बान ओ बेटा, धर्म दा रस्ता बतलाई ओ जावो।
सजनां नूं एकता वी दिखाई ओ जावो।
इक निगाह एक दृष्टि ते हिम्मत बढ़वाई ओ जावो।
नीतियां ते चलने दा तरीका ओ बेटा, एहो सजनां नूं समझाई ओ जावो।
हिम्मत बढ़ाई ओ जाओ, एहो तरीका सारी विश्व नूं सुनाई ओ जावो।
हिम्मत है जगजीत मीतां दी ओ मीत बेटा।
ए सौखा तरीका दे के सब नूं हर्षाई ओ जावो।

अब श्री साजन जी सजनों को कह रहे हैं

हिम्मत जेहड़ा लड़ावे इन्सान, ओ असलियत दी कर लवे पहचान।
इन्सान हो तो इन्सानी दिखाओ, ओ सजनों हिम्मत है जे बड़ी महान।
इन्सान हो तो इन्सानी दिखाओ ओ जावो, ओ सजनों हिम्मत बढ़ाई ओ जावो।
फिर दिव्य दृष्टि दा सबक लै के, मेल महाराज नाल खाई ओ जावो।
हिम्मत है जे ओ जैंदे पास, हिम्मत है जे ओ अपना आप प्रकाश।
ओ प्रकाश दिखाई ओ जावो, त्रिकालदर्शी नाम कहाई ओ जावो।
फिर रूप रंग न रेखा कोई, निर्वाण दे अन्दर प्रकाश सोई।
बिन सूरजों प्रकाश आद अन्त, प्रकाश ही प्रकाश दिखाई ओ जावो।

शब्दः- जेहड़ा प्रकाश है जे मन मन्दिर, ओही प्रकाश सारे जग अन्दर।
एक निगाह एक दृष्टि , ओ एक दर्शन ओ एक दर्शन।

इस तरह अपनी उद्देश्य प्राप्ति हेतु खुद हिम्मत में बने रहो और अन्यों की भी हिम्मत बढ़ाने का पराक्रम दिखाओ।

क्या सभी सुरतों को अपने 'शब्द-शौह' की यह बात मंजूर है?

हाँ जी।

मंजूर है।

हाँ जी।

मंज़ूर है?

हाँ जी।

तो सब सुरतें 'शब्द' का संग कर उसके विचारों को ही अपने जीवन का आधार मानना। इस तरह आपके सब सवाल हल हो जाएंगे।

आई बात समझ में?

हाँ जी।

तो अब जागृति में आओ, आगे बढ़ो और मंज़िल प्राप्त करने हेतु तत्पर हो जाओ। ईश्वर की शुभकामनाएँ आपके साथ हैं। विश्वास करो और यह शुभ काम पूरी श्रद्धा के साथ समर्पित भाव से करना आरम्भ कर दो। ऐसा करने से निश्चित ही विजय प्राप्त होगी। विजय प्राप्ति हेतु सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के इस पैग़ाम के वचनों पर यथा अमल करने हेतु आज के दिन को ही शुभ समझो।

श्री साजन जी दे मुख दा

शब्दः- सजनों सजन शब्द चलाओ जितो मृत लोक नूं
सजनों जितो मृत लोक नूं ।
सजनों हमारा पैगाम ले लीजिए, एहो पैगाम सजनां नूं सुना
दीजिए - क्या
सजन सदो सजन सदावो, सजन सदो सजन सदावोच
सजन ही पहरेवा पाओ, सजन करो वर्त-वर्ताओञ
आप वर्तो सजनां नूं वर्तना सिखा दीजिए
एहो सजनां कोलो उत्तर सानूं लिया दीजिए

सजनों हमारा पैगाम ले लीजिए, एहो पैगाम सजनां नूं सुना
दीजिए -क्या
जिव्हा स्वतन्त्र संकल्प स्वच्छ, जिव्हा स्वतन्त्र संकल्प स्वच्छ
इक निगाह इक दृष्टि दिखाओ, इक निगाह इक दृष्टि दिखाओ
आप देखो ते सजनां नूं दिखा दीजिए
एहो सजनां कोलो उत्तर सानूं लिया दीजिए
सजनों हमारा पैगाम ले लीजिए, एहो पैगाम सजनां नूं सुना
दीजिए - क्या
पकड़ो सजनों आप नूं, खालस सोना हो जाओ
अपने प्रकाश नूं पाओ

आप पाओ ते सजनां नूं प्रकाश होने दा तरीका समझा दीजिए
एहो सजनां कोलो उत्तर सानूं लिया दीजिए

सजनों हमारा पैगाम ले लीजिए, एहो पैगाम सजनां नूं सुना
दीजिए - क्या
सजनों कदम-कदम ते विचार होवे, विचार नाल सजनों प्यार होवे
दिव्य दृष्टि दिखाओ
आप देखो ते सजनां नूं देखना सिखा दीजिए

एहो सजनां कोलो उत्तर सानूं लिया दीजिए

सजनों हमारा पैगाम ले लीजिए, एहो पैगाम सजनां नूं सुना दीजिए - क्या
सजन शब्द चलाओ ते चलदे जाओ
सजनो ऐसा पराक्रम दिखाओ, परउपकारी नाम कहाओ
आप उपकार करो ते सजना नूं उपकार करना सिखा दीजिए
एहो सजनां कोलो उत्तर सानूं लिया दीजिए

शब्दः- सजनों एहो तरीका है जे मेल खावने दा,
फिर जीवन अपना बना लीजिए।
ज्योति स्वरूप और पारब्रह्म परमेश्वर,
फिर रौशन अपना नाम कीजिए।।

अब अपने हितकारी बन दृढ़ संकल्प हो जाओ और

1. गृहस्थ-धर्म को ठीक निभाना आरम्भ कर दो और भावावेश हो, नकारात्मकता के भाव-स्वभावों के चक्रव्यूह में उलझे व रुड़ते हुए ख़्याल को पकड़ स्थिर कर लो व इसके प्रति सभी परिवारजनों को भी सुचेत रखो ताकि वे भी ऐसा करने में सफल हों और सभी एक ख़्याल हो जाएं।

2. छल-कपट, ईर्ष्या-द्वेष आदि छोड़ सच्चाई-धर्म के रास्ते पर चलना आरम्भ कर दो और अपने आप को व अन्य सभी को नैतिक पतन अवस्था से उबार लो। इस प्रकार आपसी व्यवहार के दौरान मानवता अनुरूप व्यक्तित्व में बने रहो।

3. नाम-ध्यान की शक्ति द्वारा अपने मन को सदा परमेश्वर में लीन रखो और इस प्रकार आत्मानन्द की प्राप्ति करते हुए रोने-झुखने के स्वभाव से निजात पा सदा हँसते रहो और सजनो को हँसाते रहो।

4. भक्ति-शक्ति को धारण करने के महत्त्व को समझो और वैसा ही करना सुनिश्चित करने हेतु सांसारिक फुरनों में गलतान अपने मन-मस्तिष्क को, अचेतन अवस्था से उबार जाग्रत अवस्था में साध लो।

इस प्रकार खुद आदर्श स्थापित कर सभी को ऐसा ही करने का सुझाव दो।

5. इस कारण जगत में गमन करते हुए अपना भाव स्वच्छ रखो और अपने जीवनकाल में इसके प्रति ध्यानपूर्वक सदा सतर्क व सावधान बने रहो ताकि कोई भी विकृति मन में घर न कर जाए।

6. काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार जैसे दुर्भावों के चक्रव्यूह में न फँसकर अकर्त्ता भाव से पुण्य कर्म करने के योग्य बनो।

7. आपकी यश और कीर्ति में फ़रक न पड़े ऐसा सुनिश्चित करने हेतु स्वयं द्वारा अपनाए आचार-विचार व व्यवहार का सूक्ष्मतया विश्लेषण करो। अगर किसी भी प्रभाव के कारण स्वयँ को कुरस्ते पर चढ़े हुए पाओ यानि ऐसा लगे कि दुर्व्यवहार, दुराचार या व्यभिचार करते हुए जन्म-मरण के रास्ते पर अग्रसर हो रहे हो तो अपने आप को सम्भाल लो और जो धर्म का रास्ता अपने घर को जाता है उस रास्ते की ओर कदम बढ़ाने का ऐसा पराक्रम दिखाओ कि आप में इन्सानियत अनुरूप आए बदलाव को देखकर कुरस्ते पड़े अन्य सजन भी रास्ते पर आ जाएँ।

8. इन्सानियत के इतिहास को समझो और उसको याददाश्त में रखते हुए, दृढ़ विश्वास के साथ अपनी सुरत को शब्द गुरु के साथ जोड़े रखो यानि ख़्याल ध्यान वल व ध्यान प्रकाश वल रख सत्य को धारण करो। इस सन्दर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित इस सत्य को याद रखो :-

सच्चा व्यापारी ओ तर गया, झूठ डुब्बे विच मँझदार
सच किनारे ओ जा लगा, झूठ डुबिया अधविचकार
झूठ पहरेवा लहाणा जे सजनो, जेहडा करदा जे औखा

सच दा पहरेवा पाना जे, जेहड़ा करदा ओ सौखा
सच ओ मौज उड़ावे, झूठ ओ ठोकरां खावे
ठोकरां खा-खा उठ-उठ के ओ, फिर ओ सजन पछतावे

अतः सजनों सत्य को प्रवान करते हुए सत्य ही बोलना सीखो और सजन श्री शहनशाह महाबीर जी की युक्ति के वर्त्त-वर्त्ताव द्वारा एक मनुष्य के जीवन में सत्य की महानता जना, ऐसी करामात दिखाओ कि समस्त मानवों के हृदय में सत्य का रास्ता अपनाने की भावना जाग्रत हो जाए और सभी सत्यनिष्ठा व धर्मपरायणता से जीवन जीना आरम्भ कर एक भाव हो जाएं। निष्काम भाव से इस परोपकार हेतु खुद भी सत्य पढ़ना, बोलना व वर्त-वर्ताव में लाना सीखो और अन्य सजनों को भी वैसा ही पाठ पढ़ाओ ताकि इस जगत में विचरते समय सभी का मन-मस्तिष्क शान्त व विश्राम अवस्था में इस तरह बना रहे कि किसी के हृदय में असन्तोष घर न कर पाए और सम्पूर्ण मानव जाति एकता और एक अवस्था में बनी रहे।

ऐसा सुनिश्चित करने पर हर सजन के लिए समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार सजन-भाव अनुरूप इस प्रकार से व्यवहार करना सहज हो जाएगा। इसलिए जब भी दो सजन आपस में मिलो तो एक दूसरे को सच्चाई-धर्म के रास्ते पर मजबूत बने रहने हेतु पूछते रहो ताकि कोई भी सजन कुरस्ते पर चलता हुआ धर्म न हार बैठे और वह निष्काम रास्ते पर बना रहे और परोपकारी नाम कहावे। यह शुभ काम सम्पूर्ण करने में देरी मत करना क्योंकि परमधाम में परमेश्वर आपका स्वागत करने को तैयार बैठे हैं।

इस सबक में सफलता प्राप्त कर अगले वर्ष फ़र्स्ट का नतीजा दिखाने हेतु सभी सजनों को इस वर्ष निम्नलिखित गृहकार्य दिया जा रहा है। सभी सजनों से अनुरोध है कि इसको बार-बार पढ़ कर खुद समझें व अमल में लाएं। निश्चित ही सपरिवार ऐसा करने पर घर भी सतयुग बन जाएगा व अगले वर्ष फर्स्ट का नतीजा भी अवश्य आवेगा।

इन्सानियत में ढल
जीवन उद्देश्य प्राप्त करने हेतु
गृहकार्य

हर सजन से प्रार्थना है कि समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार सजन-भाव की पढ़ाई व गुढ़ाई का नतीजा आज तक जो भी रहा हो, उसे सोच बनाने के स्थान पर आत्मनिरीक्षण के दौरान जो भी कमियाँ पाई गई हों, उन्हें सुधारने के लिए ख़ुद पर आत्मनियन्त्रण रखना आरम्भ कर दें। यह आत्मसुधार व आत्म उद्धार की बात है। आगामी वर्ष सफलता प्राप्त कर फ़र्स्ट का नतीजा दिखाने हेतु यदि हम नित्यप्रति निम्निलिखित बिन्दुओं पर विचारसंगत अमल करने का शुभ कार्य अभी से ही आरम्भ कर दें तो कोई कारण नहीं बनता कि हम इन्सानियत अनुसार जीवन जीते हुए मोक्ष प्राप्त कर, यश-कीर्ति के अधिकारी बन, अपना नाम रोशन न कर सकें।

1. 'विचार ईश्वर आप नूं मान' के नित्यभाव में स्थिरता से बने रहना। शारीरिक व जगत के नश्वरता वाले भावों में उलझकर, स्वार्थी बन व ठोकरें खा-खा जीवन मत हारना। इस प्रकार सदा सुखदायी कमाई करना। यह परमार्थ के रास्ते पर बने रहने व घर सतयुग बनाने हेतु आवश्यक समझना।

2. इस सत्य को सदा याद रखना कि मूलमन्त्र शब्द ही गुरु है और शास्त्र में विदित विचारों को समझदारी से धारणकर व यथा व्यवहार में उतारकर ही महान बन सकते हो। अतः इसी सत्य पर टिके रहना व कभी भूलकर भी शारीरिक गुरुओं के चक्कर में मत फँसना और न ही कोई आडम्बर रच अपनी मानता कराना।

3. समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार सजनभाव अनुरूप मन को वश में रखना। इस प्रकार संकल्प को स्वच्छ रखते हुए व एक निगाह एक दृष्टि द्वारा विचार शब्द अनुसार जीवन-व्यवहार अपनाकर निष्काम भाव से परोपकार कमाना। इस तरह मृतलोक

पर फ़तह पाकर आना। याद रखना संकल्प पर फ़तह पाकर ही जन्म-मरण के चक्रव्यूह से बच सकते हो।

4. गृहस्थ-धर्म ठीक निभाने हेतु मन को ईश्वर में लीन रखना व सबके प्रति कर्त्तव्य हँसकर करते हुए सच्चाई-धर्म के रास्ते पर खुद बने रहना व बच्चों को भी चलाना। युवावस्था की भक्ति-शक्ति धारण कर सदा जागृति से परमार्थ में बने रहना और अकर्त्ता भाव से जीवन का हर कार्य करते हुए निष्कामी बन यश-कीर्ति प्राप्त करके आना। यह आबाद रहने का रास्ता है।

5. ब्रह्म को ही निज असलियत स्वरूप की सत्ता मानना और उसी के ही प्रकाश का जनचर-बनचर, जड़-चेतन में अनुभव करते हुए आत्मिक व ब्रह्मज्ञान को यथार्थतः वर्त्त-वर्त्ताव में लाने हेतु खुद पर पकड़ रखना। इस प्रकार अपने जीवनकाल में सदा सच बोलते हुए, सच का घर में वर्त्त-वर्त्ताव करते हुए व सच ही दुनियाँ में फैलाते हुए बुद्धि को प्रकाशित रखना। याद रखना सच चानणा है, झूठ अँधेरा है।

6.मानवधर्म पर बने रहने हेतु तन, मन, धन वारने से नहीं सकुचाना। सदा कामनारहित रास्ते पर बने रह स्वार्थपरता के भाव से बचे रहना। इस तरह औरों को भी परमार्थ के रास्ते पर ला एकता अपनाना व नेक कमाई करके आना। याद रखना नेक कमाई से ही प्रभु प्रसन्न होते हैं।

7. जन्म-मरण, रोग-सोग, खुशी-ग़मी, मान-अपमान व अमीरी-ग़रीबी में आत्मभाव से समरूप विचरना और विपरीत परिस्थितियों में भी अपना मानसिक सन्तुलन साधे रखने का पराक्रम दिखा ताकतवर नाम कहाना।

8. यह सत्य सदा याद रखना कि मैं अजन्मा हूँ, मेरी आत्मा अमर है व जगत में विशेष होते हुए भी निर्लेप है और रूप, रंग, रेखा से बाहर है। इस प्रकार निर्भय, निर्वैर व निर्विकार बने रह हर कर्म न्यायसंगत करना।

9. सावधान बने रह बैहरूनी वृत्ति को छोड़कर अन्दरूनी वृत्ति को धारण करना। इस हेतु खलबली हटा विश्राम प्राप्त कर अपने ख़्याल को सदा ईश्वर से जोड़े रखना। फिर स्वभावों पर पकड़ रखते हुए ख्याल स्वच्छ, जिह्वा स्वतन्त्र व दृष्टि कंचन रखने में कामयाब बने रहना। इस कार्य सिद्धि के लिए मन को वश में रखते हुए छल-कपट, निन्दा-उस्तत आदि छोड़ सम, संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म पर बने रहना।

10. आवश्यकता अनुसार ही बोलने का स्वभाव अपनाना। इन्द्रियनिग्रह द्वारा मन को विश्राम अवस्था में साधे रख अफ़ुर बने रहना। इस प्रकार गृहस्थ आश्रम में रहते हुए कुलनाशक काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार पर फ़तह पा व सतवस्तु के प्रतीक भाव-स्वभावों में ढल श्रेष्ठ बनकर आना।

11. संकल्प रहित अवस्था में बने रहने हेतु मन पर नियन्त्रण रखना। यह साधना ध्यान से करना ताकि हृदय को निर्मल वातावरण प्राप्त हो। यही एकमात्र युक्ति है उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल व आत्मबल पर मज़बूती से बने रह आत्मबोध द्वारा इस संसार में शुभ कृत्य करने की।

12. शरीर रूपी घर समेत हर वस्तु की स्वच्छता बनाए रख हैसियत में बने रहना। सात्विक आहारी बन अपने व परिवारजनों के स्वास्थ्य का ध्यान रखना व संस्कारी बनने हेतु सबके साथ सजनतापूर्ण 'जी-जी' का वर्त्ताव करना सीखकर आना। अपनी प्रारब्ध को निज कर्म-फल मान उसे प्रसन्नचित्तता से भोगना और इस प्रकार कष्ट-क्लेश आने पर भी सदा संतोषी बने रहना।

13. याद रखना कि संकल्प ही कुसंग है जिसके प्रभाव से हमारी मानसिकता विकृत हो जाती है और मन पर वश छूटने के कारण हम जनचर-बनचर, जड़-चेतन के प्रति आत्मभाव नहीं रख पाते और द्वि-द्वेष में उलझ जाते हैं। इससे हृदय का वातावरण दूषित

होता है और हमारे ख़्याल की स्वच्छता व दृष्टि की कंचनता भंग हो जाती है। यह असत्य धारणा व संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म पर पकड़ छूटने की बात होती है। किसी कारण भी ऐसा मत होने देना यानि इन्सानियत में बने रहना। इस प्रकार संकल्प स्वच्छ रखना ताकि झुखने-रोने के स्वभाव से बचे रह सको और आपका हृदय बहार की तरह खिल उठे, बदन प्रफुल्लित हो, मुख चमक उठे और आप परोपकारी बन सबको प्रिय लगने लगो।

14. अपना हृदय विकार रहित कर मुश्क हटाना और परम-पिता परमेश्वर के सुपुत्र बनकर आना। याद रखना कि संकल्प कुसंगी के अनुसार मनोविचार अविचार कहलाते हैं। इसलिए ख़्याल को मनुराज में भूलकर भी मत जुड़ने देना। इस प्रकार चेतन अवस्था में बने रह सर्व एक प्रकाश होने के सत्य का ही अनुभव करना। यह इस विषयी जगत में निष्काम भाव से विचरते हुए मोह-माया से आज़ाद निज स्वरूप में स्थित रहने की बात है।

15. यह सत्य याद रखना कि ईश्वर के संग बने रहने से ही सब कुछ प्राप्त हो सकता है व सब संकट दूर हो जाते हैं। इस तरह सम अवस्था में बने रहना और सजन-भाव अनुसार वर्त्त-वर्त्ताव करना सहज हो जाता है।

16. परमार्थी पिता सजन श्री शहनशाह हनुमान जी जिनसे मौत भी काँपती है उनके वचनों के विपरीत चलन भूल कर भी मत अपनाना। इस प्रकार खुद को आत्मीयता में ध्यान से साधे रख निष्काम रास्ते पर बने रहना। इसके विपरीत कदाचित् मखट्टू पुत्र बन अपनी प्रारब्ध बिगाड़ के स्वार्थ के रास्ते पर मत भटक जाना यानि कमज़ोरी दिखा मन को फुरनो में मत जकड़ लेना।

17. एक अवस्था में बने रहने के लिए तीनों तापों के टैम्प्रेचर को सम रखते हुए निर्विकारी व शान्त बने रह दैवीय कर्म करना। इस

तरह जीवन बनाने का भरसक प्रयास करना। इसमें कामयाब होने के लिए अच्छे व बुरे प्रकार के कनरस से बचकर रहना व अंतर्मुखी बने रह ईश्वरीय विचारों अनुसार ही जगत में सब कुछ करना।

18. शास्त्र के विचारों को अमल में लाने हेतु नित्य प्रति उसे समझकर पढ़ना मत भूलना। इसमें वेद विदित विचारों से अपने हृदय को प्रकाशित रखना और वर्त्त-वर्त्ताव हेतु ख़्याल स्थिर कर लेना। इससे आत्मिक बल महान होगा और खुद को शक्तिशाली महसूस करोगे। तभी तीनों कालों का बोध होने पर अकर्त्ता भाव से संसार में विचरने के योग्य हो जाओगे और मौत के भय से भी बच जाओगे। ऐसा होने पर भौतिकवाद में नहीं फँसोगे और नैतिक तौर पर मज़बूत रहोगे।

19. साँसारिकता में फँसकर कठिन स्वभाव मत अपनाना और न ही परमार्थ के रास्ते पर चलते हुए नरम पड़ना कि कोई भी विषय-विकार आपको अपने अधीन कर सके। शब्द विचार पर वज्रता से बने रहना और इस हेतु कष्ट-क्लेश सहने से भी मत सकुचाना। इस प्रकार अफुर अवस्था धारण करके समभाव जो एक निगाह एक दृष्टि देखनी होती है, जन्म की बाज़ी जीतने हेतु उसकी प्राप्ति करके आना।

20. यह सत्य मानना कि कुल दुनियाँ में जो बिन सूरजों सूरज परमधाम में जग रहा है सर्व उसी का ही प्रकाश है। इस सत्य पर स्थिर रह संसारी व परमार्थी दोनों राज्य प्राप्त करके आना यानि निर्गुण स्वरूप में बने रह सर्गुण का खेल खेलना। इस प्रकार अपनी असलियत की पहचान कर, ज्योति स्वरूप पारब्रह्म परमेश्वर नाम कहलाना।

21. अपने ख़्याल को कलियुगी वातावरण से निकालने हेतु उसे ध्यान द्वारा प्रकाश में जोड़ने की क्रिया के समय जहाँ ख़्याल है वहीं दृष्टि को साधे रखना। इस प्रकार संकल्प हट जाएगा और तीनों

तापों का घटता- बढ़ता टेम्प्रेचर स्वयमेव समाप्त हो जाएगा और एक अवस्था को प्राप्त हो जाओगे। फिर सबमें अपना असलियत प्रकाश नज़र आने पर जगत व्यवहार के समय प्रसन्नचित्तता बनी रहेगी। यह जीव के परमधाम पहुँच विश्राम अवस्था को प्राप्त करने की बात है।

इस सन्दर्भ में यह भी याद रखना कि इन ऊपर लिखित बिन्दुओं के अनुसार सुदृढ़ता से बने रहने का पराक्रम दिखाने के योग्य सजन ही अपना सजन कहलाएगा व मुबारिकबाद का अधिकारी बन हर्षा उठेगा। इसलिए इस मंगलमय कार्य को सिद्ध करने की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए सभी से प्रार्थना है कि इन बिन्दुओं के विचारों अनुसार ढलने हेतु आत्मनिरीक्षण द्वारा अब तक अपनाए कलुकाल वाले स्वभावों को ढूँढ, मन से 'हौं-मैं' मिटा देना। इस प्रकार हृदय रूपी घर को सतयुग बना विराट् दृष्टि पर खड़े होकर बह्म वृत्ति को ठहरा लेना। इस यत्न से जिह्वा स्वतन्त्र, संकल्प स्वच्छ और निगाह कंचन हो जाएगी और अफुर अवस्था में बने रह गृहस्थ-आश्रम के फ़र्ज़ अदा हँस कर निभाने के काबिल हो जाओगे। इस सबक पर परिपक्व रहने के लिए ऊपरलिखित विचारों को खुद पढ़ना व समझना होगा व सजनों को समझाना होगा। यह होगा विचार शब्द द्वारा समभाव-समदृष्टि के सबक को परिपक्वता से ठहरा लेना। इसकी मज़बूती के प्रति समय-समय पर अपनी जाँचना करनी होगी ताकि किसी भी कमज़ोरी के कारण अगले वर्ष नतीजा फ़ेल का न निकले। अपने पर उपकार करते हुए परोपकार के निमित्त ऐसा ही करना सुनिश्चित करना। इस सन्दर्भ में फ़र्स्ट का नतीजा प्राप्त करने हेतु सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ से दोनों पैगाम वाले कीर्तन समझते हुए पढ़, अन्दर और बाहर दोनों वृत्तियों का झुखना-रोना बंद करके आना अर्थात् जिह्वा स्वतन्त्र और अफुर अवस्था को धारण करके आना। यह अगले वर्ष फ़र्स्ट का नतीजा दिखाने व दिव्य दृष्टि का सबक प्राप्त करने के लिए आवश्यक है।

शुभकामनाओं सहित।

भक्ब अश नधब

ओ३म्
अमर है
आत्मा
आत्मा में है
परमात्मा
एहो असलियत ब्रह्म
स्वरूप प्रकाश
है जे ओ मेरा
अपना
हम ब्रह्म प्रकाश
हम
हम ब्रह्म प्रकाश
हां
हम हर अन्दर निवास
हम
हम हर अन्दर निवास
हां
हम हर अन्दर प्रवेश
हम
हम हर अन्दर प्रवेश
हां
हम हर अन्दर विशेष
हम
हम हर अन्दर विशेष
हां
हम ब्रह्म हम, हम ब्रह्म हां

अन्ततः सबसे प्रार्थना है कि इस सबक को पढ़ने व समझने के उपरान्त सत्यता से अपना आत्मनिरीक्षण करो और इसके प्रति जो भी त्रुटियाँ स्वयं में पाओ आत्मनियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार करने में विलम्ब न करो ताकि शीघ्र-अति-शीघ्र यह सबक आपके जीवन चरित्र का अभिन्न अंग बन जाए।

शुभकामनाओं सहित

आत्म निरीक्षण हेतु प्रश्न

1. गृहस्थाश्रम सुचारु रूप से चलाने की युक्ति सीखना आवश्यक क्यों है?
2. धर्म ग्रन्थों के अनुसार जीवन की अवस्थाओं को कितने आश्रमों में विभक्त किया गया है?
3. मनुष्य जीवन के सर्वप्रथम आश्रम ब्रह्मचर्य में किस प्रण को महत्व दिया गया है?
4. 'ब्रह्मचर्य' शब्द का क्या अर्थ है?
5. ब्रह्मचर्य आश्रम के नियमों का यथा पालन करने के क्या-क्या लाभ हैं?
6. ब्रह्मचर्य आश्रम में कौन-कौन से व्यसन निषिद्ध हैं?
7. एक ब्रह्मचारी व्यक्ति परिश्रम द्वारा निष्कामता व निर्लिप्तता से जीविका कमाने में कैसे सक्षम हो पाता है?
8. गृहस्थियों का घर कैसे सतयुग बन सकता है?
9. सृष्टि रचना के विकास हेतु सद्‌गुण सम्पन्न संतान उत्पन्न करने के लिए पति-पत्नी का क्या योगदान होता है?
10. संतान का सदाचारी होना किस पर निर्भर करता है?
11. एक सुखी व शान्तमय विवाहित जीवन के लिए क्या आवश्यक है?
12. आत्मिक-ज्ञान प्राप्ति के बिना ही गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने से क्या होता है?
13. गृहस्थाश्रम को ठीक से निभाते हुए परमार्थ के रास्ते पर आजीवन बने रह परम-पद को किस प्रकार प्राप्त कर सकते हैं?

14. एक बालक अपने जन्मोपरान्त ही जीवन-लक्ष्य की सिद्धि के लिए कैसे यत्नशील हो सकता है?

15. अपने निज यथार्थ का बोध कर लेने वाले व्यक्ति को क्या लाभ होता है?

16. माता-पिता या शिक्षक सत्यनिष्ठा से अपने कर्तव्य को किस प्रकार निभा सकते हैं?

17. नित्य-भाव से जीवन जीने वाले इन्सान की क्या पहचान होती है?

18. स्वयं पर शासन कैसा व्यक्ति कर सकता है?

19. हुक्म का पालन करने का अर्थ क्या है?

20. धार्मिक शिष्य-वृत्ति किसे कहते हैं?

21. धार्मिक शिष्य-वृत्ति अपनाने से क्या लाभ होते हैं?

22. परस्पर बातचीत में शिष्ट-भाषा का प्रयोग करना क्यों आवश्यक है?

23. गुरु पद की गरिमा कैसे सुदृढ़ बनी रह सकती है?

24. आत्मज्ञान क्या है?

25. एक आत्मज्ञानी व्यक्ति किन गुणों के कारण अद्वितीय हो जाता है?

26. आध्यात्मिकता क्या है?

27. आध्यात्मिक ज्ञान को अमल में लाना क्यों आवश्यक है?

28. समरसता से जीवन यापन करना किसे कहते हैं?

29. भौतिक ज्ञान के साथ आत्मिक ज्ञान की पढ़ाई करनी क्यों आवश्यक है?

30. आत्मज्ञान द्वारा एक श्रेष्ठ मानव किस प्रकार बना जा सकता है?

31. आत्मिक बल क्या सामर्थ्य रखता है?

32. आत्मज्ञानी व्यक्ति के लिए निज स्वार्थ को छोड़ केवल परमार्थिक कार्य में ही जुटे रहना कैसे सम्भव है?

33. निज ब्रह्म-स्वरूप की पहचान कैसे करें?

34. अंतःकरण की विशुद्धता से क्या तात्पर्य है तथा यह क्यों ज़रूरी है?

35. आत्मज्ञान द्वारा ही समभावी होना संभव है, कैसे?

36. 'हाँ जी' अर्थात् हुक्म का पालन करना क्यों महत्त्वपूर्ण है?

37. अंतःकरण सदा विशुद्ध किस प्रकार बना रह सकता है?

38. जीवन का उद्देश्य पूरा करने हेतु हमारी सर्वप्रथम आवश्यकता क्या है?

39. ख्याल घर में स्थिर है, इसका पता कैसे चलता है?

40. हम सत्य धारणा में सक्षम कैसे बनें?

41. ख्याल को अपने घर में स्थिर रखने से क्या लाभ हैं?

42. 'जाँचो तोलो और तुल खड़ोवो' का क्या अर्थ है?

43. वज्र-अवस्था कौन-सी अवस्था होती है?

44. हम किस क्रिया द्वारा सजनता के प्रतीक बन सकते हैं?

45. 'कुलदीपक' व 'कुलचानणा' शब्दों का व्यापक अर्थ क्या है?

46. प्रसन्नता का वातावरण सदैव हमारे चहुँ ओर व्याप्त रहे, इसके लिए हमें क्या करना होगा?

47. हमारा ख़्याल स्वच्छ व प्रतिपल वर्तमान में बना रहे इसके लिए हमें क्या करना होगा?

48. 'ख़्याल ध्यान वल, ध्यान प्रकाश वल' सदैव जुड़ा रहने से क्या लाभ होगा?

49. हमारे वर्तमान के अनुसार भविष्य व भविष्य के अनुसार हमारा वर्तमान बनता बिगड़ता रहता है, इस चक्र के चलने के पीछे मुख्य कारण क्या है?

50. एक आत्मिक-ज्ञान प्राप्त व्यक्ति का निष्काम भाव से इस जग में विचरना उसे क्या लाभ देता है?

51. स्वार्थ को त्याग कर परहित के लिए कार्य करने और मानव-धर्म अनुसार इस जगत में विचरने की सामर्थ्य किस गुण के कारण संभव हो पाती है?

52. कामना हमारे लिए किस प्रकार दुखदायी बन जाती है?

53. हमें भय क्यों सताता है व इससे हमें क्या हानि होती है?

54. हम निर्भय हो कर इस जगत में सच्चाई-धर्म की राह पर चल सकें, इसके लिए हमें क्या करना होगा?

55. सर्व एकात्मा के दर्शन का बोध होने पर क्या होता है?

56. युवावस्था की भक्ति क्या है?

57. कर्त्ता होते हुए भी अकर्त्ता-भाव से इस जगत में विचरने का क्या अर्थ है?

58. रूप, रंग, रेखा का त्याग किस बात का सूचक है?

59. आत्मिक-ज्ञान द्वारा हम अपने सच्चे घर परमधाम किस प्रकार स्थित हो जाएँगे?

60. एक आत्मज्ञानी का ज्ञान-स्रोत उसकी अपनी अंतःचेतना होती है, ये कैसे संभव है?

61. हम मान-अपमान से किस प्रकार बचें?

62. हम मनुष्य, ईश्वर की विशेष-कृति होने का यथार्थ बोध सबको किस प्रकार करा सकते हैं?

63. हम यथार्थ में सत्य के पारखी बन जाएँ, ये किस क्रिया द्वारा सम्भव है?

64. हमारा ख्याल धारणा में परिवर्तित हो हमारे आचार-विचार व व्यवहार में किस प्रकार उतरता है?

65. 'ख्याल ध्यान वल, ध्यान प्रकाश वल' का वास्तविक अर्थ क्या है?

66. एक मानव के चरित्रवान बनने के पीछे मुख्य ताकत क्या होती है?

67. एक मानव केवल संतोष के दिव्य-गुण द्वारा जीवन लक्ष्य कैसे सिद्ध कर लेता है?

68. प्रकाशमय अवस्था क्या होती है?

69. प्रकाश का क्या गुण होता है, ये हमारे ध्यान से किस प्रकार संबंधित है?

70. एक प्रकाशित बुद्धि इन्सान किस प्रकार यश-कीर्ति को प्राप्त होता है?

71. ख्याल के अंधकारमय अवस्था में भटकने से इंसान की बनत कैसी बनती है?

72. हमारी बुद्धि अंधकूप में न जाए, इसके लिए हमें क्या सावधानी लेनी होगी?

73. आत्मिक बल में क्या-क्या शक्तियाँ विद्यमान होती हैं?

74. शारीरिक स्वस्थता के लिए सात्विक आहार का क्या महत्व है?

75. शरीर की स्वस्थता किस पर निर्भर करती है?

76. ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ग्रहण किया हुआ अप्रत्यक्ष आहार संयमित व संतुलित होना क्यों आवश्यक है?

77. भिन्न-भिन्न प्रकार के भोजन के पाचन का क्या परिणाम होता है?

78. सात्विक आहार का शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है?

79. अन्न व मन का क्या सम्बन्ध है?

80. सात्विक आहार सबसे उत्तम क्यों माना गया है?

81. आहार का शरीर, मन व बुद्धि से क्या सम्बन्ध है?

82. सात्विक आहार सेवन करने वाले मानव की प्रकृति कैसी बनती है?

83. सात्विक आहार में क्या-क्या पदार्थ सम्मलित हैं?

84. चरित्रवान बनने के लिए सात्विक आहार का क्या योगदान है?

85. सात्विक आहार का सेवन हमें सदाचारी किस प्रकार बनाता है?

86. राजसिक व तामसिक आहार का सेवन क्यों नहीं करना चाहिए?

87. भोजन पकाते समय हमें किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?

88. गर्भकाल में एक स्त्री का भोजन व मन के भाव किस प्रकार के होने आवश्यक हैं?

89. आहार का सेवन करते समय ध्यान रखने योग्य क्या बातें हैं?

90. माता-पिता को अपने बच्चों के आहार के विषय में क्या ध्यान रखना चाहिए?

91. आहार से हमारी अंतःस्थिति का क्या सम्बन्ध है?

92. आत्मिक ज्ञान प्राप्ति से मानव का चरित्र-निर्माण किस प्रकार होता है?

93. समभाव नज़रों में पक्का कैसे होता है?

94. चालीसे के महायज्ञ का क्या उद्देश्य है?

95. रंग का वास्तविक अर्थ क्या है व रंगत क्या होती है?

96. इलाही रंग से क्या आशय है?गुलानारी रंग का क्या महत्त्व है?

97. आपसी मेल-मिलाप रखने से हम धैर्यवान कैसे बन जाते हैं?

98. चालीस दिनों के इस महोत्सव की प्रत्येक रीति-नीति के पालन करने का क्या मकसद है?

99. चालीसे के अंतिम दिन सफेद रंग के वस्त्र व गुलानारी दुपट्टे पहनने का क्या महत्व है?

100. सफेद रंग के वस्त्र पहनने से हमारे अंतःकरण पर क्या प्रभाव पड़ता है?

101. शांतमय अवस्था को प्राप्त करने के लिए पौने दो महीने कौन-से मन्त्र का जाप करना होता है?

102. पौने दो महीने के इस पाठ का भावार्थ क्या है?

103. इस मन्त्र का जाप किस समय व कब तक करना चाहिए?

104. पाठ की समाप्ति पर क्या करना होता है?

105. इस पाठ को करने का क्या लाभ है?

106. आत्म-संयम शब्द का क्या अर्थ है?

107. आत्म-संयम का हमारे जीवन में क्या महत्व है?

108. एक आत्म-संयमी व्यक्ति कुशलता से अपने जीवन का संचालन कर समभाव में कैसे स्थित हो जाता है?

109. गृहस्थ-आश्रम किसे कहते हैं व इस आश्रम का मुख्य दायित्व क्या है?

110. नैतिक हिंसा क्या है?

111. घर की अर्थव्यवस्था को मित्तव्ययता से चलाने के लिए क्या करना आवश्यक है?

112. गृहस्थाश्रम के संदर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें क्या निर्देश देता है?

113. गृहस्थ-धर्म निभाते हुए स्त्री-पुरुष के पारस्परिक कर्तव्य क्या हैं?

114. पति-पत्नी दोनों का चरित्रवान बने रहना क्यों आवश्यक है?

115. गृहस्थ-धर्म की पालना हँस कर करने के लिए क्या ज़रूरी है?

116. गृहस्थाश्रम के समस्त कर्तव्य भली-भाँति निभाते हुए हम अपने जीवन का उद्देश्य कैसे प्राप्त कर सकते हैं?

117. एक सद्‌गुण सम्पन्न संतान उत्पत्ति और उसका लालन-पालन जैसे महान कार्य को अफुरता से कैसे किया जा सकता है?

118. सर्वगुण सम्पन्न संतान के लिए माता-पिता के क्रियाकलाप कैसे होने चाहिए?

119. एक बच्चे के लालन-पालन में माता-पिता को क्या-क्या सावधानियाँ लेनी हैं?

120. घर के बुजुर्ग सजनों के प्रति गृहस्थियों के क्या कर्तव्य हैं?

121. दम्पतियों के आत्मनिरीक्षण के मुख्य बिन्दु क्या हैं?

122. व्यक्तिगत आत्मनिरीक्षण के विभिन्न पहलू कौन-से हैं?

123. बच्चे अपना आत्मनिरीक्षण किन महत्वपूर्ण बिन्दुओं के आधार पर कर सकते हैं?

124. घर के बुजुर्ग अपना आत्मनिरीक्षण किस आधार पर करें?

125. अगले वर्ष फ़र्स्ट का नतीजा प्राप्त करने के लिए क्या करना होगा?

शब्द-कोश

1. अनभिज्ञ - अनजान, अपरिचित,
2. अन्तर्मुखी - जो परमात्मा का ध्यान लगाए बैठा हो
3. अमोघ - निष्फल न होने वाला, लक्ष्य पर पहुँचने वाला
4. अवसाद - दीनता, थकावट, विषाद
5. अवरोध - विरोध, झगड़ा
6. आत्मकेन्द्रित - स्वयं पर ध्यान देने वाला
7. आत्मबोध - आत्मा तथा परमात्मा के सम्बन्ध की जानकारी, ब्रह्म का साक्षात्कार
8. आधिपत्य - स्वामित्व, प्रभुत्व
9. आधि-व्याधि - मानसिक व्यथा-विपत्ति, आफ़त, झंझट, बखेड़ा
10. उत्सर्जन - त्याग, छोड़ना
11. औचित्य - उपयुक्तता, सत्य, सच्चाई
12 गहनता - गम्भीर, गहरा, अथाह
13. दुष्प्रवृत्ति - दुष्ट या बुरी प्रवृत्ति वाला
14. दुष्प्रभावित - बुरी तरह से प्रभावित
15. नियामक - व्यवस्था या विधान करने वाला
16. निर्बाध - बिना किसी बाधा के
17. निर्लिप्तता - राग-द्वेष आदि से मुक्त रहने की क्रिया
18. निष्पादन - आज्ञा, नियम आदि के अनुसार काम को भली प्रकार से पूरा करना
19. निर्द्वन्द्व - राग-द्वेष, मान-अपमान आदि द्वन्द्वों से परे हो

20. निरंकुश	-	जिसके लिए कोई अंकुश या रुकावट न हो
21. निरासक्त	-	अनासक्त यानि आसक्ति रहित
22. परिलक्षित	-	प्रत्यक्ष
23. परिष्कृत	-	आरम्भिक संस्कारों से शुद्ध किया हुआ
24. परिणति	-	अवनति, झुकाव, अन्त
25. पारदर्शी	-	उस पार तक की बात देखने वाला
26. प्रजनन	-	सन्तान उत्पन्न करने का काम
27. प्रतिपादित	-	जिसका निश्चय हो चुका हो
28. प्रतिबद्ध	-	बँधा हुआ, नियन्त्रित
29. प्रवृत्ति	-	मन का किसी ओर होने वाला झुकाव
30. बौद्धिक	-	बुद्धि की
31. भर्त्सना	-	किसी अनुचित कार्य के लिए भला-बुरा कहना, फटकार
32. विकृति	-	बिगाड़, विकार, ख़राबी
33. शरशय्या	-	बाणों का बिस्तर
34. शाश्वत	-	नित्य, जो सदा बना रहे
35. सम्यक	-	पूरा, सब तरह से
36. सर्वोत्कृष्ट	-	सबसे अच्छा
37. सामजंस्य	-	मेल, अनुकूलता, एकरसता
38. सार्वभौमिक	-	समस्त पृथ्वी से सम्बन्ध रखने वाला
39. स्वच्छन्द	-	अपनी इच्छा अनुसार सब काम करने वाला
40. स्वेच्छाचारी	-	निरंकुश, मनमाना काम करने वाला

निवेदन

इस पुस्तक को और अधिक जीवन उपयोगी बनाने हेतु
आपके सुझाव सादर आमन्त्रित हैं।

SATYUG DARSHAN TRUST (REGD.)
ALLEVIATING PHYSICAL, MENTAL AND SPIRITUAL SUFFERINGS OF HUMAN BEINGS.
www.satyugdarshantrust.org

Institutions under the aegis of Satyug Darshan Trust (Regd.)

SATYUG DARSHAN CHARITABLE DISPENSARIES & LABORATORIES
(Multidiscipline dispensaries, labs & diagnostic centres spread in 15 cities)
www.satyugdarshandispensaries.org

SATYUG DARSHAN VIDYALAYA
(Nursery-XII, Co-ed. English medium, residential & day boarding school. Affiliated to CBSE.)
www.satyugdarshanvidyalaya.net

SATYUG DARSHAN INSTITUTE OF EDUCATION & RESEARCH
(B.Ed. College for All Girls. Affiliated to Maharishi Dayanand University Rohtak.)
www.sdier.org

SATYUG DARSHAN TECHNICAL CAMPUS
(Engineering & Management Collage. Offering B.Tech, BBA & PGDM education. B.Tech & BBA affiliated to MDU, Rohtak and PGDM course designed by IIT Delhi. Co-ed, residential & day boarding facilities.)
www.satyug.edu.in

DHYAN KAKSH
(World's first School of Equanimity & Even-sightedness. It is open to all age and gender groups.)
www.school of equanimity.com

SATYUG DARSHAN SANGEET KALA KENDRA
(Imparting true teachings of music and dance, open to all age and gender groups. Presence in 14 cities, it is affiliated to Prayag Sangeet Samiti, Allahabad)
www.satyugdarshansangeet.org